# समयसार

आचार्य कुन्दकुन्द

# समयसार

आचार्य कुन्दकुन्द

कुन्दकुन्द आइरिय

# समयसारो

*प्रकाशक*

**जैनविद्या संस्थान**

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

राजस्थान

*समय-प्रमुख* : **आचार्य विद्यानन्द मुनिराज**
*सम्पादन* : **पं. बलभद्र जैन**

•

*प्रकाशक :*
**जैनविद्या संस्थान**
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
श्रीमहावीरजी – ३२२२२० (राज.)

•

*प्राप्ति स्थान :*
१. जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी
२. अपभ्रंश साहित्य अकादमी
दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी
सवाई रामसिंह रोड
जयपुर – ३०२००४

•

*तृतीय संस्करण :* नवम्बर, १९९७, ५०००

•

*मूल्य :* [illegible]१० रुपये

•

*मुद्रक :*
**जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि.**
मिर्जा इस्माइल रोड
जयपुर – ३०२००१

# विसयाणुक्कमणिका


| | गाहा | पिट्ठ |
|---|---|---|
| आरंभिक | | |
| प्रकाशकीय | | |
| पढमो जीवाधियारो | १-३८ (३८) | १ |
| दुदियो जीवाजीवाधियारो | ३९-६८ (३०) | २३ |
| तिदियो कत्ता-कम्माधियारो | ६९-१४४ (७६) | ३७ |
| चउत्थो पुण्णपावाधियारो | १४५-१६३ (१९) | ७४ |
| पंचमो आसवाधियारो | १६४-१८० (१७) | ८५ |
| छट्ठमो संवराधियारो | १८१-१९२ (१२) | ९४ |
| सत्तमो णिज्जराधियारो | १९३-२३६ (४४) | ९९ |
| अट्ठमो बंधाधियारो | २३७-२८७ (५१) | १२४ |
| णवमो मोक्खाधियारो | २८८-३०७ (२०) | १५१ |
| दहमो सव्वविसुद्ध-णाणाधियारो | ३०८-४१५ (१०८) | १६१ |

# आरम्भिक

हमें 'समयसार' का तृतीय संस्करण पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्राकृत भाषा में रचित 'समयसार' आचार्य कुन्दकुन्द की अमर कृति है। यह अध्यात्म का अनुपम आगम ग्रन्थ है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करने में इस ग्रन्थ की बराबरी अन्य कोई ग्रन्थ नहीं कर सकता है। हमें लिखते हुए हर्ष है कि प्राकृत भाषा मुख्यतः श्रमण संस्कृति की भाषा रही है। 'समयसार' की मूल गाथाओं को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित किया जा रहा है जिससे पाठक थोड़े से प्रयास से प्राकृत भाषा को भी सीख सकेंगे।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री १०८ विद्यानन्दजी मुनिराज के निर्देशन में पण्डित बलभद्र जैन द्वारा संपादित 'समयसार' का द्वितीय संस्करण १९९४ में प्रकाशित हुआ था। आचार्यश्री द्वारा जयपुर चातुर्मास के अवसर पर 'समयसार' पर प्रवचन प्रारंभ किये गये। इसके फलस्वरूप श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'समयसार' की सभी प्रतियाँ समाप्त हो गईं। श्रोताओं में 'समयसार' के प्रति आकर्षण बढ़ा और इसकी माँग निरन्तर बढ़ती गई। तब निर्णय किया गया कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान इस ग्रन्थ के तृतीय संस्करण को प्रकाशित करे। फलतः यह प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसके लिए हम आचार्यश्री के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

'समयसार' के प्रकाशन में श्रोताओं से जो आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ उससे इसका विक्रय-मूल्य कम किया गया है। इसके प्रकाशन के लिए जैनविद्या संस्थान समिति के संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगाणी के हम आभारी हैं। आचार्य श्री १०८ विद्यानन्दजी मुनिराज वर्षायोग व्यवस्था समिति, जयपुर द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग के लिए भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं। जैनविद्या संस्थान के कार्यकर्ता एवं जयपुर प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

**बलभद्रकुमार जैन**
*संयुक्त मंत्री*

**नरेशकुमार सेठी**
*अध्यक्ष*

*प्रबन्धकारिणी कमेटी,*
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

# प्रस्तावना – प्रकाशकीय

**''समयसारं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वाणां सारं परमतत्त्वम् ---।''**[१]

समयसार ही परमतत्त्व है जो बारह अंग और चौदह पूर्वों का सार है।

तीर्थंकरों की आध्यात्मिक परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द का नाम गौरव से लिया जाता है। उनके द्वारा रचित 'समयसार' अध्यात्मशैली की एक अमर कृति है, यह जैन अध्यात्म को हृदयंगम करने के लिए अपूर्व आगम ग्रन्थ है। इसका मुख्य उद्देश्य समाज में ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है जो स्वचेतना की स्वतंत्रता को जी सकें। स्वचेतना की किंचित् भी परतंत्रता समयसार को मान्य नहीं है। चेतना की अतुलनीय गहराइयों में व्यक्ति को लीन करना समयसार को इष्ट है। चेतन-अस्तित्व के गहनतम स्तरों को व्यक्ति छू सके और परतंत्रता को त्यागने की प्रेरणा प्राप्त कर सके – यही समयसार का अपूर्व संदेश है। जन्म-जन्मों से व्यक्ति ने इन्द्रियों की परतंत्रता को स्वीकार कर रखा है। इन्द्रिय-विषय ही सदैव उसे आकर्षित करते रहते हैं। इन्द्रिय-पुष्टि-तुष्टि का जीवन ही उसे स्वाभाविक लगता है। बाह्य विषयों में जकड़ा हुआ ही वह अपनी जीवन-यात्रा चलाता है। अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता का उसे कोई भान ही नहीं हो पाता है। विषयातीत अनुभव उसके लिए दुर्लभ रहता है। समयसार का कहना है कि चेतना की अद्वितीय स्वतंत्रता, उसकी समतामयी स्थिति की गाथा व्यक्ति के लिए सुलभ नहीं है (४)[२]। व्यक्ति इन्द्रिय-विषयों से इतना आत्मसात किये हुये होता है कि उसे विषयों की ही वार्ता रुचिकर लगती है। वस्तुओं और व्यक्तियों से बँधा हुआ ही वह जीता जाता है। चेतना को वस्तुओं और व्यक्तियों से बँधना स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह व्यक्ति की अज्ञान अवस्था है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि समयसार व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाना चाहता है जिससे वह चेतना/आत्मा को परतंत्र बनानेवाले कारणों को समझ सके।

---

१. मूलाचार, आचार्य वट्टकेर, आचार्य वसुनन्दिकृत भाष्य, गाथा ८९४।

२. कोष्ठक में मूल समयसार के गाथांक अंकित हैं।

समयसार का शिक्षण है कि यद्यपि व्यक्ति परतंत्रता की लंबी यात्रा कर चुका है फिर भी परतंत्रता के विद्यमान कारण आत्मा की स्वतंत्रता का हरण किंचित् मात्र भी नहीं कर सकते हैं। स्वतंत्रता आत्मा का स्वभाव है, परतंत्रता कारणों के द्वारा थोपी हुई है। सच यह है कि इन कारणों को व्यक्ति इतनी दृढ़ता से पकड़े हुए है कि परतंत्रता स्वाभाविक प्रतीत होती है। जहाँ आत्मा की स्वतंत्रता है वहाँ ही समतामय जीवन है। जहाँ आत्मा की परतंत्रता है वहाँ ही द्वन्द्वात्मक जीवन है। चेतन अस्तित्व (आत्मा) को स्वतंत्र समझने की दृष्टि निश्चयनय है और उसको परतंत्र मानने की दृष्टि व्यवहारनय है। जब आत्मा की (पर से) स्वतंत्रता स्वाभाविक है तो आत्मा की परतंत्रता अस्वाभाविक है। इसलिए कहा गया है कि निश्चयनय (शुद्धनय) वास्तविक है और व्यवहारनय अवास्तविक है (११) ठीक ही है, जो दृष्टि स्वतंत्रता का बोध कराये वह दृष्टि वास्तविक ही होगी और जो दृष्टि परतंत्रता के आधार से निर्मित हो वह अवास्तविक ही रहेगी। समयसार का कथन है कि जो दृष्टि आत्मा को स्थायी, अनुपम, कर्मों के बन्ध से रहित, रागादि से न छुआ हुआ, अन्य से अमिश्रित देखती है वह निश्चयात्मक दृष्टि है (१४, १५)। इतना होते हुए भी परतंत्रता का जीवन जीनेवाले को व्यवहारनय के माध्यम से ही समझाया जा सकता है (१२)। एक-एक करके परतंत्रता के कारणों का विश्लेषण अप्रत्यक्षरूप से आत्मा की स्वतंत्रता की यशोगाथा है। इसलिए कहा गया है कि व्यवहारनय के आश्रय के बिना स्वतंत्रतारूपी सर्वोच्च सत्य की समझ संभव नहीं है (८)। जब व्यवहारनय यह कहता है कि चेतन आत्मा और पुद्गलात्मक देह अभिन्न हैं तो उन दोनों को अभिन्न समझने के कारणों का और अभिन्नता से उत्पन्न परिणामों का विश्लेषण करने से व्यवहारनय की सीमाओं का ज्ञान व्यक्ति को हो जाता है। इन सीमाओं के ज्ञान से व्यक्ति आत्मा की स्वतंत्रता की ओर देखने लगता है और उसमें निश्चय-दृष्टि उत्पन्न होती है तथा आत्मा और देह की भिन्नता का ज्ञान उदित होता है (२७)। सीमित को सीमित समझने से असीमित की ओर प्रस्थान होता है। इसी प्रकार व्यवहार को व्यवहार समझने से निश्चय की ओर गमन होता है। व्यवहार द्वारा उपदिष्ट आत्मा और देह की एकता को जो यथार्थ मानता है, वह अज्ञानी है और जो उसे अयथार्थ मानता है, वह ज्ञानी है (२०, २१, २२)। चूँकि देह पर है इसलिए केवली के देह की स्तुति करना भी निश्चय-दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। जो केवली के आत्मानुभव की विशेषताओं की स्तुति करता है, वह ही

निश्चयदृष्टि से स्तुति करता है (२९। ठीक ही हैं, जैसे नगर का वर्णन कर देने से राजा का वर्णन नहीं होता है वैसे ही देह की विशेषताओं की स्तुति कर लेने से शुद्ध आत्मारूपी राजा की स्तुति नहीं हो पाती है(३०)। अत: समयसार का शिक्षण है कि जैसे कोई भी धन का इच्छुक मनुष्य राजा को जानकर उस पर श्रद्धा करता है और तब उसका बड़ी सावधानीपूर्वक अनुसरण करता है, वैसे ही परम शान्ति के इच्छुक मनुष्य के द्वारा आत्मारूपी राजा समझा जाना चाहिये तथा श्रद्धा किया जाना चाहिये और फिर निस्संदेह वह ही अनुसरण किया जाना चाहिये (१७, १८)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निश्चयनय से आत्मा में पुद्गल के कोई भी गुण नहीं हैं। अत: आत्मा रस-रहित, रूप-रहित, गंध-रहित, शब्द-रहित तथा अदृश्यमान है। उसका स्वभाव चेतना है। उसका ग्रहण बिना किसी चिह्न के (केवल अनुभव से) होता है और उसका आकार अप्रतिपादित है (४९, ५०)। यदि व्यवहारनय से आत्मा में पुद्गल के गुण कहे गये हैं (६०) तो यह समझा जाना चाहिये कि वर्णादि के साथ जीव (आत्मा) का सम्बन्ध दूध और जल के समान अस्थिर है। वे वर्णादि आत्मा में स्थिररूप से बिल्कुल ही नहीं रहते हैं, क्योंकि आत्मा तो ज्ञानगुण से ओत-प्रोत होता है (५७)। समयसार का कथन है कि जैसे मार्ग में व्यक्ति लूटा जाता हुआ देखकर सामान्य लोग कहते हैं कि यह मार्ग लूटा जाता है। किन्तु वास्तव में कोई मार्ग लूटा नहीं जाता है, लूटा तो व्यक्ति जाता है (५८), उसी प्रकार संसार में व्यवहारनय के आश्रित लोग कहते हैं कि वर्णादि जीव के हैं (६०), किन्तु वास्तव में वे देह के गुण हैं, जीव के नहीं। मुक्त जीवों में किसी भी प्रकार के वर्णादि नहीं होते हैं (६१)। यदि इन गुणों को निश्चय से जीव का माना जाएगा तो जीव और अजीव में कोई भेद ही नहीं रहेगा (६२)।

व्यक्ति जन्म-जन्मों से कर्मों को लिये हुए उत्पन्न होता है। ऐसा देहयुक्त (व्यक्ति) मन, वचन और काय की क्रियाओं में संलग्न रहता है। जब व्यक्ति इनके माध्यम से क्रियाओं को करता है तो वे सभी क्रियाएँ कषायों से प्रेरित होकर ही उत्पन्न होती हैं। जैसे, क्रोध से प्रेरित होकर मन-वचन-काय की क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार दूसरी कषायों (मान, माया, लोभ आदि) से प्रेरित होकर क्रियाएँ हो सकती हैं। ये क्रियाएँ दूसरों को प्रभावित करें या न करें किन्तु

व्यक्ति को तो अवश्य ही प्रभावित कर देती हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व इनके प्रभाव से परिवर्तित होता दिखाई देता है। यह प्रभाव या परिवर्तन संस्कार के रूप में व्यक्ति में संचित होता चलता है। ये संचित संस्कार कषाय-जनित क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं और फिर उनसे निर्मित संस्कार एकत्र होते रहते हैं। ये संस्कार ही पुद्गलात्मक परमाणुओं के रूप में आत्मा के साथ संलग्न हो जाते हैं। इन्हें ही कर्म कहा जाता है।

क्रियाओं के प्रभाव की उत्पत्ति और संचय क्रमशः आश्रव और बंध कहे जाते हैं। यहाँ यह समझना चाहिये कि व्यक्ति जन्म-जन्मों में कर्मों के आश्रव और बंध के कारण ही परतंत्रता का जीवन जीता चलता है। इतना होते हुए भी कर्म आत्मा के स्वतंत्र स्वभाव को नष्ट नहीं कर सकते हैं। समयसार का कथन है कि जिस प्रकार मैल के घने संयोग से ढकी हुई वस्त्र की सफ़ेद अवस्था अदृश्य हो जाती है उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से ढका हुआ ज्ञान अदृश्य हो जाता है (१५८)। इसी प्रकार मूर्च्छारूपी मैल से ढका हुआ सम्यक्त्व और कषायरूपी मैल से ढका हुआ स्वरूपाचरण चारित्र अदृश्य हो जाता है (१५७, १५९)। निस्संदेह कर्मों ने चेतना की स्वतंत्रता को आच्छादित किया है (१६०) जिसके फलस्वरूप परतंत्रता पनपी है किन्तु समयसार का शिक्षण है कि ये आश्रव (कर्म) यद्यपि आत्मा (जीव) से जुड़े हुए हैं फिर भी ये अलग होने योग्य होते हैं, ये अस्थिर हैं तथा स्थायी सहारे रहित हैं (७४)। ज्ञान का उदय होने पर व्यक्ति इनसे दूर होने के लिए तत्पर होता ही है (७१, ७२)। अज्ञान की स्थिति में व्यक्ति को आत्मा और कर्म में भेद नजर नहीं आता है, जिसके फलस्वरूप वह क्रोधादि कषायों से एकमेक रहकर दुःखी होता रहता है (६९, ७०)। जिस क्षण व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि उसकी चेतना अपने मूलरूप में शुद्ध है कषायरहित है, ज्ञान-दर्शन से ओतप्रोत है, उसी क्षण से दुःख विदा होने लगते हैं (७३)।

यहाँ प्रश्न है कि आत्मा से कर्मों के संयोग का क्या कारण है? यह बात सर्वविदित है कि व्यक्ति वस्तुओं और मनुष्यों/प्राणियों के मध्य रहता है। यदि हम जाँच करें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक मानसिक अशान्ति के मूल में कोई न कोई वस्तु या मनुष्य/प्राणी विद्यमान होता है। यदि क्रोध व्यक्ति के प्रति होता है तो लोभ वस्तु के प्रति होता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना कि मनुष्यों/प्राणियों और वस्तुओं से कर्म-बन्धन होता है, अनुचित है। समयसार का कहना

है कि निस्संदेह वस्तु और मनुष्य/प्राणी को आश्रय करके कषाएँ उत्पन्न होती हैं, फिर भी वस्तु आदि से कर्म-बन्धन नहीं होता है। उसका वास्तविक मूलभूत कारण वस्तु आदि के प्रति आसक्ति ही है (१९७, २६५)। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर चिकनाई लगाकर धूल से भरे स्थान में काय-चेष्टा में संलग्न हो जाए तो उस मनुष्य के शरीर से धूल का संयोग चिकनाई के अस्तित्व के कारण होगा, केवल काय-चेष्टा से नहीं। इसी प्रकार वस्तुओं और मनुष्यों/प्राणियों के जगत् में उनके प्रति रागादि के कारण कर्म-धूल का संयोग व्यक्ति के होता है, वस्तुओं और मनुष्यों/प्राणियों के कारण नहीं (२३८, २३९, २४०)। व्यक्ति की रागादि/आसक्ति-रहित प्रवृत्ति से उसके कोई कर्म-बन्धन नहीं होगा (२४६)। जब मानसिक अशान्ति उत्पन्न होती है तो सामान्यतया यह कहा जाता है कि व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों से अपने को अलग करले। किन्तु यहाँ यह समझना चाहिये कि इससे मानसिक अशान्ति दब सकती है दूर नहीं हो सकती। निश्चय से तो मानसिक अशान्ति का कारण राग है, व्यक्ति और वस्तु नहीं। व्यवहार से व्यक्ति/प्राणी और वस्तु को मानसिक अशान्ति का कारण कह दिया जाता है। अतः समयसार का शिक्षण है कि निश्चयनय के द्वारा व्यवहारनय स्वीकार नहीं किया जा सकता, यद्यपि जगत में कर्म बंध के लिए मनुष्यों/प्राणियों और वस्तुओं को ही जिम्मेदार माना जाता है। किन्तु समयसार हमारा ध्यान कर्म-बंधन के वास्तविक कारण, आसक्ति की ओर आकर्षित करता है, क्योंकि इसको दूर करने से ही शान्ति मिल सकती है। अतः निश्चयनय के आश्रित ज्ञानी ही (आसक्ति के मिटने से) परम शान्ति प्राप्त करते हैं (२७२)। सच तो यह है कि समयसार व्यक्तित्व को बदलने पर जोर देता है। यही कर्म-बन्धन की समस्या का स्थायी हल है। मनुष्यों/प्राणियों और वस्तुओं में बाह्य परिवर्तन सामाजिक दृष्टिकोण से उपयोगी है, पर व्यक्ति की समस्या का वास्तविक समाधान नहीं है। अतः व्यवहारनय उपयोगी होते हुए भी शनैः शनैः त्याज्य है। समयसार का शिक्षण है कि अज्ञानी/व्यवहारनय पर आश्रित सब वस्तुओं में आसक्त होता है इसलिए कर्मरूपी रज से मलिन किया जाता है जिस प्रकार कीचड़ में पड़ा हुआ लोहा मलिन किया जाता है। किन्तु ज्ञानी/निश्चयनय पर आश्रित सब वस्तुओं में राग (आसक्ति) का त्यागी होता है, इसलिए वह कर्मरूपी रज से मलिन नहीं किया जाता है (२१९, २१८)। ठीक ही है, जब तक चेतना की परतंत्रता का कारण आसक्ति समाप्त न हो तब तक चेतना की स्वतंत्रता कैसे घटित हो सकती है?

आत्मा की स्वतंत्रता का विस्मरण ही अज्ञान है। इस विस्मरण का कारण है कि जन्म-जन्मों से आत्मा ने कर्मों के साथ एकीकरण स्थापित कर रखा है। इस एकीकरण के कारण ही आत्मा आसक्ति-जन्य प्रवृत्तियों में तल्लीन रहता है जिसके कारण मानसिक अशान्ति से वह घिर जाता है और परतंत्रता का जीवन जीता है। वह संसार में अज्ञान के कारण विभिन्न प्रकार के चेतन-अचेतन द्रव्यों से एकीकरण स्थापित करता रहता है (२०, २१, २२)। समयसार का कथन है कि परद्रव्य को आत्मा में ग्रहण करता हुआ तथा आत्मा को भी परद्रव्य में रखता हुआ व्यक्ति अज्ञानमय (मूर्च्छित) होता है (९२, ९६)। चूँकि अज्ञानी अपनी क्रोधादि कषायों से एकीकरण कर लेता है इसलिए उसके सभी भाव अज्ञानमय होते हैं (१२७, १२९)। समयसार का कहना है कि जैसे कनकमय वस्तु से कुण्डल आदि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और लोहमय वस्तु से कड़े आदि उत्पन्न होते हैं वैसे ही अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं (१३१)। अज्ञानी आत्म-स्वभाव को न जानता हुआ राग और आत्मा को एक ही मानता है (१८५)। वह कर्म के फल का सुख-दुःखरूप से अनुभव करता है। चूँकि ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं अतः वह कर्म के फल का ज्ञाता-दृष्टा होता है। उसे सुख-दुःखरूप से अनुभव नहीं करता है (३१६, ३१८, ३१९)। वह ज्ञानी क्रोधादि कषायों से, जो कर्म के कारण आत्मा में उत्पन्न हुए हैं तथा कर्मों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के फलों से आत्मसात नहीं करता है (७६, ७७, ७८)। ज्ञानी कर्म के फल को अनासक्तिपूर्वक ही भोगता है (१९५) किन्तु अज्ञानी आसक्तिपूर्वक कर्म के फल को भोगने के कारण कर्मों के बोझ को बढ़ाता रहता है।

मनुष्य विभिन्न प्रकार की कषायों का अनुभव करता है। इन कषायों के कारण ही पुद्गलकर्म परमाणु आत्मा से जुड़ जाते हैं और फिर ये कर्म-परमाणु समय पाकर आत्मा को कषायरूप में परिवर्तित करते रहते हैं (८०)। समयसार का कथन है कि अज्ञानी आत्मा ही इन कषायों का कर्ता होता है इसलिए वह अज्ञानी कर्ता (९७, १२६) है। यह कर्तृत्व आत्मा की परतंत्रता को बढ़ानेवाला है। चूँकि ज्ञानी आत्मा की स्वतंत्रता का पारखी होता है, इसलिए वह इन कषायों से एकीकरण नहीं करता है और इनका ज्ञायक बना रहता है। यहाँ समयसार का कहना है कि ज्ञानी कषायों को बिल्कुल नहीं करता है। वह उनका कर्ता नहीं है

(८२, २८०)। पुद्गल-कर्म के द्वारा उत्पन्न किये हुए किसी भी कषाय का आत्मा कर्ता नहीं है (८२)। ज्ञानी हर समय पर के आश्रयरहित होता है। वह स्वशासित रहता है तथा ज्ञायक सत्तामात्र बना रहता है (२१४)। ज्ञानी की यह विशेषता है कि वह दु:खात्मक कर्मों का उदय होने पर भी अपने ज्ञानीपन को नहीं छोड़ता है, जैसे आग से तपाया हुआ सोना अपने कनक-स्वभाव को नहीं छोड़ता है (१८४)। जैसे विष खा लेने पर भी कोई वैद्य विषनाशक प्रक्रिया अपनाने के कारण मरण को प्राप्त नहीं होता है, वैसे ही ज्ञानी पुद्गल-कर्म के उदय को अनासक्तिपूर्वक भोगने के कारण कर्मों से नहीं बाँधा जाता है।

अज्ञानी आत्मा अपनी कषायों के कारण पुद्गल कर्मों से युक्त होता है (८०)। इस तरह जैसे वह कषायों का अज्ञानी कर्ता होता है और उन्हीं का भोक्ता भी होता है (८४)। समयसार का कथन है कि व्यवहारनय के अनुसार आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है तथा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म के फलों को ही भोगता है (८४)। चूँकि व्यवहारनय चेतना की परतंत्रता से निर्मित दृष्टि है इसलिए अज्ञानी कर्ता व्यवहारनय के आश्रय से चलता है (१०१)। निश्चयनय के अनुसार आत्मा पुद्गल कर्मों को उत्पन्न नहीं करता है (१०१)। चूँकि निश्चयदृष्टि चेतना की स्वतंत्रता पर आश्रित दृष्टि है, इसलिए ज्ञानी कर्ता निश्चयनय के आश्रय से चलता है। जीव (आत्मा) के द्वारा कर्म किया गया है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है (१०५)। योद्धाओं द्वारा युद्ध किये जाने पर राजा के द्वारा युद्ध किया गया है – इस प्रकार लोक कहता है। उसी प्रकार व्यवहार से कहा जाता है कि अज्ञानी आत्मा के द्वारा कर्म किया गया है (१०६)। सच तो यह है कि आत्मा जिस भाव को अपने में उत्पन्न करता है उसका वह कर्ता होता है। ज्ञानी का यह भाव ज्ञानमय होता है और अज्ञानी का भाव अज्ञानमय होता है (१२६)। ज्ञानी शुद्ध भावों का कर्ता होता है और इसके विपरीत अज्ञानी अशुद्ध भावों (काम, क्रोध आदि) का कर्ता होता है। ज्ञानी ज्ञाता-दृष्टा होता है (२९८, २९९), इसलिए कर्मों के फल को व उनके बंध को जाननेवाला होता है, सुख-दुखात्मक फल को भोगनेवाला नहीं होता है (३१८, ३१९)। अज्ञानी कर्मों के फल व उनके बंध के साथ एकीकरण कर लेता है, इसलिए सुख-दुखात्मक फल को भोगनेवाला होता है (८४)।

यदि यह मान लिया जाए कि ज्ञानी अपने शुद्ध भावों का कर्ता व भोक्ता होने के साथ-साथ पुद्गल कर्म का भी कर्ता और भोक्ता होता है तो ऐसा होने से ज्ञानी दो विरोधी क्रियाओं से युक्त हो जायेगा (८५)। एक ओर तो हमें मानना होगा कि वह ज्ञानी स्व भावों का ही कर्ता और भोक्ता है तथा दूसरी ओर मानना होगा कि वह ज्ञानी पर भावों का भी कर्ता और भोक्ता है। ये दोनों विरोधी क्रियाएँ संभव नहीं हैं। यदि हम यह मानते हैं कि ज्ञानी पर भावों का कर्ता व भोक्ता है तो ज्ञानी को पर भावों से तन्मय होना पड़ेगा (९९) क्योंकि कर्ता होने की यह शर्त है कि उसे उस रूप परिवर्तित होना अनिवार्य है (९९)। यह स्वीकार किया गया है कि स्वभाव-विरुद्ध होने के कारण ज्ञानी कर्ता पुद्गल कर्मरूप या कषाय-जनित क्रियारूप परिवर्तित नहीं हो सकता, अतः वह उनका कर्ता नहीं हो सकता है (९९)। कोई भी चेतन सत्ता पुद्गल कर्मरूप या पुद्गल कर्म से उत्पन्न भावरूप परिवर्तित नहीं हो सकती है। समयसार का कहना है कि परद्रव्य को आत्मा में ग्रहण न करता हुआ तथा आत्मा को भी परद्रव्य में न रखता हुआ मनुष्य ज्ञानमय होता है। वह कर्मों का अकर्ता है (९३)। मनुष्य अज्ञान के कारण परद्रव्यों को आत्मा में ग्रहण करता है और आत्मा को भी परद्रव्य में रखता है। वह अज्ञानी कर्ता है (९२, ९७)। ज्ञानी कर्ता सब प्रकार के अज्ञानमय कर्तृत्व को छोड़ देता है (९७)।

यहाँ यह समझना चाहिये कि जैसे अज्ञानी व्यक्ति कषाय-जनित पुद्गल कर्मों का तथा कर्म-जनित कषायों का कर्ता होता है उसी प्रकार वह इस लोक में विविध कषायों से प्रेरित क्रियाओं का तथा घड़ा, कपड़ा, रथ आदि का कर्ता होता है (९८)। वह कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त होता है। यदि ज्ञानी व्यक्ति घड़ा, कपड़ा आदि परद्रव्यों को बनाये तथा विविध कषायजनित क्रियाओं को करे तो उसे उनरूप परिवर्तित होना पड़ेगा। यह असंभव है। अतः वह वास्तव में उनका कर्ता नहीं हो सकता (९९)। इस तरह यहाँ कहा जा सकता है कि व्यवहार से आत्मा उनका कर्ता है किन्तु निश्चय से नहीं (९८)। ज्ञानी में कर्तृत्व का अहंकार नहीं होता है। समाज की अपेक्षा ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही वस्तुओं व क्रियाओं के कर्ता हैं। उन दोनों में भेद अन्तरंग की अपेक्षा से होता है। एक अहंकारशून्य जीव है तो दूसरा अहंकारमयी।

नैतिक दृष्टिकोण से भाव दो प्रकार के होते हैं – शुभभाव और अशुभभाव। गुणियों में अनुराग, दुखियों के प्रति करुणा आदि शुभभाव हैं। अहंकार, कुटिलता

आदि अशुभ भाव हैं। अज्ञानी व्यक्ति इन दोनों भावों से एकीकरण कर लेता है और परतंत्र बन जाता है। अज्ञानी इन दोनों भावों का कर्ता व भोक्ता होता है (१०२)। ज्ञानी शुद्ध भावों (अतीन्द्रिय सुख, ज्ञान आदि) का कर्ता होता है। वह शुभ-अशुभ भावों का ज्ञाता-दृष्टा होता है।

ऊपर बताया जा चुका है कि जब व्यक्ति परतंत्रता का जीवन जीता है तब वह परभावों तथा परद्रव्यों से एकीकरण कर लेता है। इस एकीकरण के कारण उसमें वस्तुओं व व्यक्तियों के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है और उनके विषय में आसक्तिपूर्ण चिन्तन की धारा उसमें प्रवाहित होने लगती है। इस आसक्ति से ही उसमें काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, कुटिलता आदि उत्पन्न होते हैं जिनके फलस्वरूप वह मानसिक अशान्ति से ग्रस्त रहता है। वह (परतंत्र) व्यक्ति कर्मों का कर्ता, उनसे उत्पन्न कषायों का कर्ता, वस्तुओं का कर्ता तथा शुभ-अशुभ भावों का कर्ता अपने को मानने के कारण सुख-दुखात्मक परिणामों को भोगनेवाला होता है। इस तरह से वह द्वन्द्वात्मक जीवन जीता है और मानसिक अशान्ति में फँस जाता है। अज्ञानी का कर्तृत्व परतंत्रता का पोषक होता है। व्यवहारनय परतंत्रता से उत्पन्न दृष्टि का सूचक है। वह परतंत्र दृष्टि का द्योतक है। चूँकि परतंत्र दृष्टि वास्तविकता का बोध करानेवाली नहीं हो सकती है इसलिए व्यवहारनय अवास्तविकता का ही बोध कराता है। इस कारण से वह अवास्तविक है, असत्य है, अशाश्वत है। जो व्यवहारनय का आश्रय लेता है वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, मूर्च्छित है। अज्ञानी का एकमात्र लक्षण यह है कि उसे स्वचेतना की स्वतंत्रता का विस्मरण हो जाता है। मूर्च्छारूपी मैल उस पर छा जाता है और स्वतंत्रता अदृश्य हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे मैल से वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है (१५७)। परतंत्रतारहित अवस्था ही वास्तविकता है। यही स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। निश्चयनय स्वतंत्रता से प्राप्त दृष्टि का सूचक है। यह ही वास्तविकता का बोध कराता है। इसलिए यह वास्तविक है, सत्य है और शाश्वत है। जो वास्तविकता का आश्रय लेता है, वह ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है और जागृत है (११)। ज्ञानी को, सम्यग्दृष्टि को स्वचेतना की स्वतंत्रता का स्मरण हो जाता है। स्वतंत्रता का स्मरण ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि को शुद्ध आत्मा पर श्रद्धा हो जाती है, उसके स्वतंत्र स्वभाव पर श्रद्धा हो जाती है (१५५)। सम्यग्दृष्टि आत्मा को और उसके ज्ञायक स्वभाव को जानता है (२००)। वह आत्मा और अनात्मा में भेद करने लगता है (२०२)। सम्यग्दृष्टि प्रज्ञावान होता

है। समयसार का कथन है कि यह आत्मा प्रज्ञा के द्वारा ही ग्रहण की जाती है। वह आत्मा निश्चय से 'मैं' हूँ (२९७)। जो दृष्टा-भाव और ज्ञाता-भाव है, वही 'मैं' हूँ (२९८, २९९)। जो शेष भाव हैं वे मुझसे भिन्न हैं (२९८, २९९)। इस तरह से स्वचेतना की स्वतंत्रता का स्मरण होते ही व्यक्ति में ज्ञाता-दृष्टा भाव का उदय हो जाता है, उसकी प्रज्ञा जागृत हो जाती है, उसकी शुद्ध आत्मा पर दृष्टि लग जाती है और वह व्यक्ति निश्चय पर आश्रित हो जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि स्वचेतना की स्वतंत्रता का स्मरण होने से, ज्ञाता-दृष्टा भाव का उदय होने से, प्रज्ञा के जागृत होने से, शुद्ध आत्मा पर श्रद्धा होने से, निश्चयनय पर आश्रित होने से सम्यग्दृष्टि में निम्नलिखित विशेषताएँ पैदा हो जाती हैं - सम्यग्दृष्टि की आत्मा में श्रद्धा होती है, इसलिए उसको स्वचेतना की स्वतंत्रता में कोई शंका नहीं होती। इस कारण से वह निर्भय हो जाता है। १. सातों प्रकार के भय उसके जीवन से निकल जाते हैं (२२८)। २. वह किसी भी शुभ क्रिया से फल-प्राप्ति की चाहना नहीं करता है तथा उससे उत्पन्न कर्म-फल को भी नहीं चाहता है (२३०)। ३. वह जीवन में किसी भी सेवा-कार्य के प्रति घृणा नहीं करता (२३१)। ४. वह सभी (तथाकथित) शुभ कार्यों में मूढ़तारहित होता है। उनके प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाता है। समाज में शुभ समझे जानेवाले बहुत से कार्य मूर्खतापूर्ण हो सकते हैं। उनको करने का कोई सबल तार्किक आधार नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि ऐसे कार्यों को त्याग देता है और तार्किक दृष्टि अपनाता है (२३२)। ५. वह शुद्धात्मा की भक्ति से युक्त होता है। वह दूसरों की भलाई के कार्यों को गुप्त रखता है। उनको उजागर करके वह दूसरों को लघुता का अनुभव कभी नहीं कराता (२३३)। ६. वह यदि कषायों के दबाव से सद्मार्ग से विचलित हो जाता है तो भी अपने को पुनः सद्मार्ग में स्थापित कर लेता है (२३४)। ७. वह परम शान्ति के मार्ग में स्थित साधुओं के प्रति वात्सल्यता प्रकट करता है। ८. वह समतादर्शी द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की महिमा का प्रसार करता है (२३५)। इस प्रसार के लिए नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों का जीवन जीता है। समयसार का कथन है कि वह विद्या (अध्यात्म-ज्ञान) रूपी रथ पर बैठा हुआ संकल्परूपी नायक के द्वारा विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करता है (२३६)।

व्यक्ति के जीवन में सम्यग्दर्शन का उदय एक सारगर्भित घटना है। इससे उसके व्यक्तित्व में आमूल-चूल आन्तरिक परिवर्तन हो जाता है। उसे स्वचेतना

की स्वतंत्र अवस्था और परतंत्र अवस्था में मौलिक भेद समझ में आ जाता है। वह अब स्वतंत्रता के मार्गदर्शन में जीने की कला विकसित कर लेता है। उसमें यह ज्ञान विकसित हो जाता है कि शुद्ध ज्ञानात्मक चेतना में क्रोधादि कषाएँ नहीं रहती हैं (१८१)। कर्मों के अनेक फल उसके स्वभाव नहीं हैं। वह तो ज्ञायक सत्ता है (१९८)। वह जीवन में लोकोपयोगी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्रियाओं में प्रवृत्ति करता हुआ उनमें रागादि (आसक्ति) से मुक्त रहता है, इसलिए मानसिक अशान्ति से मलिन नहीं किया जाता (२४६)। वह स्वतंत्र आत्मा और परतंत्रता से उत्पन्न कर्मों का भेद समझ लेता है (७१)। अत: वह नये कर्मों को नियंत्रित कर लेता है (१७७)। वह कर्मों के फलों को ज्ञाता-दृष्टाभाव से भोगता है। वह वस्तुओं को उपयोग में लाते हुए भी उन पर आश्रित नहीं होता है क्योंकि वह अनासक्ति का जीवन जीता है (१९७)। उसे इन्द्रिय-विषयों में बिल्कुल ही राग नहीं होता (४१२)।

स्वचेतना की स्वतंत्रता का स्मरण होने के पश्चात् सम्यग्दृष्टि के जीवन में एक ऐसे ज्ञान का उदय होता है जो उसे चारित्र की साधना करने के लिए प्रेरित करता है। चारित्र की साधना के महत्त्व को समझाते हुए समयसार का कथन है कि जिस व्यक्ति में रागादि भावों का अंशमात्र भी विद्यमान है वह आगम का धारक होते हुए भी स्वतंत्रता के महत्त्व को पूरी तरह नहीं समझा है (२०१)। जो व्यक्ति शुद्धात्मा (स्वतंत्रता) पर निर्भर नहीं है किन्तु यदि वह बाह्य तप और व्रत धारण करता है, तो भी वह अबोध तप और अबोध व्रत ही कर रहा है (१५२)। व्रतों और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप का पालन करते हुए जो व्यक्ति शुद्ध आत्म-तत्त्व से अपरिचित हैं वे परम शान्ति को प्राप्त नहीं करते हैं। कुछ परतंत्रतावादी व्यक्ति ऐसे होते हैं कि यदि वे आगम ग्रन्थों का अध्ययन भी करते हैं तो बौद्धिक ज्ञान को चाहे वे प्राप्त करलें पर आत्मज्ञानीरूपी फल को वे उत्पन्न नहीं कर पाते हैं (२७४)। वे परतंत्रतावादी अपने अज्ञान-स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं, जैसे – सर्प गुड़सहित दूध को पीते हुए भी विषरहित नहीं होता है (३१७)। अत: कर्मों से छुटकारा पाने के लिए आत्मा के ज्ञायक स्वभाव का ज्ञान, आत्मा की स्वतंत्रता का ज्ञान या जीव-अजीव के भेद का ज्ञान ग्रहण किया जाना चाहिये (२०२, २०५, २००)। समयसार का शिक्षण है कि यदि व्यक्ति इसमें ही सदा संलग्न रहे, इससे ही तृप्त हो तो उसे

उत्तम सुख प्राप्त हो जायेगा (२०६)। ज्ञान और चारित्र के महत्त्व को समझाते हुए समयसार का कहना है कि प्रज्ञा (ज्ञान + चारित्र) के द्वारा ही आत्मा का अनुभव किया जाना चाहिये (२९६)। प्रज्ञा के द्वारा जीव तथा कर्म-बन्धन को विभक्त करने के कारण ही वे दोनों अलग-अलग हो जाते हैं (२९४)। इस प्रज्ञा के द्वारा जो ग्रहण किये जाने योग्य है वह आत्मा निश्चय से 'मैं' हूँ। जो अवशिष्ट वस्तुएँ हैं वे मेरे से भिन्न हैं (२९८, २९९)। ज्ञाता-दृष्टा और 'मैं' अभिन्न हैं। इसे प्रज्ञा (ज्ञान + चारित्र) के द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिये (२९८)।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि समयसार के अनुसार स्वतंत्रता की साधना का अर्थ है – आन्तरिक विकासोन्मुख आध्यात्मिक परिवर्तन। समयसार का यह विश्वास प्रतीत होता है कि व्यक्ति विभिन्न सामाजिक कारणों से प्रेरित होकर बाह्य साधना तो आसानी से कर लेता है पर आन्तरिक साधना जो एक अकेली यात्रा है, व्यक्ति कठिनाई से कर पाता है। केवल बाह्य साधना से सामाजिक संतुष्टि तो होती है पर आध्यात्मिक आन्तरिक विकास नहीं हो पाता है। इस कारण व्यक्ति लम्बे समय तक बाह्य साधना करने के पश्चात् भी अपनी जीवन पद्धति को नहीं बदल पाता है। अत: कहा जा सकता है कि शुद्ध आत्मा की ओर दृष्टि हुए बिना नियम, व्रत आदि का पालन सामाजिक दृष्टिकोण से उपयोगी होते हुए भी व्यक्ति के लिए व्यर्थ ही सिद्ध होता है। ऐसा होने से व्यक्ति में अशान्ति कम होने के स्थान पर बढ़ जाती है। वे योगी जो परमार्थ (आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन) का अभ्यास करते हैं वे ही अशान्ति का क्षय कर पाते हैं (१५६)। जो लोग निश्चय (आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन) की सार्थकता को छोड़कर व्यवहार (केवल बाह्य तप आदि) में प्रवृत्ति करते हैं वे अशान्ति को नष्ट नहीं कर पाते हैं। इस तरह से वे लोग स्वतंत्रता की साधना के स्थान पर परतंत्रता की साधना करने लग जाते हैं। अत: कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता की साधना व्यक्तित्व का आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कर्म-बन्धन (परतंत्रता/अशान्ति) के विषय में चिन्ता करने से कर्म-बन्धन नष्ट नहीं होता है (२९१)। चिन्ता व्याकुलता को जन्म देती है, इस कारण व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो पाता है। जो कर्म-बन्धन से उदासीन हो जाता है, जो वस्तुओं में आसक्ति को त्यागता है वही उससे छुटकारा पाता है और परम शान्ति प्राप्त करता है (२९२, २९३)।

साधना में पाप (अशुभ क्रिया) का त्याग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिंसक क्रिया के त्याग के साथ हिंसा के विचार का त्याग आवश्यक है। समयसार का शिक्षण है कि व्यक्ति प्राणियों की हिंसा कर पावे अथवा उनकी हिंसा न भी कर पावे तो भी उसके हिंसा के विचार से ही कर्म-बंध होता है। निश्चयनय के अनुसार यह व्यक्तियों के कर्म-बंध के कारण का संक्षेप है (२६३)। इसी प्रकार असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह के आसक्तिपूर्ण विचार को त्यागना ही विकास की ओर जाना है (२६२)। बाह्य पापपूर्ण क्रियाओं का त्याग समाज के लिए तो उपयोगी है, पर आन्तरिक त्याग के बिना व्यक्ति का विकास नहीं होता है। पाप (अशुभ क्रिया) के बीज का नाश ही व्यक्ति व समाज में स्थायी परिवर्तन ला सकता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह आदि का विचार पुण्य लाता है (२६४)। पुण्य शुभ क्रिया का ग्रहण है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि बहुत से व्यक्ति पुण्य (शुभ-क्रिया) में ही अटक जाते हैं। यह पुण्य (शुभ क्रिया) समाज को तो व्यवस्थित करता है किन्तु इसकी उपस्थिति में व्यक्ति अशान्ति से ग्रस्त रहता है। अतः जो क्रिया अशान्ति में प्रवेश कराती है वह उपयुक्त कैसे कही जा सकती है? इस तरह से जैसे पाप (अशुभ क्रिया) कर्म-बंध का कारण है वैसे ही पुण्य (शुभ-क्रिया) भी कर्म-बंध का कारण है। ये दोनों ही व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में बाधक हैं। समयसार का शिक्षण है कि जैसे – काले लोहे से बनी हुई बेड़ी व्यक्ति को बाँधती है और सोने की बेड़ी भी व्यक्ति को बाँधती है, उसी प्रकार व्यक्ति द्वारा की हुई शुभ-अशुभ क्रिया भी उसको परतंत्र बनाती है (१४६)। अतः समयसार का शिक्षण है कि व्यक्ति अशान्ति उत्पन्न करनेवाले दोनों कुशीलों (शुभ-अशुभ क्रियाओं) के साथ बिल्कुल राग/आसक्ति न करे, उनके साथ सम्पर्क भी न रखे क्योंकि आत्मा का स्वतंत्र स्वभाव कुशीलों के साथ सम्पर्क और उनके साथ राग से व्यर्थ हो जाता है (१४७)। जैसे कोई व्यक्ति निन्दित आचरणवाले मनुष्य को जानकर उसके साथ संसर्ग को और राग करने को छोड़ देता है, वैसे ही पाप-पुण्य की, शुभ-अशुभ क्रियाओं की आध्यात्मिक रूप से निन्दित प्रकृति को जानकर स्वभाव में लीन व्यक्ति उनके साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं और उनके साथ राग/आसक्ति को तज देते हैं (१४८, १४९)। किन्तु जो व्यक्ति शुद्ध आत्मा (स्वतंत्रता) से अपरिचित हैं, वे ही पुण्य (शुभ-क्रिया) में आसक्त रहते हैं (१५४)।

शुभ भावों से प्रेरित शुभ-क्रियाओं से समाज आगे बढ़ता है किन्तु व्यक्ति अशान्ति से दु:खी रहता है। समयसार परतंत्रता/अशान्ति को समाप्त करने की बात कहता है, जिससे शुद्ध क्रियाएँ (आसक्ति रहित शुभ क्रिया) की जा सकें। आसक्ति रहित शुभक्रियाएँ (शुद्ध क्रियाएँ) व्यक्ति व समाज दोनों के लिए हितकर हैं।

यहाँ यह समझना चाहिये कि स्वतंत्रता की साधना में इच्छाओं का त्याग महत्त्वपूर्ण है। इच्छाओं के कारण व्यक्ति वस्तुओं को आसक्तिपूर्वक अपनाता है, शुभ-अशुभ क्रियाओं को भी आसक्तिपूर्वक करता है। इच्छारहित व्यक्ति आसक्तिरहित होता है। अत: वह शुभ क्रियाओं तथा अशुभ क्रियाओं को नहीं चाहता है। वह उनका ज्ञायक होता है (२०१, २११)। यदि उसकी कोई जीवनोपयोगी वस्तु किसी के द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी जाती है, तोड़ दी जाती है, अथवा ले जाई जाती है अथवा वह सर्वनाश को प्राप्त हो जाती है या किसी कारण से दूर चली जाती है तो भी उसे अशान्ति नहीं होती है क्योंकि उसकी वस्तु में आसक्ति नहीं है (२०९)। स्वतंत्रता का साधक सदैव परवस्तु के आश्रयरहित होता है। वह स्वशासित रहता है तथा ज्ञायक सत्ता मात्र बना रहता है (२१४)।

यहाँ प्रश्न है – साधना में वेश का क्या महत्त्व है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि वेश निश्चय ही परम शान्ति का मार्ग नहीं है (४०९)। लोक में नाना प्रकार के साधुओं के वेश और गृहस्थों के वेश प्रचलित हैं। मूढ़ व्यक्ति किसी विशेष वेश को ही परम शान्ति/स्वतंत्रता का मार्ग बताता है (४०८)। किन्तु कोई भी वेश परमशान्ति/स्वतंत्रता का मार्ग नहीं हो सकता है (४१०)। इसलिए समयसार का शिक्षण है कि गृहस्थों और साधुओं के द्वारा धारण किये हुए वेशों की बात को त्यागकर व्यक्ति को सम्यग्दर्शन (स्वतंत्रता का स्मरण), सम्यक्ज्ञान (स्वतंत्रता का ज्ञान) और सम्यग्चारित्र (स्वतंत्रता में रमण) की आराधना करनी चाहिये (४०९, ४११)। दूसरे शब्दों में, वेश के आग्रह को त्यागकर व्यक्ति मोक्ष (स्वतंत्रता) के पथ में आत्मा को स्थापित करे, उसका ही ध्यान करे, उसका ही अनुभव करे और वहाँ ही सदा रहे (४१२)। जो लोग बहुत प्रकार के साधुवेशों में तथा गृहस्थवेशों में ममत्व करते हैं वे समयसार (आत्मानुभव/स्वतंत्रता के अनुभव) से अनभिज्ञ हैं (४१३)। समयसार का शिक्षण है कि

व्यवहारनय दोनों ही वेशों को स्वतंत्रता की साधना में उपयुक्त मानता है किन्तु निश्चयनय किसी भी वेश को स्वतंत्रता की साधना में स्वीकृति प्रदान नहीं करता (४१४)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समयसार निश्चयनय और व्यवहारनय से विषय का प्रतिपादन करता है। निश्चयनय चेतना की स्वतंत्रता से उत्पन्न दृष्टि है और व्यवहारनय चेतना की परतंत्रता से उत्पन्न दृष्टि है। ये दोनों ही बौद्धिक दृष्टियाँ हैं। किन्तु पूर्णता का अनुभव नयातीत है, (१०८, १४४)। वह बुद्धि से परे है। इसी अनुभव को हम जब दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं तो नयों का सहारा लेना पड़ता है। इसके अलावा हमारे पास कोई रास्ता भी तो नहीं है। इस रास्ते पर चलने से अनुभव की समग्रता खो जाती है और वह खण्ड-खण्डरूप में सामाजिक बन जाती है। सच तो यह है कि आत्मा (स्वतंत्रता) में स्थिर व्यक्ति दोनों नयों के कथनों को केवल जानता है। वह थोड़ी भी नयदृष्टि को ग्रहण नहीं करता है (१४३)। निस्संदेह बुद्धि महत्त्वपूर्ण होती है पर उसका महत्त्व सीमित रहता है। अनुभव के समक्ष वह निस्तेज बन जाती है। नयात्मक दृष्टि बुद्धि का कौशल है किन्तु पूर्णता का अनुभवी व्यक्ति बुद्धि के चातुर्य को त्यागकर अनुभव की सीढ़ी पर चढ़ जाता है। यहाँ ही आत्मानुभव की अखण्डता, अनन्तता और द्वन्द्वातीतता प्रकट होती है।

इस तरह समयसार व्यक्ति को उच्चतम आध्यात्मिक पद पर आसीन करने के लिए सक्षम है। निस्संदेह इसी असाधारण, गरिमापूर्ण सामर्थ्य के कारण आचार्य विद्यानन्द मुनिराज ने जयपुर चातुर्मास के अवसर पर 'समयसार' पर प्रवचन प्रारंभ किये। समयसार जैसे गूढ़ आगम ग्रन्थ के विषय को हृदयङ्गम कराने के लिए आचार्यश्री ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ से जिस सरल शैली का सहारा लिया वह अपूर्व है, अनूठी है, निराली है। श्रोताओं ने इन आध्यात्मिक प्रवचनों में जो रसानुभूति प्राप्त की वह वचनातीत व अवर्णनीय है। प्रवचनों के साथ-साथ आचार्यश्री ने एक नया प्रयोग और किया। समयसार की तेरह गाथाओं के सस्वर पाठ ने तो श्रोताओं को आनन्द-विभोर कर दिया। इस प्रयोग से श्रोताओं में प्राकृत के अध्ययन की रुचि जागृत हुई और वे प्राकृत के अध्ययन के महत्त्व को समझने लगे। जयपुर-चातुर्मास समयसार पर दिये गये प्रवचनों

से तथा प्राकृत-अपभ्रंश भाषा के महत्त्व को जनता के समक्ष उपस्थित करने से एक ऐतिहासिक चातुर्मास बन गया है।

आचार्यश्री के निर्देशन में पण्डित बलभद्र जैन द्वारा समयसार का संस्करण तैयार किया गया था। इसमें प्रथम बार मूल प्राकृत गाथाओं से इसका सम्पादन सम्पन्न हुआ था। अन्वयार्थ दिए जाने के कारण प्राकृत के अभ्यास का मार्ग इससे प्रशस्त हुआ है। इसी समयसार का यह तृतीय संस्करण जैनविद्या संस्थान को प्रकाशन के लिए सौंपा गया, इसके लिए हम आचार्यश्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। डॉ. सुदीप जैन ने संशोधित प्रेस प्रति जैनविद्या संस्थान को भेजी, इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

'समयसार' का विक्रय-मूल्य कम करने के लिए वर्षायोग समिति ने जन-सहयोग से प्राप्त राशि जैनविद्या संस्थान को प्रदान की उसके लिए उनके प्रति आभार व्यक्त करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

समयसार के प्रकाशन में सहयोगी कार्यकर्ता एवं जयपुर प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

तीर्थंकर संभवनाथ जयन्ती
कार्तिक पूर्णिमा,
वीर निर्वाण सम्वत् २५२४
१४.११.१९९७

**डॉ. कमलचन्द सोगाणी**
*संयोजक*
जैनविद्या संस्थान समिति

**णाणम्मि दंसणम्मि य, चरणम्मि य तीसु समयसारेसु।**
**सक्केदि जो ठवेदुं, गणमप्पाणं गणधरो सो॥**[1]

– जो अपने को तथा संघ को सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र – इन तीनों में तथा समयसार में स्थापित करने में समर्थ होता है वह आचार्य है।

१. भगवती आराधना, आचार्य शिवार्य, २९२।

# समयसार

ॐ

।। नमः समयसाराय।।

सिरि-कुन्दकुन्दाइरिय-प्पणीदं

# समयपाहुडं

**उत्थानिका**:—अह मंगलायरणं–

**वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं[1] गदिं पत्ते।**
**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवली-भणिदं।। 1-1-1।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि) **मैं** (धुव) **ध्रुव-शाश्वत** (अचलं) **और** (अणोवमं) **अनुपम** (गदिं) **गति पंचम-गति को** (पत्ते) **प्राप्त हुए** (सव्वसिद्धे) **सभी सिद्धों को** (वंदित्तु) **नमस्कार करके** (ओ) **हे भव्यजीवो !** (सुदकेवली-भणिदं) **श्रुतकेवलियों द्वारा कहे गये** (इणं) **इस** (समयपाहुडं) **समयप्राभृत को** (वोच्छामि) **कहूँगा।**

**अर्थ**:—हे भव्यजीवो ! मैं शाश्वत, अचल और (निखिलोपमारहित) पंचम गति को प्राप्त समस्त सिद्धों को नमस्कार करके श्रुतकेवलियों द्वारा कहे गये इस समयप्राभृत को कहूँगा।

***विशेष***:— *'वोच्छामि; पद का प्रयोग आचार्य कुन्दकुन्द ने 'सुदकेवली-भणिदं' की समीचीन संगति के लिए किया है। इस पद के प्रयोग से उन्होंने कहा है कि "मैं श्रुतकेवली प्रणीत का वक्ता मात्र हूँ, कर्त्ता नहीं।"*

*'ओ' पद का प्रयोग आचार्य ने समस्त भव्य-प्राणियों के संबोधनार्थ दिया है।*

**

1. अयलं, अमलं इतयपि पाठान्तरम्।

# पढमो जीवधियारो

**उत्थानिका**:—'स्वसमय' और 'परसमय' का लक्षण–

**जीवो चरित्त-दंसण-णाणठिदो[1] तं हि ससमयं जाणे[2]।**
**[3]पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।। 1-2-2।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवो) **जो जीव** (चरित्तदंसणणाणट्ठिदो) **शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है,** (तं) **उसे** (हि) **निश्चय से** (ससमयं) **स्वसमय** (जाणे) **जानो।** (च) **और** (पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं) **जो जीव पौद्गलिक कर्म-प्रदेशों में स्थित है,** (तं) **उसको** (परसमयं) **पर समय** (जाण) **जानो।**

***अर्थ***:—जो जीव शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है, उसे निश्चय से 'स्वसमय' जानो। और जो जीव पौद्गलिक कर्मप्रदेशों में स्थित है, उसको 'परसमय' जानो।

***विशेष***:—*यहाँ 'जाणे' पद मुमुक्षओं के लिए स्वेच्छापूर्वक जानने के आशय में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् यह पद इच्छावाचक है; और - 'जाण' पद आज्ञावाचक है।*

*जो जीव शुद्ध आत्माश्रित हैं, वे 'स्वसमय' कहलाते हैं। अरिहन्त और सिद्ध ही 'स्वसमय' हैं, क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान तक जीव 'परसमय' है।*

✱✱

---

1. 'णाणठिदो' – इस पाठ में छन्दानुरोध से ऐसा प्रयोग हुआ है, अन्यथा प्राकृतभाषा की दृष्टि से 'णाणट्ठिदो' शुद्धपाठ है।
2. **जाण, जाणे** – समानार्थक भिन्न प्रयोग। 'जाण' सामान्य है, जबकि 'जाणे' विशिष्ट है।
3. पोग्गल शब्द शौरसेनी प्राकृत का है। 'ओत्संयोगे' ।। 8.1.116।। (हैम०) इत्युकारस्यौकारः।

**उत्थानिका**:—'समय' की सुन्दरता–

**एयत्त-णिच्छयगदो, समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।**
**बंधकहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी[1] होदि।। 1-3-3।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एयत्तणिच्छयगदो) **एकत्व-निश्चय को प्राप्त जो** (समओ) **समय—शुद्ध आत्मा है, वह** (लोगे) **लोक में** (सव्वत्थ) **सर्वत्र** (सुंदरो) **सुंदर है;** (तेण) **इसलिए** (एयत्ते) **एकत्व में** (बंधकहा) **दूसरे के साथ बन्ध की कथा - बात** (विसंवादिणी) **विसंवाद करनेवाली** (होदि) **होती है।**

**अर्थ**:—एकत्व-निश्चय को प्राप्त (निश्चय से अपने स्वभाव में स्थित) शुद्ध आत्मा ही लोक में सर्वत्र सुंदर है (शोभा को प्राप्त होता है), इसलिए एकत्व में (दूसरे के साथ) बन्ध की कथा विसंवाद करनेवाली है।

***विशेष***:—*जीव अपने स्वभाव में स्थित रहने पर ही शोभा को प्राप्त होता है। यद्यपि 'समय' शब्द से धर्म, अधर्म आकाश, काल, पुद्गल एवं जीव – सभी द्रव्य लिये जाते हैं; तथापि यहाँ आत्मा अभिप्रेत है। पुद्गल कर्म के साथ जीव का बन्ध होने पर जीव में विसंवाद खड़ा होता है। इसीप्रकार धर्म, अधर्म आदि सभी अपने-अपने स्वभाव में स्थित ही सुन्दर होते हैं।*

**

---

1. "एतन्मते 'विसंवादिणो' पुल्लिंग एव पाठः।"

**उत्थानिका**:—एकत्व की दुर्लभता–

**सुद-परिचिदाणुभूदा, सव्वस्स वि काम-भोग-बंधकहा।**
**एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।। 1-4-4।।**

***सान्वय अर्थ***:—(काम-भोग-बंधकहा) **काम, भोग और बन्ध की कथा** (सव्वस्स वि) **सभी जीवों की** (सुद-परिचिदाणुभूदा) **सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव में आई हुई है; किन्तु** (णवरि) **केवल** (विहत्तस्स) **रागादि से भिन्न** (एयत्तस्स) **एकत्व की** (उवलंभो) **प्राप्ति** (सुलहो) **सुलभ (ण) नहीं है।**

**अर्थ**:—काम (स्पर्शन और रसना इन्द्रिय), भोग (घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) इन पाँचों इन्द्रियों के सम्बन्ध की और बन्ध की कथा सभी जीवों की सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव में आई हुई है; केवल रागादि से भिन्न एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

***विशेष***:—*सुदपरिचिदाणुभूदा-सुद (ज्ञान), परिचित (श्रद्धा), अणुभूदा (चारित्र) अर्थात् इस पद से यहाँ मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र लिये गये हैं।*

**

**उत्थानिका**:—आचार्य की प्रतिज्ञा–

**तं एयत्त-विहत्तं, दाएहं अप्पणो सविहवेण।**
**जदि दाएॅज्ज पमाणं, चुक्केॅज्ज[1] छलं ण घेत्तव्वं।। 1-5-5।।**

***सान्वय अर्थ***:—(तं) **उस पूर्वोक्त** (एयत्तविहत्तं) **एकत्वविभक्त–अभेदरत्नत्रयरूप आत्मस्वरूप को** (अप्पणो) **आत्मा के** (सविहवेण) **निज वैभव से** (दाएहं) **मैं दिखलाता हूँ।** (जदि) **यदि** (दाएॅज्ज) **मैं दिखाऊँ,** (पमाणं) **तो उसे प्रमाण मानना;** (चुक्केॅज्ज) **यदि कहीं चूक जाऊँ, तो** (छलं) **विपरीत भाव-दुर्जन के समान विपरीत अभिप्राय** – (ण) **नहीं** (घेॅत्तव्वं) **ग्रहण कर लेना।**

**अर्थ**:—(आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि) **मैं उस एकत्व-विभक्त** (अभेद रत्नत्रयरूप आत्मस्वरूप) **को आत्मा के निजवैभव से दिखाता हूँ। यदि मैं दिखाऊँ, तो उसे प्रमाण मानना। यदि मैं कहीं चूक जाऊँ, तो विपरीत अभिप्राय ग्रहण न कर लेना।**

***विशेष***:—*वक्ता के कथन के अभिप्राय को उलटकर उस वाक्य के अर्थ को अनर्थ में परिवर्तित कर देना 'छल' है।*

**

---

1. उत्तम पुरुष, चुक्केॅज्ज-क्रियातिपत्ति में ज्ज, ज्जा प्रत्यय जोड़ने के पूर्व सभी पुरुष और वचनें में अकार को एकार अर्थात् ए हो जाता है। चुक्क-चूकना। चुक्क-प्रमाद; प्राकृत प्रकाश 4-34, पृ० 46।
   चुक्क-भ्रंश धातु चुक्क-भुल्लः।। (हैम०) 8.4.177
   यही रूप विधिलिंग में भी आता है – आर० पिशल, पृ० 679।

उत्थानिका:—शुद्धात्मा का स्वरूप–

**ण वि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**
**एवं भणंति सुद्धं, णादो जो सो दु सो चेव।। 1-6-6।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जो दु) **जो** (जाणगो भावो) **ज्ञायक भाव है** – **वह** (ण वि) **न ही** (अप्पमत्तो) **अप्रमत्त** (होदि) **है,** (ण) **न** (पमत्तो) **प्रमत्त है** (एवं) —**इस प्रकार उसे** (सुद्धं) **शुद्ध** (भणंति) **कहते हैं।** (च) **और** (जो णादो) **जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ** (सो दु) **वह तो स्वरूप जानने की अवस्था में भी** (सो एव) **ज्ञायक ही है।**

**अर्थ:**—जो ज्ञायकभाव है, वह न ही अप्रमत्त है और न प्रमत्त है। इसप्रकार उसे शुद्ध कहते हैं; और जो (ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से) ज्ञात हुआ, वह तो (स्वरूप जानने की अवस्था में भी) ज्ञायक ही है।

**

उत्थानिका:—व्यवहार और निश्चय–

**ववहारेणुवदिस्सदि, णाणिस्स चरित्त-दंसणं णाणं।**
**ण वि णाणं ण चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो।। 1-7-7।।**

***सान्वय अर्थ:***—(णाणिस्स) **ज्ञानी के** (चरित्त-दंसणं-णाणं) **चारित्र, दर्शन, ज्ञान ये तीन भाव** (ववहारेण) **व्यवहार नय से** (उवदिस्सदि) **कहे जाते हैं, निश्चयनय से** (ण वि णाणं) **न ही ज्ञान है,** (ण चरित्तं) **न चारित्र है,** (ण दंसणं) **न दर्शन है; वह तो** (जाणगो) **ज्ञायक** (सुद्धो) **शुद्ध भाव है।**

**अर्थ:**—ज्ञानी के चारित्र, दर्शन, ज्ञान —ये तीन भाव व्यवहार नय से कहे गये हैं। निश्चय नय से न ही ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है। वह तो शुद्ध ज्ञायकभाव है।

**

**उत्थानिका**:—व्यवहार की आवश्यकता–

**जह ण वि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।**
**तह ववहारेण विणा, परमत्थुवदेसणमसक्कं।। 1-8-8।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (अणज्जो) **अनार्य को** (अणज्जभासं विणा दु) **अनार्य-भाषा के बिना** (गाहेदुं) **अर्थ-ग्रहण कराना —समझाना** (ण वि सक्कं) **शक्य नहीं है;** (तह) **उसी प्रकार** (ववहारेण विणा) **व्यवहार के बिना** (परमत्थुवदेसणं) **परमार्थ का उपदेश करना** (असक्कं) **अशक्य है।**

**अर्थ**:—जैसे अनार्य को अनार्य भाषा के बिना अर्थग्रहण कराना (आशय समझाना) शक्य नहीं है, उसीप्रकार व्यवहार नय के बिना परमार्थ का उपदेश करना अशक्य है।

✱✱

**उत्थानिका**:—श्रुतकेवली–

**जो हि सुदेणहिगच्छदि, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।**
**तं सुदकेवलिमिसिणो, भणंति लोयप्पदीवयरा।। 1-9-9।।**

**जो सुदणाणं सव्वं, जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।**
**सुदणाणमाद[1] सव्वं, जम्हा सुदकेवली तम्हा।। 1-10-10।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो जीव** (हि) **वास्तव में** (सुदेण तु) **श्रुतज्ञान-भावश्रुत से** (इणं) **इस अनुभवगोचर** (केवलं सुद्धं) **केवल एक शुद्ध** (अप्पाणं) **आत्मा का** (अहिगच्छादि) **अनुभव करता है,** (तं) **उसको** (लोयप्पदीवयरा) **लोक के प्रकाशक** (इसिणो) **ऋषिगण** (सुदकेवलिं) **श्रुतकेवली-निश्चय श्रुतकेवली** (भणंति) **कहते हैं।** (जो) **जो जीव** (सव्वं) **समस्त** (सुदणाणं) **श्रुतज्ञान को द्वादशाङ्ग-द्रव्यश्रुत को** (जाणदि) **जानता है,** (तं) **उसे** (जिणा) **जिनदेव** (सुदकेवलिं) **श्रुतकेवली—व्यवहार श्रुतकेवली** (आहु) **कहते हैं**; (जम्हा) **क्योंकि** (सव्वं) **सम्पूर्ण** (सुदणाणं) **श्रुतज्ञान-द्रवयश्रुतज्ञान के आधार से उत्पन्न भावश्रुत** (आद) **आत्मा है**; (तम्हा) **इस कारण** (सुदकेवली) **श्रुतकेवली है।**

**अर्थ**:—जो जीव वास्तव में भावश्रुत से अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है, उसको लोक-प्रकाशक ऋषि (निश्चय) 'श्रुतकेवली' कहते हैं।

जो जीव समस्त श्रुतज्ञान को (द्वादशाङ्ग द्रव्यश्रुत को) जानता है, उसे जिनदेव (व्यवहार) 'श्रुतकेवली' कहते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण श्रुतज्ञान (द्रव्य श्रुतज्ञान के आधार से उत्पन्न भावश्रुत) आत्मा है। इस कारण उसे 'श्रुतकेवली' कहते हैं।

**

---

1. "णाणं आदा सव्वं" तथा "णाणं अप्पा सव्वं" – इत्यपि पाठान्तरम्। शौरसेनी में 'आत्मा' के लिए 'आद' शब्द भी मिलता है। –पिशल, पृ० 165।

उत्थानिका:—निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है–

**ववहारोऽभूदत्थो, भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**
**भूदत्थस्सिदो खलु, सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।। 1-11-11।।**

***सान्वय अर्थ:***—(ववहारो) **व्यवहार नय** (अभूदत्थो) **अभूतार्थ है** (दु) **और** (सुद्धणओ) **शुद्धनय** (भूदत्थो) **भूतार्थ है —ऐसा** (देसिदो) **ऋषियों ने बताया है।** (जीवो) **जो जीव** (भूदत्थमस्सिदो) **भूतार्थ के आश्रित है,** (खलु) **निश्चय ही वह** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (हवदि) **है।**

**अर्थ:**—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है —(ऐसा ऋषियों ने) बताया है। जो जीव भूतार्थ के आश्रित है – भूतार्थ का आश्रय लेता है, निश्चय ही वह सम्यग्दृष्टि है।

✱✱

उत्थानिका:—व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् है–

**सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरिसीहिं।**
**ववहारदेसिदा पुण, जे दु अपरमेट्ठिदा भावे।। 1-12-12।।**

***सान्वय अर्थ:***—(परमभावदरिसीहिं) **परमभाव-शुद्धात्मभाव को देखनेवालों के द्वारा** (सुद्धादेशो) **शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला** (सुद्धो) **शुद्धनय-निश्चयनय** (णादव्वो) **जानने योग्य है;** (पुण) **और** (जे दु) **जो जीव** (अपरमे भावे) **अशुद्ध भाव में – श्रावक की अपेक्षा शुभोपयोग में एवं प्रमत्त-अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय में** (ठिदा) **स्थित हैं;** (ववहार देसिदा) **उनके लिये व्यवहाननय का उपदेश किया गया है।**

**अर्थ:**—शुद्धात्मभाव को देखनेवालों के द्वारा शुद्ध द्रव्य का कथन करनेवाला शुद्धनय-निश्चयनय जानने योग्य है। और जो जीव अशुद्ध भाव में (श्रावक की अपेक्षा शुभोपयोग में एवं प्रमत्त-अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय में) स्थित हैं, उनके लिए व्यवहारनय का उपदेश किया गया है।

✱✱

**उत्थानिका**:—शुद्धनय से जानना सम्यक्त्व है–

**भूदत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा य पुण्ण-पावं च।**
**आसव-संवर-णिज्जर-बंधो- मॉक्खो य सम्मत्तं।। 1-13-13।।**

***सान्वय अर्थ***:—(भूदत्थेणाभिगदा) **भूतार्थ – शुद्ध निश्चयनय से जाने हुए** (जीवाजीवा य) **जीव और अजीव** (पुण्णपावं च) **पुण्य और पाप** (आसवसंवरणिज्जर-बंधो) **आसव, संवर, निर्जरा, बन्ध** (मॉक्खो य) **और मोक्ष** (सम्मत्तं) **सम्यक्त्व हैं।**

**अर्थ**:—शुद्ध निश्चयनय से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष —ये नवपदार्थ सम्यक्त्व हैं (अभेदोपचार से सम्यक्त्व का विषय और कारण होने से सम्यक्त्व हैं; अथवा शुद्धनय से नवपदार्थों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती, अत: सम्यक्त्व हैं)।

***विशेष***:—*ये ही नवपदार्थ समयसार के विवेच्य विषय हैं।*

**

**उत्थानिका**:—शुद्धनय का लक्षण–

**जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।**
**अविसेसमसंजुत्तं, तं सुद्धणयं वियाणाहि।। 1-14-14।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो नय** (अप्पाणं) **आत्मा-शुद्धात्मा को** (अबद्धपुट्ठं) **बन्ध से रहित और पर के स्पर्श से रहित** (अणण्णयं)**अन्यत्व-रहित** (णियदं) **चलाचलता-रहित** (अविसेसं) **ज्ञान-दर्शनादि के भेद से रहित** (असंजुत्तं) **अन्य के संयोग से रहित–ऐसे छह भावरूप** (पस्सदि) **देखता है** (तं) **उसे** (सुद्धणयं) **शुद्धनय** (वियाणाहि) **जानो।**

**अर्थ**:—जो नय शुद्धात्मा को[1] बन्ध रहित[2], पर के स्पर्श से रहित[3], अन्यत्वरहित, नियत[4] (चलाचलतादि रहित)[6], ज्ञान-दर्शनादि के भेद से रहित और[5] अन्य के संयोग से रहित —ऐसे छह भावरूप देखता है, उसे शुद्धनय जानो।

**

**उत्थानिका**:—जो आत्मा को देखता है, वही जिनशासन को जानता है–

**जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।**
**[1]अपदेस-संत-मज्झं, पस्सदि जिणसासणं सव्वं।। 1-15-15।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो भव्यात्मा** (अप्पाणं) **अपनी आत्मा को** (अबद्धपुट्ठं) **अबद्ध और अस्पृष्ट** (अणण्णं) **अनन्य और** (अविसेसं) **अविशेष;** (तथा उपलक्षण से पूर्वोक्त गाथा में कथित 'नियत' और 'असंयुक्त') (अपदेस) **प्रदेशभेदरहित अखण्ड एवं** (संत) **शांत भाव-स्थित** (मज्झं) **आत्मा में** (पस्सदि) **देखता है,** (जानता है, अनुभव करता है – वही आत्मा) (सव्वं) **सम्पूर्ण** (जिणसासणं) **जिनशासन को** (पस्सदि) **देखता** (जानता) **है।**

**अर्थ**:—जो भव्यात्मा आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षण से पूर्वोक्त गाथा में कथित 'नियत' और 'असंयुक्त') निरंश-अखण्ड एवं परम शान्त भाव-स्थित आत्मा में देखता है, जानता है, अनुभव करता है; वही आत्मा सम्पूर्ण जिनशासन — 'स्वसमय' और 'परसमय' को जानता है।

**

**उत्थानिका**:—रत्नत्रय ही आत्मा है–

**दंसण-णाण-चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**
**ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। 1-16-16।।**

***सान्वय अर्थ***:—(साहुणा) **साधु को** (दंसणणाणचरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र की** (णिच्चं) **निरन्तर** (सेविदव्वाणि) **सेवा-उपासना करनी चाहिये;** (पुण च) **और** (ताणि तिण्णि वि) **उन तीनों को** (णिच्छयदो) **निश्चय नय से** (अप्पाणं एव) **एक आत्मा ही** (जाण) **जानो।**

**अर्थ**:—साधु को (व्यवहार नय से) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की सदा ही उपासना करनी चाहिये; और उन तीनों को निश्चय नय से एक ही आत्मा जानो।

**

---

1. 'शुद्धनयादेशात्तु उपयोग स्वभावस्य आत्मनः अप्रदेशत्वम्।' – राजवा० 5/8/22।

**उत्थानिका**:—रत्नत्रय के सेवन का क्रम–

**जह णाम को वि पुरिसो, रायाणं जाणिदूण सद्दहदि।**
**तो तं अणुचरदि पुणो, अत्थत्थीओ पयत्तेण।। 1-17-17।।**

**एवं हि जीवराया, णादव्वो तह ये सद्दहेदव्वो।**
**अणुचरिदव्वो य पुणो, सो चेव दु मोक्खकामेण।। 1-18-18।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह णाम) **जैसे** (को वि) **कोई** (अत्थत्थीओ पुरिसो) **धन का इच्छुक पुरुष** (रायाणं) **राजा को – छत्र-चमर आदि राजचिह्नों से** (जाणिदूण) **जानकर** (सद्दहदि) **श्रद्धा करता है – निश्चय करता है** (पुणो तो) **और उसके बाद** (तं) **उसको** (पयत्तेण) **प्रयत्नपूर्वक** (अणुचरदि) **सेवा करता है;** (एवं हि) **इसी प्रकार** (मोक्खकामेण) **मोक्ष के इच्छुक को** (जीवराया) **जीवरूपी राजा का** (णादव्वो) **ज्ञान करना चाहिये** (तह य) **तथा** (सद्दहेदव्वो) **श्रद्धान करना चाहिये** (पुणो य) **फिर** (सो चेव दु) **उसी का** (अणुचरिदव्वो) **अनुचरण-अनुभव करना चाहिये।**

**अर्थ**:—जैसे कोई धन का इच्छुक पुरुष राजा को (छत्र, चमर आदि राजचिह्नों से) पहिचानकर श्रद्धान-निश्चय करता है और उसके बाद प्रयत्नपूर्वक उसकी सेवा करता है। इसीप्रकार मोक्षार्थी पुरुष को जीवरूपी राजा का ज्ञान करना चाहिये तथा उसी का श्रद्धान करना चाहिये; फिर उसी का अनुचरण-अनुभव करना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा तब तक अज्ञानी रहता है–

**कम्मे णोकम्मम्हि य, अहमिदि अहकं[1] च कम्म णोकम्मं।**
**जा एसा खलु बुद्धी, अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।। 1-19-19।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जा) **जब तक इस आत्मा की** (कम्मे) **कर्म में – द्रव्यकर्म भावकर्म में** (णोकम्मम्हि य) **और शरीरादि नोकर्म में** (अहं) **"यह मैं हूँ"** (च) **और** (अहकं) **"मुझमें** (कम्म णोकम्मं इदि) **कर्म और नोकर्म हैं"** (एसा खलु बुद्धी) — **ऐसी बुद्धि है;** (ताव) **तब तक** (अप्पडिबुद्धो) (वह) **अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी** (हवदि) **होता/रहता है।**

**अर्थ**:—जब तक इस आत्मा की द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म में 'यह मैं हूँ' और 'मुझ में कर्म और नोकर्म हैं' ऐसी बुद्धि रहती है; तब तक यह आत्मा अज्ञानी है (रहता है)।

✸✸

1. महाराष्ट्री प्राकृत में 'अहअं' एवं '**अहयं**' तथा अर्धमागधी में '**अहगं**' रूप बनता है। अर्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री में 'क' लुप्त हो जाता है। अशोक के शिलालेख में 'हकं' मिलता है। — पिशल

**उत्थानिका**:—ज्ञानी और अज्ञानी जीव का पहचान–

**अहमेदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।**
**अण्णं जं परदव्वं, सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।। 1-20-20।।**
**आसि मम पुव्वमेदं, अहमेदं[1] चावि पुव्वकालम्हि।**
**होहिदि पुणो वि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि।। 1-21-21।।**
**एवं तु असंभूदं[2], आदवियप्पं करेदि संमूढो।**
**भूदत्थं जाणंतो, ण करेदि दु तं असंमूढो।। 1-22-22।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अण्णं) **अपने से अन्य** (जं) **जो** (सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा) **स्त्री-पुत्रादिक सचित्त-चेतन, धन-धान्यादिक अचित्त-अचेतन और ग्रामनगरादि मिश्र चेतनाचेतन** (परदव्वं) **जो परद्रव्य हैं, इनके सम्बन्ध में ऐसा समझे कि** (अहमेदं) **'यह मैं हूँ'**, (एदमहं) **'ये द्रव्य मुझ स्वरूप हैं'**, (अहमेदस्सेव होमि) **'मैं इसकी ही हूँ'**, (एदं मम) **'यह मेरा है'**, (मम पुव्वमेदं आसि) **'यह पूर्व मेरा था'**, (पुव्वकालम्हि अहं चावि एदं) **'पूर्वकाल में मैं भी इस रूप था'**, (पुणो वि मज्झं होहिदि) **'भविष्य में भी ये मेरे होंगे'**, (अहमेदं चावि होस्सामि) **'भविष्य में मैं भी इस रूप होऊँगा'** (एद तु) **—इसप्रकार का** (असंभूदं) **मिथ्या** (आदवियप्पं) **आत्म-विकल्प** (करेदि) **जो करता है;** (संमूढो) **वह अज्ञानी-बहिरात्मा है।** (दु) **और जो** (भूदत्थं) **भूतार्थ-परमार्थ वस्तुस्वरूप को** (जाणंतो) **जानता हुआ** (तं) **वैसा झूठा विकल्प** (ण करेदि) **नहीं करता, वह** (असंमूढो) **ज्ञानी-अन्तरात्मा है।**

**अर्थ**:—अपने से अन्य जो स्त्री-पुत्रादिक चेतन, धन-धान्यादिक अचेतन और ग्राम-नगरादि चेतनाचेतन परद्रव्य हैं; इनके सम्बन्ध में ऐसा समझे कि 'यह मैं हूँ', 'यह द्रव्य मुझ स्वरूप हैं', 'मैं इसका ही हूँ', 'यह मेरा है', 'यह पूर्व में मेरा था', 'पूर्वकाल में मैं भी इस रूप था', 'भविष्य में भी यह मेरा होगा', 'भविष्य में मैं भी इस रूप होऊँगा'—इसप्रकार का मिथ्या आत्म-विकल्प जो करता है, वह अज्ञानी (बहिरात्मा) है; और जो परमार्थ वस्तुस्वरूप को जानता हुआ वैसा झूठा विकल्प नहीं करता, वह ज्ञानी अन्तरात्मा है। ✱✱

---

1. 'एदस्स अहं पि' – यह पाठ भी कहीं-कहीं प्रचलित हैं।
2. 'एयं तु असब्भूदं' – पाठ भी प्रचलित है।

**उत्थानिका**:—आचार्य द्वारा प्रतिबोध–

**अण्णाणमोहिदमदी, मज्झमिणं भणदि पोंग्गलं दव्वं।**
**बद्धमबद्धं च तहा, जीवो बहुभावसंजुत्तो।। 1-23-23।।**

**सव्वण्हु-णाणदिट्ठो, जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।**
**किह सो पोंग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।। 1-24-24।।**

**जदि सो पोंग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।**
**तो सक्का वोत्तुं जे, मज्झमिणं पोंग्गलं दव्वं।। 1-25-25।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अण्णाणमोहिदमदी) **अज्ञान से जिसकी बुद्धि मोहित है,** (बहुभावसंजुत्तो) **जो मिथ्यात्व-रागादि अनेक भावों से युक्त है।** (जीवो) (वह) **जीव** (भणदि) **कहता है कि** (इणं) **"यह** (बद्धं) **बद्ध-सम्बद्ध देहादि** (तहा अबद्ध च) **तथा अबद्ध**—देह **से भिन्न स्त्री-पुत्रादि** (पोंग्गलं दव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (मज्झं) **मेरा है;" किन्तु** (सव्वण्हुणाणदिट्ठो) **सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया जो** (णिच्चं उवओगलक्खणो) **सदा उपयोगलक्षणवाला** (जीवो) **जीव है,** (सो) **वह** (पोंग्गलदव्वीभूदो) **पुद्गलद्रव्यरूप** (किह) **कैसे हो सकता है?** (जं) **जो** (भणसि) **कहता है कि "**(मज्झमिणं) **यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।"** (जदि) **यदि** (सो) **जीवद्रव्य** (पोंग्गलदव्वी भूदो) **पुद्गलद्रव्य रूप हो जाये और** (इदरं) **पुद्गलद्रव्य;** (जीवत्तमागदं) **जीवत्व को प्राप्त हो जाय;** (तो) **तो** (वोत्तुं सक्का) **कहा जा सकता है** (जे) **कि** (इणं पोंग्गल दव्वं) **"यह पुद्गलद्रव्य** (मज्झं) **मेरा है।"**

**अर्थ**:—अज्ञान से मोहित बुद्धिवाला और मिथ्यात्व-रागादि अनेक भावों से युक्त जीव कहता है कि "यह बद्ध-सम्बद्ध देहादि तथा अबद्ध—देह से भिन्न स्त्री-पुत्रादि पुद्गल द्रव्य मेरा है;" किन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया जो सदा उपयोगलक्षण वाला जीव है, वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो सकता है, जो कहता है कि "यह पुद्गल द्रव्य मेरा है।" यदि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय और पुद्गलद्रव्य जीवत्व को प्राप्त हो जाय; तो कहा जा सकता है कि "यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।"

✱✱

उत्थानिका:—पुन: शंका करता है–

**जदि जीवो ण सरीरं, तित्थयरायरिय-संथुदी चेव।**
**सव्वा वि हवदि मिच्छा, तेण दु आदा हवदि देहो।। 1-26-26।।**

***सान्वय अर्थ:***—**कोई अज्ञानी शिष्य पूछता है** – "(जदि) **यदि** (जीवो) **जीव** (सरीरं) **शरीर** (ण) **नहीं है, तो** (तित्थयरायरियसंथुदी) **तीर्थंकरों और आचार्यों की स्तुति** (सव्वा वि) **सभी** (मिच्छा) **मिथ्या** (हवदि) **है** (कही जायेगी)। (तेण दु) **इसलिए हम मानते हैं कि** (आदा) **आत्मा** (देहो) **देह ही** (हवदि) **है।**"

**अर्थ:**—(कोई अज्ञानी शिष्य कहता है कि) यदि जीव शरीर नहीं है, तो तीर्थंकरों और आचार्यों की स्तुति करना सभी मिथ्या हो जायगा; इसलिए (हम मानते हैं कि) आत्मा देह ही है।

**

उत्थानिका:—आचार्य उत्तर देते हैं–

**ववहारणओ भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।**
**ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदावि एक्कट्ठो।। 1-27-27।।**

***सान्वय अर्थ:***—(शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं) – (ववहारणओ) **व्यवहारनय** (भासदि) **कहता है कि** (जीवो देहो य) **"जीव और देह** (खलु) **वस्तुत:** (एक्को) **एक (हवदि) हैं" और** (णिच्छयस्स दु) **निश्चयनय के अभिप्राय के अनुसार तो** (जीवो देहो य) **जीव और देह** (कदावि) **कभी** (एक्कट्ठो) **एक पदार्थ** (ण) **नहीं हैं।**

**अर्थ:**—(शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं) – व्यवहारनय कहता है कि "जीव और देह वस्तुत: एक हैं" और निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार "तो जीव और देह कभी एक पदार्थ नहीं हैं।"

**

**उत्थानिका**:—व्यवहार नय से केवली की स्तुति–

**इणमण्णं जीवादो, देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणि[1] ।**
**मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं[2] ।। 1-28-28 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवादो) **जीव से** (अण्णं) **भिन्न** (इणं) **इस** (पोग्गलमयं देहं) **पुद्गलमय देह की** (थुणित्तु) **स्तुति करके** (मुणि) **मुनि** (मण्णदि हु) **ऐसा मानता है कि** (मए) **मैंने** (केवली भयवं) **केवली भगवान् की** (संथुदो) **स्तुति की और** (वंदिदो) **वंदना की।**

**अर्थ**:—जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है कि 'मैंने केवली भगवान् की स्तुति की और वंदना की।'

**

**उत्थानिका**:—निश्चयनय से केवली की स्तुति–

**तं णिच्छये ण जुंजदि, ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।**
**केवलिगुणे थुणदि जो, सो तच्चं केवलिं थुणदि ।। 1-29-29 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(तं) **वह स्तुति** (णिच्छये) **निश्चय नय में** (ण जुंजदि) **उचित नहीं है, क्योंकि** (सरीरगुणा) **शरीर के शुक्ल-कृष्णादि गुण** (केवलिणो) **केवली भगवान् के** (ण हि होंति) **नहीं होते।** (जो) **जो** (केवलिगुणे) **केवली भगवान् के गुणों की** (थणुदि) **स्तुति करता है,** (सो) **वह** (तच्चं) **परमार्थ से** (केवलिं) **केवली भगवान्** (जदि) **की** (थुणदि) **स्तुति करता है।**

**अर्थ**:—यह स्तुति निश्चयनय में उचित नही है, क्योंकि शरीर के (शुक्ल कृष्णादि) गुण केवली भगवान् के नहीं होते हैं। जो केवली भगवान् के गुणों की स्तुति करता है, वह परमार्थ से केवली भगवान् की स्तुति करता है।

**

---

1. छन्दारोध से 'मुणी' ऐसा दीर्घ ईकारान्त पाठ बनना चाहिए।
2. 'भगवं' यह पाठ शौरसेनी की दृष्टि से शुद्ध है।

**उत्थानिका**:—देह की स्तुति गुण-स्तुति नहीं है–

**णयरम्मि[1] वण्णिदे जह, ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।[2]**
**देहगुणे थुव्वंते, ण केवलिगुणा थुदा होंति।। 1-30-30।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (णयरम्मि) **नगर का** (वण्णिदे वि) **वर्णन करने पर भी** (रण्णो) **राजा का भी** (वण्णणा) **वर्णन** (कदा) **किया हुआ** (ण होदि) **नहीं होता; इसी प्रकार** (देहगुणे) **देह के गुणों की** (थुव्वंते) **स्तुति करने पर** (केवलिगुणा) **केवली भगवान् के गुणों की** (ण थुदा होंति) **स्तुति नहीं होती।**

**अर्थ**:—जैसे नगर का वर्णन करने पर भी राजा का वर्णन किया हुआ नहीं होता, इसीप्रकार देह के गुणों की स्तुति करने पर केवली भगवान् के गुणों की स्तुति नहीं होती।

**

**उत्थानिका**:—आत्मज्ञानी ही जितेन्द्रिय है–

**जो इंदिये[3] जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**
**तं खलु जिदिंदियं ते, भणंति जे णिच्छिदा साहू।। 1-31-31।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (इंदिये) **इन्द्रियों को** (जिणित्ता) **जीतकर** (णाणसहावाधियं) **ज्ञान स्वभाव से अधिक-शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण** (आदं) **आत्मा को** (मुणदि) **जानता है – अनुभव करता है;** (तं) **उस पुरुष को** (जे) **जो** (णिच्छिदा) **निश्चय नय में स्थित** (साहू) **साधु हैं,** (ते) **वे** (खलु) **निश्चय ही** (जिदिंदियं) **जितेन्द्रिय** (भणंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—जो इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव से अधिक (शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता है); उस पुरुष को जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे निश्चय ही जितेन्द्रिय कहते हैं।

**

---

1. यहाँ मूल में 'होंति' पाठ चाहिये। प्रकरण की दृष्टि से भी तथा छन्दानुरोध से भी।
2. यहाँ सप्तमी का प्रयोग विशिष्ट है। ('सति' सप्तमी वाला प्रयोग)।
3. यह विशिष्ट प्रयोग है; क्योंकि यह द्वितीया बहु० अका० नपुंसकलिंग शब्द है।

उत्थानिका:—मोहविजेता साधु–

**जो मोहं तु जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**
**तं जिदमोहं साहुं, परमट्ठवियाणया विंति।। 1-32-32।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जो तु) **जो** (मोहं) **मोह को** (जिणित्ता) **जीतकर** (णाणसहावाधियं) **ज्ञानस्वभाव से अधिक–शुद्ध ज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण** (आदं) **आत्मा को** (मुणदि) **जानता है – अनुभव करता है,** (तं साहुं) **उस साधु को** (परमट्ठवियाणया) **परमार्थ के जाननेवाले पूर्वाचार्य** (जिदमोह) **मोहविजेता** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—जो (साधु) मोह को जीतकर ज्ञानस्वभाव से अधिक (शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता है), उस साधु को परमार्थ के जानने वाले पूर्वाचार्य 'मोहविजेता' कहते हैं।

✱✱

उत्थानिका:—क्षीणमोह साधु–

**जिदमोहस्स दु जइया[1], खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स।**
**तइया[2] हु खीणमोहो, भण्णदि[3] सो णिच्छयविदूहिं।। 1-33-33।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जइया) **जब** (जिदमोहस्स) **जिसने मोह जीत लिया है, ऐसे** (साहुस्स) **साधु का** (मोहो) **मोह** (खीणो) **क्षीण** (हवेज्ज) **हो जाता है;** (तइया) **तब** (णिच्छयविदूहिं) **निश्चय के जाननेवाले ज्ञानीजन** (सो) **उस साधु को** (हु) **निश्चय से** (खीणमोहो) **क्षीणमोह** (भण्णदि) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—जब 'जिसने मोह जीत लिया है' —ऐसे साधु का मोह क्षीण हो जाता है; तब निश्चय के जाननेवाले उस साधु को निश्चय ही 'क्षीणमोह' कहते हैं।

✱✱

---

1-2. 'जइया', 'तइया' —ये जदा-तदा के स्थान पर विशिष्ट प्रयोग हैं।

3. 'भण्णदि' यहाँ विचारणीय प्रयोग है। क्योंकि यह कर्तृवाच्य का प्रयोग है, जबकि यहाँ कर्मवाच्य प्रयुक्त हुआ है।

**उत्थानिका**:—ज्ञान प्रत्याख्यान ही है–

**सव्वे भावे जम्हा, पच्चक्खादी परे त्ति णादूण।**
**तम्हा पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणेदव्वं।। 1-34-34।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जम्हा) **यत:** (सव्वे भावा) **सब भावों को** (परे) **ये "पर हैं"** —(त्ति णादूण) **यह जानकर** (पच्चक्खादी) **त्याग देता है,** (तम्हा) **इस कारण** (पच्चक्खाणं) **प्रत्याख्यान** (णाणं) **ज्ञान ही है – ऐसा** (णियमा) **नियम से – निश्चय से** (मुणेदव्वं) **मननपूर्वक जानना चाहिए।**

**अर्थ**:—यत: सब भावों को "पर है" —यह जानकर त्याग देता है। इस कारण प्रत्याख्यान ज्ञान ही है, ऐसा निश्चय से (मननपूर्वक) जानना चाहिए।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी द्वारा परभावों का त्याग–

**जह णाम को वि पुरिसो, परदव्वमिणं ति जाणिदुं मुयदि।**
**तह सव्वे परभावे, णादूण विमुंचदे णाणी।। 1-35-35।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह णाम) **जैसे लोक में** (को वि पुरिसो) **कोई पुरुष** (इणं परदव्वं) **'यह परद्रव्य है'** – (ति जाणिदुं) **ऐसा जानकर** (मुयदि) **उसे त्याग देता है;** (तह) **उसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी पुरुष** (सव्व परभावे) **समस्त परभावों को** (णादूण) **'ये परभाव हैं' – ऐसा जानकर उन्हें** (विमुंचदे) **छोड़ देता है।**

**अर्थ**:—जैसे लोक में कोई पुरुष 'यह पर द्रव्य है' –ऐसा जानकर उसे त्याग देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष समस्त परभावों को 'ये परभाव हैं' –ऐसा जानकर उन्हें छोड़ देता है।

**

उत्थानिका:—मोह से निर्ममत्व–

**णत्थि मम को वि मोहो, बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**
**तं मोह-णिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया[1] विंति।। 1-36-36।।**

***सान्वय अर्थ:***—(बुज्झदि) **जो ऐसा जानता है कि** (मोहो) **"मोह** (मम) **मेरा** (को वि णत्थि) **कुछ भी नहीं है** (एक्को) **एक** (उवओग एव अहं) **ज्ञान-दर्शनपयोगरूप ही मैं हूँ"** – (तं) **इसप्रकार जानने उस ज्ञानी को** (समयस्स) **सिद्धान्त के अथवा आत्मतत्त्व के** (वियाणया) **जाननेवाले पूर्वाचार्य** (मोहणिम्ममत्तं) **मोह से निर्ममत्व** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—जो ऐसा जानता है कि "मोह मेरा कुछ भी नहीं है, एक ज्ञान-दर्शनोपयोग रूप ही मैं हूँ –इसप्रकार जाननेवाले को सिद्धान्त या आत्मस्वरूप के ज्ञाता पूर्वाचार्य मोह से निर्ममत्व कहते हैं।

✱✱

उत्थानिका:—धर्मद्रव्य से निर्ममत्व–

**णत्थि हि मम धम्मादी, बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**
**तं धम्म-णिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया[2] विंति।। 1-37-37।।**

***सान्वय अर्थ:***—(बुज्झदि) **जो ऐसा जानता है कि** (धम्मादी) **"धर्म आदि द्रव्य** (मम हि णत्थि) **निश्चय ही मेरे नहीं हैं,** (ऍक्को) **एक** (उवओग एव अहं) **उपयोगरूप ही मैं हूँ" (तं) –ऐसा जाननेवाले को** (समयस्स) **सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के** (वियाणया) **जाननेवाले पूर्वाचार्य** (धम्मणिम्ममत्तं) **धर्मद्रव्य** (आदि) **से निर्ममत्व** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—जो ऐसा जानता है कि 'धर्म आदि द्रव्य निश्चय ही मेरे नहीं हैं, एक ज्ञानदर्शनोपयोगरूप ही मैं हूँ।' —इसप्रकार जाननेवाले को सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के जाननेवाले पूर्वाचार्य धर्मद्रव्य से निर्ममत्व कहते हैं।

✱✱

---

1. 'वियाणया' की जगह 'विजाणगा' रूप अधिक तार्किक प्रतीक होता है।
2. पूर्ववत्

उत्थानिका:—उपसंहार–

**अहमेक्को[1] खलु सुद्धो, दंसण-णाणमइओ सयारूवी[2] ।**
**ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि, अण्णं परमाणुमेत्तं पि ।। 1-38-38 ।।**

***सान्वय अर्थ:***—**ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि "**(अहं) **मैं** (ऍक्को) **एक हूँ,** (खलु) **निश्चय ही** (सुद्धो) **शुद्ध हूँ** (दंसणणाणमइओ) **दर्शन-ज्ञानमय हूँ,** (सयारूवी) **रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के अभाव के कारण सदा अरूपी हूँ,** (किंचि वि अण्णं) **कोई भी परद्रव्य** (परमाणुमेत्तं पि) **परमाणुमात्र भी** (मज्झ) **मेरा** (ण वि अत्थि) **नहीं है ।"**

**अर्थ:**—(ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि) मैं एक हूँ, निश्चय ही शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञानमय हूँ, (रूप, रस, गंध, स्पर्श के अभाव के कारण) सदा अरूपी हूँ, कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है।

✱✱

**।। इदि पढमो जीवाधियारो समत्तो ।।**

---

1. सभी प्राकृत बोलियों में 'ऍक्क' रूप मिलता है। —पिशल, पृ० 644।
2. 'सदारूवी' पाठ अधिक समीचीन है।

# दुतियो जीवाजीवाधियारो

**उत्थानिका**:—जीव के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यतायें–

**अप्पाणमयाणंता, मूढा दु परप्पवादिणो केई।**
**जीवं अज्झवसाणं, कम्मं च तहा परूविंति।। 2-1-39।।**

**अवरे अज्झवसाणेसु तिव्व-मंदाणुभावगं जीवं।**
**मण्णंति तहा अवरे, णोकम्मं चावि जीवो त्ति।। 2-2-40।।**

**कम्मस्सुदयं जीवं, अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।**
**तिव्वत्तण-मंदत्तण-गुणेहि जो सो हवदि जीवो।। 2-3-41।।**

**जीवो कम्मं उहयं, दोण्णि वि खलु के वि जीवमिच्छंति।**
**अवरे संजोगेण दु, कम्माणं जीवमिच्छंति।। 2-4-42।।**

**एवंविहा बहुविहा, परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।**
**ते ण परमट्ठवादी, णिच्छयवादीहि णिद्दिट्ठा।। 2-5-43।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अप्पाणमयाणंता) **आत्मा को न जानते हुए** (परप्पवादिणो) **परद्रव्य को आत्मा कहनेवाले** (कोई मूढा दु) **कोई मूढ़ अज्ञानी तो** (अज्झवसाणं) **रागादि अध्यवसान को** (तिहा च) **और** (कम्मं) **कर्म को** (जीवं) **जीव** (परूविंति) **कहते हैं,** (अवरे) **अन्य कुछ लोग** (अज्झवसाणेसु) **रागादि अध्यवसानों में** (तिव्वमंदाणुभावगं) **तीव्र, मन्द तारतम्य स्वरूप शक्ति-माहात्म्य को** (जीवं) **जीव** (मण्णंति) **मानते हैं,** (तहा) **तथा** (अवरे) **अन्य कोई** (णोकम्मं) **नोकर्म-शरीरादि** (चावि) **भी** (जीवो त्ति) **जीव है –ऐसा मानते हैं,** (अवरे) **अन्य कुछ लोग** (कम्मस्सुदयं) **कर्म के उदय को** (जीवं) **जीव मानते हैं, कुछ लोग** (जो) **जो** (तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहि) **तीव्रता-मन्दतारूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है,** (सो) **वह** (जीवो) **जीव** (हवदि) **है –इसप्रकार** (कम्माणुभागं) **कर्मों (के अनुभाग को** (इच्छंति) **जीव है ऐसा इष्ट करते हैं – मानते हैं,** (के वि) **कोई** (जीवो कम्मं उहयं)

**जीव और कर्म** (दोण्णि वि) **दोनों मिले हुओं को ही** (खलु जीवमिच्छंति) **जीव मानते हैं** (अवरे दु) **और दूसरे** (कम्माणं संजोगेण) **कर्मों के संयोग से** (जीवमिच्छंति) **जीव मानते हैं;** (एवं विहा) **–इसप्रकार के** (बहुविहा) **तथा अन्य भी अनेक प्रकार के** (दुम्मेहा) **दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि लोग** (परं) **पर को** (अप्पाणं) **आत्मा** (वदंति) **कहते हैं।** (ते) **"वे एकान्तवादी** (परमट्ठवादी) **परमार्थवादी** (ण) **नहीं है"** –**ऐसा** (णिच्छयवादीहि) **निश्चयवादियों ने** (णिद्दिट्ठा) **कहा है।**

**अर्थ**:—आत्मा को न जानते हुए परद्रव्य को आत्मा कहनेवाले मूढ़ अज्ञानी तो रागादि अध्यवसान को और कर्म को जीव कहते हैं। अन्य कुछ लोग रागादि अध्यवसानों में तीव्र-मन्द तारतम्य —स्वरूप शक्ति-माहात्म्य को जीव मानते हैं; तथा अन्य कोई 'नोकर्म-शरीरादि को भी जीव है' –ऐसा मानते हैं। अन्य कुछ लोग कर्म के उदय को जीव मानते हैं। कुछ लोग 'जो तीव्रता-मन्दतारूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है, वह जीव है', –इसप्रकार 'कर्मों के अनुभाग को यह जीव है' ऐसा इष्ट करते हैं – मानते हैं। कोई जीव और कर्म दोनों मिले हुओं को ही जीव मानते हैं। और दूसरे कर्म के संयोग से जीव मानते हैं —इसप्रकार के तथा अन्य भी बहुत प्रकार के मूढ़ लोग पर को आत्मा कहते हैं। ऐसे "एकान्तवादी परमार्थवादी नहीं है, –ऐसा निश्चयवादियों ने कहा है।

✱✱

**उत्थानिका**:—अध्यवसानादि जीव नहीं है–

**एदे सव्वे भावा, पोग्गलदव्व-परिणाम-णिप्पण्णा।**
**केवलिजिणेहि भणिदा, किह[1] ते जीवो त्ति वुच्चंति।। 2-6-44।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदे) **"ये – पूर्वोक्त अध्यवसानादिक** (सव्वे भावा) **समस्त भाव** (पोग्गलदव्व-परिणाम-णिप्पण्णा) **पुद्गलद्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं,** –**ऐसा** (केवलिजिणेहि) **केवली जिनेन्द्र भगवान् ने** (भणिदा) **कहा है; "**(ते) **वे** (जीवो) **जीव हैं" –** (त्ति) **ऐसा** (किह) **कैसे** (वुच्चंति) **कहा जा सकता है।**

**अर्थ**:—"ये पूर्वोक्त अध्यवसानादिक समस्त भाव पुद्गल द्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा केवली जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है। "वे जीव हैं", —ऐसा कैसे कहा जा सकता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आठों कर्म पुद्गलमय हैं–

**अट्ठविहं पि य कम्मं, सव्वं पोग्गलमयं जिणा विंति।**
**जस्स फलं तं वुच्चदि, दुक्खं ति विपच्चमाणस्स।। 2-7-45।।**

***सान्वय अर्थ***:—"(अट्ठविहं पि य) **आठों प्रकार के** (सव्वं कम्मं) **समस्त कर्म** (पोग्गलमयं) **पुद्गलमय हैं –ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।** "(विपच्चमाणस्स) **पककर उदय में आने वाले** (जस्स) **जिस कर्म का** (फलं) **फल** (तं) **प्रसिद्ध** (दुक्खं) **दुःख है"** (ति वुच्चदि) **–ऐसा कहा है।**

**अर्थ**:—"आठों प्रकार के समस्त कर्म पुद्गल मय हैं", –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। "पककर उदय में आने वाले जिस कर्म का फल प्रसिद्ध दुःख है", –ऐसा कहा है।

✱✱

---

1. प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियों में 'किह' पाठ उपलब्ध होता है। प्राकृत व्याकरण के अनुसार 'अर्धमागधी' और 'प्राचीन महाराष्ट्री' में भी 'किह' बनता है। —पिशल, पैरा 103।

**उत्थानिका**:—व्यवहारनय से रागादिभाव जीव है–

**ववहारस्स दरीसणमुवदेसो वण्णिदो जिणवरेहिं।**
**जीवा एदे सव्वे, अज्झवसाणादओ भावा।। 2-8-46।।**

***सान्वय अर्थ***:—'(एदे) **ये** (सव्वे) **समस्त** (अज्झवसाणादओ) **अध्यवसानादिक** (भावा) **भाव** (जीवा) **जीव हैं**' –**ऐसा** (जिणवरेहिं) **जिनेन्द्रदेवों ने** (उवदेसो वण्णिदो) **जो उपदेश दिया है; वह** (ववहारस्स) **व्यवहारनय का** (दरीसणं) **दर्शन-कथन है।**

***अर्थ***:—ये समस्त अध्यवसानादिक भाव जीव हैं' —ऐसा जिनेन्द्रदेवों ने जो उपदेश दिया है, वह व्यवहारनय का कथन है।

**

उत्थानिका:—व्यवहार और निश्चय से जीव का कथन–

**राया खु णिग्गदो त्ति य, एसो बल-समुदयस्स आदेसो।**
**ववहारेण दु वुच्चदि, तत्थेक्को णिग्गदो राया।। 2-9-47।।**

**एमेव य ववहारो, अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।**
**जीवो त्ति कदो सुत्ते, तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो।। 2-10-48।।**

***सान्वय अर्थ:***—(बलसमुदयस्स) **सेना के समूह को निकलते देखकर** '(राया खु) **राजा ही** (णिग्गदो) **निकला है**' – (त्ति य आदेसो) **इस प्रकार का जो कथन है, वह** (ववहारेण दु) **व्यवहारनय से** (वुच्चदि) **किया जाता है;** (तत्थ) **वहाँ तो वास्तव में** (ऐक्को राया) **एक ही** (राया) **राजा** (णिग्गदो) **निकला है।** (एमेव य) **इसी प्रकार** (अज्झवसाणादि अण्णभावाणं) **जीव से भिन्न अध्यवसानादि भावों को** (सुत्ते) **परमागम में** (जीवोत्ति) **"ये जीव हैं"** –**यह** (ववहारो) **व्यवहार** (कदो) **किया गया है** –(व्यवहारनय से कहा है); **किन्तु** (तत्थ) **उन रागादि परिणामों में** (णिच्छिदो) **निश्चयनय से** (जीवो) **जीव तो** (ऐक्को) **एक ही है।**

**अर्थ:**—सेना के समूह को (निकलते देखकर) "राजा ही निकला है" –इसप्रकार का जो कथन है, वह व्यवहारनय से किया जाता है। वास्तव में तो वहाँ एक ही राजा निकला है। इसीप्रकार जीव से भिन्न अध्यवसानादि भाव जीव हैं, परमागम में यह व्यवहार किया गया है (व्यवहारनय से कहा गया है), किन्तु निश्चयनय से उन रागादि परिणामों में जीव तो एक ही है।

**

**उत्थानिका:**—परमार्थ जीव का स्वरूप–

**अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।**
**जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठ-संठाणं।। 2-11-49।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अरसं) **जो रसरहित है,** (अरूवं) **रूपरहित है,** (अगंधं) **गन्धरहित है,** (अव्वत्त) **अव्यक्त – इन्द्रियों के अगोचर है,** (चेदणागुणं) **चेतना गुण से युक्त है,** (असद्दं) **शब्द-रहित है,** (अलिंगग्गहणं) **किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं होता,** (अणिद्दिट्ठसंठाणं) **और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता;** (जीवं) **उसे जीव** (जाण) **जानो।**

**अर्थ:**—जो रसरहित, रूपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियों के अगोचर है, चेतनागुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं होता और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता; उसे जीव जानो।

✱✱

**उत्थानिका**:—वर्णादि भाव जीव के परिणाम नहीं हैं–

**जीवस्स णत्थि वण्णो, ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।**
**ण वि रूवं ण सरीरं, ण वि संठाणं ण संहणणं।। 2-12-50।।**

**जीवस्स णत्थि रागो, ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।**
**णो पच्चया ण कम्मं, णोकम्मं चावि से णत्थि।। 2-13-51।।**

**जीवस्स णत्थि वग्गो, ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।**
**णो अज्झप्पट्ठाणा, णेव य अणुभागठाणा वा।। 2-14-52।।**

**जीवस्स णत्थि केई, जोगट्ठाणा ण बंधठाणा वा।**
**णेव य उदयट्ठाणा, ण मग्गणट्ठाणया केई।। 2-15-53।।**

**णो ठिदिबंधट्ठाणा, जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।**
**णेव विसोहिट्ठाणा, णो संजम-लद्धिठाणा वा।। 2-16-54।।**

**णेव य जीवट्ठाणा, ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।**
**जेण दु एदे सव्वे, पोग्गलदव्वस्स परिणामा।। 2-17-55।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवस्स) **जीव के** (वण्णो) **वर्ण** (**णत्थि**) **नहीं है,** (ण वि गंधो) **गन्ध भी नहीं है,** (ण वि रसो) **रस भी नहीं है,** (ण वि य फासो) **और स्पर्श भी नहीं है,** (ण वि रूवं) **रूप भी नहीं है,** (ण सरीरं) **शरीर भी नहीं है,** (ण वि संठाणं) **आकार भी नहीं है,** (ण संहणणं) **संहनन भी नहीं है,** (जीवस्स) **जीव के** (रागो) **राग** (णत्थि) **नहीं है,** (ण वि दोसो) **द्वेष भी नहीं है,** (मोहो) **मोह** (णेव विज्जदे) **भी नहीं है,** (पच्चया णो) **आस्रव भी नहीं है,** (ण कम्मं) **न कर्म है,** (णोकम्मं चावि) **नोकर्म भी** (से) **उसके** (णत्थि) **नहीं है,** (जीवस्स) **जीव के** (वग्गो) **वर्ग** (णत्थि) **नहीं है,** (ण वग्गणा) **न वर्गणा हैं,** (केई) **कोई** (फड्ढया णेव) **स्पर्धक भी नहीं है,** (णो अज्झप्पट्ठाणा) **न अध्यात्मस्थान हैं,** (य) **और** (अणुभागठाणा वा) **अनुभागस्थान भी** (णेव) **नहीं है,** (जीवस्स) **जीव के** (केई जोगट्ठाणा) **कोई योगस्थान** (णत्थि) **नहीं है,** (बंधठाणा वा ण) **बन्धस्थान भी नहीं हैं,** ***(केई मग्गणट्ठाणया ण)*** **कोई मार्गणास्थान**

**भी नहीं है** (जीवस्स) **जीव के** (ठिदिबंधट्ठाणा णो) **स्थितिबंधस्थान भी नहीं हैं,** (ण संकिलेसठाणा वा) **न संक्लेशस्थान है,** (णेव विसोहिट्ठाणा) **विशुद्धिस्थान भी नहीं है,** (संजमलद्धिठाणा वा णो) **संयमलब्धिस्थान भी नहीं हैं,** (य) **और** (णेव जीवट्ठाणा) **जीवस्थान भी नहीं हैं,** (य) **और** (जीवस्स) **जीव के** (गुणट्ठाणा) **गुणस्थान** (ण अत्थि) **नहीं हैं;** (जेण दु) **क्योंकि** (एदे सव्वे) **ये सब** (पोग्गलदव्वस्स) **पुद्गलद्रव्य के** (परिणाम) **परिणमन हैं।**

**अर्थ:**—जीव के वर्ण नहीं है, गन्ध भी नहीं है, रस भी नहीं है, स्पर्श भी नहीं है, रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं हैं, संस्थान (आकार) भी नहीं है, संहनन भी नहीं है। जीव के राग नहीं है, द्वेष भी नहीं है, मोह भी नहीं है, आस्रव भी नही है, कर्म भी नहीं है, उनके नोकर्म भी नहीं हैं। जीव के 'वर्ग' नहीं है, वर्गणा नहीं हैं, कोई स्पर्धक भी नहीं है, अध्यात्मस्थान भी नहीं है और अनुभागस्थान भी नहीं हैं। जीव के कोई योगस्थान नहीं है, बंधस्थान भी नहीं है और उदयस्थान भी नहीं है, कोई मार्गणास्थान भी नहीं है। जीव के स्थितिबंधस्थान भी नहीं है, संक्लेशस्थान भी नहीं है, विशुद्धिस्थान भी नहीं है, संयमलब्धिस्थान भी नहीं है और जीवस्थान भी नहीं हैं और जीव के गुणस्थान नहीं हैं; क्योंकि ये सब पुद्गल के परिणमन हैं।

**

**उत्थानिका**:—जीव का नयसापेक्ष स्वरूप–

**ववहारेण दु एदे, जीवस्स हवंति वण्णमादीया।**
**गुणठाणंता भावा, ण दु केई णिच्छय-णयस्स।। 2-18-56।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदे) **ये** (वण्णमादीया) **वर्ण आदि से लेकर** (गुणठाणंता) **गुणस्थान-पर्यन्त** (भावा) **भाव** (ववहारेण दु) **व्यवहारनय से** (जीवस्स) **जीव के** (हवंति) **होते हैं**; (दु) **परन्तु** (णिच्छय-णयस्स) **निश्चयनय के मत में** (केई ण) **उनमें से कोई नहीं है।**

**अर्थ**:—ये वर्ण से लेकर गुणस्थानपर्यन्त भाव व्यवहारनय से जीव के होते हैं; परन्तु निश्चयनय के मत में उनमें से कोई भी जीव के नहीं हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीव का पुद्गल के साथ सम्बन्ध–

**एदेहि य संबंधो, जहेव खीरोदयं[1] मुणेदव्वो।**
**ण य होंति तस्स ताणि, दु उवओग-गुणाधिगो जम्हा।। 1-19-57।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदेहि य) **इन वर्णादिक भावों के साथ** (संबंधो) **जीव का सम्बन्ध** (खीरोदयं जहेव) **दूध और जल के समान-संयोग सम्बन्ध** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये,** (य) **और** (ताणि) **वे – वर्णादिक भाव** (तस्स दु) **उस जीव के** (ण होंति) **नहीं हैं**; (जम्हा) **क्योंकि** (उवओगगुणाधिगो) **जीव उपयोग गुण से परिपूर्ण है।**

**अर्थ**:—इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का संबंध दूध और जल के समान (संयोग-सम्बन्ध) मननपूर्वक जानना चाहिये; और वे वर्णादिक भाव जीव के नहीं हैं; क्योंकि जीव उपयोगगुण से परिपूर्ण है।

✱✱

---

1. कभी-कभी शौरसेनी और मागधी में 'क' ही बना रहता है। अर्धमागधी, महाराष्ट्री और प्राचीन शौरसेनी में इसके स्थान में 'ग' और 'य' रहते हैं। अन्य प्राकृत बोलियों में 'क' का 'अ' हो जाता है। 'पंचास्तिकाय' गाथा 110 में 'उदग' आया है।

**उत्थानिका**:—जीव में वर्णादि का कथन व्यवहार नय से है–

**पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।**
**मुस्सदि एसो पंथो, ण य पंथो मुस्सदे कोई।। 2-20-58।।**

**तह जीवे कम्माणं, णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।**
**जीवस्स एस वण्णो, जिणेहि ववहारदो उत्तो।। 2-21-59।।**

**गंध-रस-फास-रूवा, देहो संठाणमाइया जे य।**
**सव्वे ववहारस्स य, णिच्छयदण्हू ववदिसंति।। 2-22-60।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पंथे) **मार्ग में** (मुस्संतं) **किसी को लुटता हुआ** (पस्सिदूण) **देखकर** (ववहारी लोगा) **व्यवहारी जन** (भणंति) **कहते हैं कि** (एसो पंथो) **"यह मार्ग** (मुस्सदि) **लुटता है;" किन्तु** (कोई पंथो) **कोई मार्ग** (ण य) **नहीं** (मुस्सदे) **लुटता है।** (तह) **उसी प्रकार** (जीवे) **जीव में** (कम्माणं) **कर्मों का** (णोकम्माणं च) **और नोकर्मों का** (वण्णं) **वर्ण** (पस्सिदुं) **देखकर** (जीवस्स) **"जीव का** (एस वण्णो) **यह वर्ण है" – ऐसा** (जिणेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (ववहारदो) **व्यवहार से** (उत्तो) **कहा है। इसी प्रकार** (गंध-रस-फास-रूवा) **गन्ध, रस, स्पर्श, रूप** (देहे) **शरीर** (जे य) **और जो** (संठाणमाइय) **संस्थान आदि जीव के हैं;** (सव्वे य) **वे सब** (ववहारस्स) **व्यवहार से** (णिच्छयदण्हू) **निश्चयदर्शी** (ववदिसंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—मार्ग में किसी को लुटता हुआ देखकर व्यवहारी जन कहते हैं कि "यह मार्ग लुटता है", किन्तु कोई मार्ग नहीं लुटता (वस्तुतः पथिक लुटते हैं)। इसी प्रकार जीव में कर्मों और नोकर्मों का वर्ण देखकर "जीव का यह वर्ण है", –ऐसा जिनेन्द्रदेव ने व्यवहार से कहा है। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर और जो संस्थान आदि जीव के हैं; वे सब व्यवहार से हैं—ऐसा निश्चयदर्शी कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीवों के वर्णादि का सम्बन्ध–

**तत्थ भवे जीवाणं, संसारत्थाण होंति वण्णादी।**
**संसार-पमुक्काणं, णत्थि दु वण्णादओ केई।। 2-23-61।।**

***सान्वय अर्थ***:—(तत्थ भवे) **संसार अवस्था में** (संसारत्थाण जीवाणं) **संसारी जीवों के** (वण्णदी) **वर्णादि भाव** (होंति) **होते हैं;** (किन्तु) (संसार-पमुक्काणं) **संसार से मुक्त जीवों के** (दु) **तो** (केई) **कोई** (वण्णादओ) **वर्णादि** (णत्थि) **नहीं हैं।**

**अर्थ**:—संसार अवस्था में संसारी जीवों के वर्णादि भाव होते हैं। संसार से मुक्त जीवों के तो कोई वर्णादि नहीं हैं।

**

**उत्थानिका**:—जीव और वर्णादि का तादात्म्य मानने में दोष–

**जीवो चेव हि एदे, सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।**
**जीवस्साजीवस्स य, णत्थि विसेसो दु दे कोई।। 2-24-62।।**

***सान्वय अर्थ***:—**जीव का वर्णादि से तादात्म्य-सम्बन्ध माननेवालों को समझाते हुए कहते हैं** – (जदि हि) **यदि तू** (त्ति मण्णसे) **ऐसा मानता है कि** "(एदे) **ये** (सव्वे) **समस्त** (भाव) **भाव** (हि) **वास्तव में** (जीवो चेव) **जीव ही है**", (दु) **तो** (दे) **तेरे मत में** (जीवस्साजीवस्स य) **जीव और अजीव के मध्य** (कोई) **कोई** (विसेसो) **भेद** (णत्थि) **नहीं रहता।**

**अर्थ**:—जीव का वर्णादि से तादात्म्य-सम्बन्ध माननेवालों को समझाते हुए कहते हैं कि—"यदि तू ऐसा मानता है कि 'ये समस्त भाव वास्तव में जीव ही हैं', तो तेरे मत में जीव और अजीव के मध्य कोई भेद नहीं रहता।"

**

**उत्थानिका**:—पूर्वोक्त कथन का और स्पष्टीकरण–

**अह संसारत्थाणं, जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।**
**तम्हा संसारत्था, जीवा रूवित्तमावण्णा।। 2-25-63।।**

**एवं पोंग्गलदव्वं, जीवो तह-लक्खणेण मूढमदी।**
**णिव्वाणमुवगदो वि य, जीवत्तं पोंग्गलो पत्तो।। 2-26-64।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अह) **अथवा यदि** (तुज्झ) **तेरे मत में** (संसारत्थाणं जीवाणं) **संसार में स्थित जीवों के** (वण्णादी) **वर्णादिक तादात्म्यरूप से** (होंति) **होते हैं,** (तम्हा) **तो इस कारण से** (संसारत्था) **संसार में स्थित** (जीवा) **जीव** (रूवित्तमावण्णा) **रूपीपने को प्राप्त हो गये।** (एवं) **इस प्रकार** (मूढमदी) **हे मूढ़मते !** (तहलक्खणेण) **रूपित्व-लक्षण पुद्गल द्रव्य का होने से** (पोंग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य ही** (जीवो) **जीव कहलाया,** (य) **और** (णिव्वाणमुवगदो वि) **निर्वाण को प्राप्त होने पर भी** (पोंग्गलो) **पुद्गल ही** (जीवत्तं) **जीवत्व को** (पत्तो) **प्राप्त हो गया।**

**अर्थ**:—अथवा यदि तेरे मत में संसार में स्थित जीवों के वर्णादिक (तादात्म्यरूप से) होते हैं, तो इस कारण संसार में स्थित जीव रूपीपने को प्राप्त हो गये। इस प्रकार हे मूढ़मते ! रूपित्व-लक्षण पुद्गलद्रव्य का होने से पुद्गलद्रव्य ही जीव कहलाया और (संसार-दशा में ही नहीं) निर्वाण-प्राप्त होने पर भी (निर्वाण-अवस्था में भी) पुद्गल ही जीवत्व को प्राप्त हो गया।

**

**उत्थानिका**:—जीवस्थान जीव नहीं हैं–

**ऍक्कं च दोंण्णि तिण्णि य, चत्तारि य पंच-इंदिया जीवा।**
**बादर-पज्जत्तिदरा, पयडीओ णामकम्मस्स।। 2-27-65।।**

**एदाहि य णिव्वत्ता, जीवट्ठाणा दु करणभूदाहिं।**
**पयडीहिं पोंग्गलमइहि, ताहि किह भण्णदे जीवो।। 2-28-66।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एक्कं च) **एकेन्द्रिय** (दोण्णि) **दो इन्द्रिय** (तिण्णि य) **तीन इन्द्रिय** (चत्तारि य) **चार इन्द्रिय** (पांच इंदिया) **पंचेन्द्रिय** (वादरपज्जत्तिदरा) **बादर, पर्याप्त और इनसे इतर सूक्ष्म और अपर्याप्त** (जीवा) **जीव – ये** (णामकम्मस्स) **नामकर्म की** (पयडीओ) **प्रकृति से जो** (पोंग्गलमइहि) **पौद्गलिक हैं,** (ताहि) **उनसे** (दु) **तो** (जीवट्ठाणा) **जीवस्थान** (णिव्वत्ता) **रचे गये हैं; तब वे** (जीवो) **जीव** (किह) **किस प्रकार** (भण्णदे) **कहे जा सकते हैं।**

**अर्थ**:—एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, बादर, पर्याप्त और इनसे इतर सूक्ष्म और अपर्याप्त जीव —ये नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं। इन कारणभूत प्रकृतियों से, जो पौद्गलिक हैं; उनसे तो जीवस्थान रचे गये हैं। तब वे जीव कैसे कहे जा सकते हैं?

✱✱

**उत्थानिका**:—देह की 'जीव' संज्ञा व्यवहार से है–

**पज्जत्तापज्जत्ता, जे सुहुमा बादरा य जे जीवा[1] ।**
**देहस्स जीवसण्णा, सुत्ते ववहारदो उत्ता ।। 2-29-67 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जे) **जो** (पज्जत्तापज्जत्ता) **पर्याप्त तथा अपर्याप्त** (य) **और** (जे) **जो** (सुहुमा बादरा) **सूक्ष्म तथा बादर** (जीवा) **जीव कहे गये हैं,** वे (देहस्स) **देह की उपेक्षा** (जीवसण्णा) **जीव संज्ञाएँ हैं; वे सब** (सुत्ते) **परमागम में** (ववहारदो) **व्यवहार से** (उत्ता) **कही गई हैं ।**

**अर्थ**:—जो पर्याप्त तथा अपर्याप्त और जो सूक्ष्म तथा बादर जीव कहे गये हैं, वे देह की अपेक्षा जीव संज्ञाएँ हैं । वे सब परमागम में व्यवहारनय से कही गई हैं ।

✱✱

**उत्थानिका**:—गुणस्थान जीव नहीं है–

**मोहण-कम्मस्सुदया, दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा ।**
**ते किह हवंति जीवा, जे णिच्चमचेदणा उत्ता ।। 2-30-68 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जे इमे) **जो ये** (गुणट्ठाणा) **गुणस्थान हैं,** वे (मोहणकम्मस्सुदया दु) **मोहनीय कर्म के उदय से** (वण्णिदा) **बतलाये गये हैं**; (जे) **जो कि** (णिच्चमचेदणा) **नित्य अचेतन** (उत्ता) **कहे गये हैं,** (ते) वे (जीवा) **जीव** (किह) **कैसे** (हवंति) **हो सकते हैं ।**

**अर्थ**:—जो ये गुणस्थान हैं, वे मोहनीय कर्म के उदय से बतलाये गये हैं । जो कि नित्य अचेतन कहे गये हैं, वे जीवरूप कैसे हो सकते हैं ।

✱✱

**।। इदि दुदियो जीवाजीवाधियारो समत्तो ।।**

---

1. 'जे चेव' इत्यपि पाठः । 'जे जीवा' – ताड़पत्रप्रति पाठ ।

# तिदियो कत्ता-कम्माधियारो

उत्थानिका:—जीव के कर्म-बन्ध कैसे होता है–

**जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।**
**अण्णाणी ताव दु सो, कोहादिसु वट्टदे जीवो।। 3-1-69।।**

**कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि।**
**जीवस्सेवं बंधो, भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं।। 3-2-70।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जीवो) **जीव** (जाव) **जब तक** (आदासवाण) **आत्मा और आस्रव** (दोण्हं पि तु) **दोनों के ही** (विसेसंतरं) **भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद को** (ण वेदि) **नहीं जानता है,** (ताव दु) **तब तक** (सो) **वह** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (कोहादिसु) **क्रोधादिक आस्रवों में** (वट्टदे) **प्रवृत्त रहता है, जिससे उसके** (कम्मस्स) **कर्मों का** (संचओ) **संचय** (होदि) **होता है।** (खलु) **वास्तव में** (एवं) **इस प्रकार** (जीवस्स) **जीव के** (बंधो) **कर्मों का बन्ध** (सव्वदरिसीहिं) **सर्वज्ञदेवों ने** (भणिदो) **बताया है।**

**अर्थ:**—जीव जब तक आत्मा और आस्रव दोनों के ही (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद को नहीं जानता है, तब तक वह अज्ञानी क्रोधादिक आस्रवों में प्रवृत्त रहता है। क्रोधादिक आस्रवों में वर्तते हुये उसके कर्मों का संचय होता है। वास्तव में जीव के इस प्रकार कर्मों का बन्ध सर्वज्ञदेवों ने बताया है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञान से बन्ध का निरोध–

**जइया इमेण जीवेण, अप्पणो आसवाण य तहेव।**
**णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से।। 3-3-71।।**

सान्वय अर्थ:—(जइया) जब (इमेण जीवेण) यह जीव (अप्पाणं) आत्मा का (तहेव य) **तथा** (आसवाण) **आस्रवों का** (विसेसंतरं) **भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद** (णादं होदि) **जान लेता है;** (तइया तु) **तब** (से) **उसके** (बंधो) **कर्मबन्ध** (ण) **नहीं होता।**

**अर्थ**:—जब यह जीव आत्मा का और आस्रवों का (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद जान लेता है, तब उसके कर्मबन्ध नहीं होता।

✱✱

**उत्थानिका**:—भेदज्ञान से आस्रव-निवृत्ति–

**णादूण आसवाणं, असुचित्तं च विवरीदभावं च।**
**दुक्खस्स कारणं त्ति य, तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।। 3-4-72।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आसवाणं) **आस्रवों का** (असुचित्तं च) **अशुचिपना** (विवरीदभावं च) **विपरीतता** (य) **और** (दुक्खस्स कारणं) **वे दुःख के कारण हैं** —(त्ति) **यह** (णादूण) **जानकर** (जीवो) **जीव** (तदो णियत्तिं) **उनसे निवृत्ति** (कुणदि) **करता है।**

**अर्थ**:—आस्रवों का अशुचिपना, इनका विपरीत भावत्व और दुःख-कारणत्व जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्म स्वभाव में स्थिति से आस्रवों का क्षय–

**अहमेक्को खलु सुद्धो, य णिम्ममो[1] णाणदंसणसमग्गो।**
**तम्हि ठिदो तच्चित्तो, सव्वे एदे खयं णेमि।। 3-5-73।।**

***सान्वय अर्थ***:—**ज्ञानी विचार करता है कि '**(अहं) **मैं** (खलु) **निश्चय ही** (ऐक्को) **एक हूँ,** (सुद्धो) **शुद्ध हूँ,** (य) **और** (णिम्ममो) **ममत्वरहित हूँ,** (णाणदंसणसमग्गो) **ज्ञान और दर्शन से परिपूर्ण हूँ;** (तम्हि ठिदो) **उक्त लक्षणवाले शुद्धात्मस्वरूप में स्थित** (तच्चित्तो) **अपने सहजानन्द स्वरूप में तन्मय हुआ मैं** (एदे सव्वे) **इन सब क्रोधादिक आस्रवों को** (खयं) **नष्ट** (णेमि) **कर देता हूँ।'**

**अर्थ**:—(ज्ञानी विचार करता है कि) मैं निश्चय ही एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वरहित हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। (उक्त लक्षण वाले) शुद्धात्मस्वरूप में स्थित और सहजानन्द स्वरूप में तन्मय हुआ मैं इन सब (क्रोधादिक आस्रवों) को नष्ट करता हूँ।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी आस्रवों से निवृत्त होता है–

**जीवणिबद्धा एदे, अधुव अणिच्चा तहा असरणा य।**
**दुक्खा दुक्खफला त्ति य, णादूण णिवत्तदे तेहिं।। 3-6-74।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदे) **ये आस्रव** (जीवणिबद्धा) **जीव के साथ निबद्ध हैं,** (अधुव) **अध्रुव हैं,** (अणिच्चा) **अनित्य हैं,** (तहा य) **तथा** (असरणा) **अशरण हैं – रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं** (य) **और ये** (दुक्खा) **दुःखरूप हैं** (दुकखफला) **दुःखरूप फल देनेवाले हैं –** (त्ति णादूण) **यह जानकर ज्ञानी** (तेहिं) **उन आस्रवों से** (णिवत्तदे) **निर्वृत्त होता है।**

**अर्थ**:—ये क्रोधादि आस्रव जीव के साथ निबद्ध हैं, अध्रुव हैं, अनित्य हैं तथा अशरण हैं (रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं) और ये दुःखरूप हैं और दुःखरूप फल देने वाले हैं —यह जानकर (ज्ञानी) उन आस्रवों से निर्वृत्त होता है। ✱✱

---

1. 'य णिम्ममो' की जगह 'णिम्ममओ' पाठ भी प्रचलित है।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी की पहिचान–

**कम्मस्स य परिणामं, णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।**
**ण करेदि एदमादा, जो जाणदि सो हवदि णाणी।। 3-7-75।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (आदा) **आत्मा** (एदं) **इस** (कम्मस्स य) **कर्म के** (परिणामं) **परिणाम को,** (तहेव य) **इसी प्रकार** (णोकम्मस्स) **नोकर्म के** (परिणामं) **परिणाम को** (ण) **नहीं** (करेदि) **करता है; अपितु जो** (जाणदि) **जानता है,** (सो) **वह** (णाणी) **ज्ञानी** (हवदि) **है।**

**अर्थ**:—जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को, इसीप्रकार नोकर्म के परिणाम को नहीं करता है; अपितु जो जानता है, वह ज्ञानी है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी में परिणमन नहीं करता–

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि[1], उप्पज्जदि ण परदव्व-पज्जाए।**
**णाणी जाणंतो वि हु, पोंग्गलकम्मं अणेयविहं।। 3-8-76।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणी) **ज्ञानी** (अणेयविहं) **अनेक प्रकार के** (पोंग्गलकम्मं) **पौद्गलिक कर्मों को** (जाणंतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायों में** (ण वि परिणमदि) **न उन स्वरूप परिणमन करता है,** (ण णिण्हदि) **व उन्हें ग्रहण करता है,** (ण उप्पज्जदि) **न उन रूप उत्पन्न होता है।**

**अर्थ**:—ज्ञानी अनेक प्रकार के पौद्गलिक कर्मों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायों में न उन स्वरूप परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न होता है।

**

1. प्राचीन शौरसेनी में 'गिण्हदि' तथा शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी में 'गेण्हदि' रूप बनता है। —पिशल, पृ० 747।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी अपने परिणामों को जानता है–

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि, उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।**
**णाणी जाणंतो वि हु, सगपरिणामं अणेयविहं।। 3-9-77।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणी) **ज्ञानी** (अणेयविहं) **अनेक प्रकार के** (सगसपरिणामं) **अपने परिणामों को** (जाणंतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायों में** (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता है,** (ण गिण्हदि) **न उन्हें ग्रहण करता है,** (ण उप्पज्जदि) **न उन रूप उत्पन्न ही होता है।**

**अर्थ**:—ज्ञानी अनेक प्रकार के अपने परिणामों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायों में न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न ही होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी कर्म-फल को जानता है–

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि, उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।**
**णाणी जाणंतो वि हु, पोग्गलकम्मफलं अणंतं[1]।। 3-10-78।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणी) **ज्ञानी** (अणंतं) **अनन्त** (पोग्गलकम्मफलं) **पौद्गलिक कर्मों के फल को** (जाणंतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायों में** (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता है,** (ण गिण्हदि) **न ग्रहण करता है,** (ण उप्पज्जदि) **न उन रूप उत्पन्न होता है।**

**अर्थ**:—ज्ञानी पौद्गलिककर्मों के अनन्त फल का जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्यों की पर्यायों में न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न होता है।

✱✱

1. 'कम्मफलमणंतं' – इत्यपि पाठः।

**उत्थानिका**:—द्रव्य पररूप परिणमन नहीं करता–

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि, उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।**
**पोंग्गलदव्वं पि तहा, परिणमदि सगेहि भावेहिं।। 3-11-79।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पोंग्गलदव्वं पि) **पुद्गल द्रव्य भी** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायों में** (तहा) **उस रूप** (ण वि परिणमदि) **न तो परिणमन करता है** (ण गिण्हदि) **न उन्हें ग्रहण करता है,** (ण उप्पज्जदि) **न उन रूप उत्पन्न होता है; क्योंकि वह तो** (सगेहि भावेहिं) **अपने ही भावों से** (परिणमदि) **परिणमन करता है।**

**अर्थ**:—पुद्गलद्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायों में उस रूप न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न होता है; क्योंकि वह तो अपने ही भावों से परिणमन करता है।

**

**उत्थानिका**:—जीव और पुद्गल के परिणामों में निमित्त-नैमित्तिम भाव है–

**जीव-परिणामहेदुं, कम्मत्तं पोंग्गला परिणमंति।**
**पोंग्गलकम्म-णिमित्तं, तहेव जीवो वि परिणमदि।। 3-12-80।।**

**ण वि कुव्वदि कम्मगुणे, जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।**
**अण्णोंण्ण-णिमित्तेण दु, परिणामं जाण दोण्हं पि।। 3-13-81।।**

**एदेण कारणेण दु, कत्ता आदा सगेण भावेण।**
**पोंग्गलकम्म-कदाणं, ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। 3-14-82।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पोंग्गला) **पुद्गल** (जीव-परिणामहेदुं) **जीव के परिणाम के निमित्त से** (कम्मत्तं) **कर्मरूप से** (परिणमंति) **परिणमित होते हैं**; (तहेव) **इसी प्रकार** (जीवो वि) **जीव भी** (पोंग्गलकम्मणिमित्तं) **पुद्गलकर्म के निमित्त से - रागादि भाव रूप से** (परिणमदि) **परिणमन करता है।** (जीव) **जीव** (कम्मगुणे) **कर्म के गुणों को** (ण वि कुव्वदि) **नहीं करता है,** (तहेव) **इसी प्रकार** (कम्मं) **कर्म** (जीवगुणे) **जीव के गुणों को नहीं करता है**; (दु) **परन्तु** (अण्णोण्णणिमित्तेण) **एक-दूसरे के निमित्त से** (दोण्हं पि) **इन दोनों के** (परिणामं) **परिणाम** (जाण) **जानो।** (एदेण कारणेण दु) **इस कारण से** (सिद्ध है कि) (आदा) **आत्मा** (सगेण भावेण) **अपने ही भावों का** (कत्ता) **कर्त्ता है**; (दु) **परन्तु** (पोंग्गलकम्मकदाणं) **पुद्गलकर्म से किये गये** (सव्वभावाणं) **समस्त भावों का** (कत्ता ण) **कर्त्ता नहीं है।**

**अर्थ**:—पुद्गल जीव के (रागादि) परिणाम के निमित्त से कर्म रूप से परिणमित होते हैं। इसी प्रकार जीव भी (मोहनीय आदि) पुद्गलकर्म निमित्त से (रागादि भाव रूप से) परिणमन करता है। जीव कर्म के गुणों को नहीं करता है। इसीप्रकार कर्म जीव के गुणों को नहीं करता है; परन्तु एक-दूसरे के निमित्त से इन दोनों के परिणाम जानो। इस कारण से आत्मा अपने ही भावों से कर्त्ता है, परन्तु पुद्गलकर्म के द्वारा किये गये समस्त भावों का कर्त्ता नहीं है।

**

**उत्थानिका**:—निश्चयनय से आत्मा अपना ही कर्त्ता और भोक्ता है–

**णिच्छयणयस्स एवं, आदा अप्पाणमेव हि करेदि।**
**वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं।। 3-15-83।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णिच्छयणयस्स) **निश्चयनय का** (एवं) **इस प्रकार मत है कि** '(आदा) **आत्मा** (अप्पाणमेव हि) **अपने को ही** (करेदि) **करता है** (दु पुणो) **और फिर** (अत्ता) (तं चेव अत्ताणं) **अपने को ही** (वेदयदि) **भोगता है**' –(जाण) **ऐसा तू जान।**

**अर्थ**:—(निश्चयनय का इसप्रकार मत है कि) आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपने को ही भोगता है, —ऐसा तू जान।

**

**उत्थानिका**:—व्यवहार से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है–

**ववहारस्स दु आदा, पोग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।**
**तं चेव य वेदयदे[1], पोग्गलकम्मं अणेयविहं।। 3-16-84।।**

***सान्वय अर्थ***:—(ववहारस्स दु) **व्यवहारनय का मत है कि** (आदा) **आत्मा** (णेयविहं) **अनेक प्रकार के** (पोग्गलकम्मं) **पुद्गलकर्मों को** (करेदि) **करता है** (चेव य) **और** (तं) **उसी** (अणेयविहं) **अनेक प्रकार के** (पोग्गलकम्मं) पुद्गलकर्म को (वेदयदे)) **भोगता है।**

**अर्थ**:—व्यवहारनय का मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है और उन्हीं अनेक प्रकार के पुद्गलकर्मों को भोगता है।

**

1. 'तं चेव पुणो वेदइ' – पाठ भी कहीं-कहीं प्रचलित है।

**उत्थानिका**:—व्यवहार की मान्यता में दोष–

**जदि पोग्गलकम्ममिणं, कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।**
**दोकिरियावदिरित्तो, पसज्जदे सो[1] जिणावमदं।। 3-17-85।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जदि) **यदि** (आदा) **आत्मा** (इणं) **इस** (पोग्गलकम्मं) **पुद्गल कर्म को** (कुव्वदि) **करता है** (च) **और** (तं एव) **उसी को** (वेदयदि) **भोगता है; तो** (दोकिरियावदिरित्तो) **दो क्रियाओं से अभिन्न होने का —जीव अपनी तथा पुद्गल की क्रिया का कर्त्ता और भोक्ता होने से दोनों से अभिन्नता का** (पसज्जदे) **प्रसंग आता है; तथा** (सो जिणावमदं) **ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत है।**

**अर्थ:**—यदि आत्मा इस पुद्कल कर्म को करता है और उसी को भोगता है; तो दो क्रियाओं से अभिन्न होने का प्रसंग आता है; तथा ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत हैं।

***विशेषार्थ:***—*क्रिया वस्तुत: परिणाम है और परिणाम क्रिया के कर्त्ता परिणामी से अभिन्न होता है। जीव जिसप्रकार अपने परिणाम को करता है और उसी को भोगता है; उसीप्रकार यदि वह पुद्गलकर्म को करे और उसी को भोगे, तो जीव अपनी और पुद्गल की —दोनों की क्रियाओं से अभिन्न हो जाएगा। 'दो द्रव्यों की क्रिया एक द्रव्य करता है', —ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के सिद्धान्त के विरुद्ध है।*

**

---

1. "पसजदि सम्मं" —तात्पर्यवृत्तौ।

**उत्थानिका**:—दो किरियावादी मिथ्यादृष्टि हैं–

**जम्हा दु अत्तभावं, पोंग्गलभावं च दो वि कुव्वंति।**
**तेण दु मिच्छादिट्ठी, दो-किरियावादिणो होंति।। 3-18-86।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जम्हा दु) **क्योंकि आत्मा** (अत्तभावं) **आत्मा के भाव को** (च) **और** (पोंग्गलभावं) **पुद्गल के भाव-परिणाम को** (दो वि) **दोनों को** (कुव्वंति) **करता है;** (तेण दु) **ऐसा कहने के कारण** (दोकिरियावादिणो) **दो क्रियावादी – एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यों के परिणाम किये जाते हैं —ऐसा मानने वाले** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (होंति) **होते हैं।**

**अर्थ**:—क्योंकि आत्मा-आत्मा के भाव को और पुद्गल के भाव (परिणाम) को – दोनों को – करता है। —ऐसा मानने के कारण दो-किरियावादी (एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यों के परिणाम किये जाते हैं —ऐसा माननेवाले) मिथ्यादृष्टि होते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—मिथ्यात्वादि भाव दो प्रकार के हैं–

**मिच्छत्तं पुण दुविहं, जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।**
**अविरदि जोगो मोहो, कोहादीया इमे भावा।। 3-19-87।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पुण) **पुनः** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व** (दुविहं) **दो प्रकार का है –** (जीवमजीवं) **जीव मिथ्यात्व और अजीव मिथ्यात्व;** (तहेव) **इसी प्रकार** (अण्णामं) **अज्ञान,** (अविरदि) **अविरति,** (जोगो) **योग,** (मोहो) **मोह,** (कोहादीया) **क्रोध आदिक** (इमे भावा) **ये सभी भाव भी जीव-अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं।**

**अर्थ**:—पुनः मिथ्यात्व दो प्रकार का है – जीवमिथ्यात्व और अजीवमिथ्यात्व। इसी प्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोध आदि कषायें —ये सभी भाव भी (जीव-अजीव के भेद से) दो-दो प्रकार के हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—अजीव और जीव मिथ्यात्वादि भाव--

**पोग्गलकम्मं मिच्छं, जोगो अविरदि-अणाणमज्जीवं।**
**उवओगो अण्णाणं, अविरदि मिच्छं च जीवो दु।। 3-20-88।।**

***सान्वय अर्थ***:—**जो** (मिच्छं) **मिथ्यात्व,** (जोगो) **योग,** (अविरदि) **अविरति, और** (अणाणं) **अज्ञान** (अजीवं) **अजीव हैं; वे** (पोग्गलकम्मं) **पुद्गलकर्म हैं।** (च) **और जो** (अण्णाणं) **अज्ञान,** (अविरदि) **अविरति,** (मिच्छं) **और मिथ्यात्व** (जीवो दु) **जीव हैं; वे** (उवओगो) **उपयोगरूप हैं।**

**अर्थ**:—जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान 'अजीव' हैं; वे पुद्गलकर्म हैं। और जो अज्ञान, अविरति ओर मिथ्यात्व 'जीव' हैं; वे उपयोगरूप हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—मोहयुक्त जीव के अनादिकालीन परिणाम–

**उवओगस्स अणाई, परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।**
**मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरदिभावो य णादव्वो।। 3-21-89।।**

***सान्वय अर्थ***:—(मोहजुत्तस्स-) **मोह से युक्त** (उवओगस्स) **उपयोग के** (तिण्णि) **तीन** (अणाई) **अनादिकालीन** (परिणामा) **परिणाम हैं; वे** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व,** (अण्णाणं) **अज्ञान,** (य अविरदिभावो) **और अविरतिभाव हैं–ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिए।**

**अर्थ**:—मोह से युक्त उपयोग के तीन अनादिकालीन परिणाम हैं। वे (तीन परिणाम) मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव हैं – ऐसा जानना चाहिये।

✱✱

**उत्थानिका**:—'उपयोग' विकारी भाव का कर्त्ता है–

**एदेसु य उवओगो, तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।**
**जं सो करेदि भावं, उवओगो तस्स सो कत्ता।। 3-22-90।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदेसु य) **मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति इन तीनों का निमित्त मिलने पर भी** (उवओगो) **आत्मा का उपयोग** (सुद्धो) **यद्यपि निश्चयनय से शुद्ध** (णिरंजणो) **निरंजन** (भावो) **एकभाव है; फिर भी** (तिविहो) **तीन प्रकार के परिणामवाला** (सो) **वह** (उवओगो) **उपयोग** (जं) **जिस** (भावं) **विकारी भाव को** (करेदि) **करता है,** (सो) **वह** (तस्स) **उसी भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता है।**

**अर्थ**:—(मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति) इन तीनों का निमित्त मिलने पर भी आत्मा का उपयोग (यद्यपि निश्चय नय से) शुद्ध, निरंजन और एकभाव है; फिर भी तीन प्रकार के परिणामवाला वह उपयोग जिस (विकारी) भाव को करता है, वह उसी भाव का कर्त्ता होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीव के बन्ध कैसे होता है?–

**जं कुणदि भावमादा, कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।**
**कम्मत्तं परिणमदे, तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं।। 3-23-91।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आदा) **आत्मा** (जं भावं) **जिस भाव को** (कुणदि) **करता है,** (सो) **वह** (तस्स भावस्स) **उस भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।** (तम्हि) **उसके कर्त्ता होने पर** (पोग्गल दव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (सयं) **स्वयं** (कम्मत्तं) **कर्मरूप** (परिणमदे) **परिणमित होता है।**

**अर्थ**:—आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भाव का कर्त्ता होता है। उसके कर्त्ता होने पर पुद्गलद्रव्य स्वयं कर्मरूप परिणमित होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—अज्ञानं से कर्मों का कर्तृत्व है–

**परमप्पाणं कुव्वं, अप्पाणं पि य परं करंतो सो।**
**अण्णाणमओ जीवो, कम्माणं कारगो होदि।। 3-24-92।।**

***सान्वय अर्थः***—(परं) **पर को** (अप्पाणं) **अपने रूप** (कुव्वं) **करता हुआ,** (य) **और** (अप्पाणं) **अपने को** (पि) **भी** (परं) **पररूप** (करंतो) **करता हुआ** (सो) **वह** (अण्णाणमओ) **अज्ञानी** (जीवो) **जीव** (कम्माणं) **कर्मों का** (कारगो) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।**

**अर्थः**—पर को अपने रूप करता हुआ और अपने को पररूप करता हुआ वह अज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी कर्मों का कर्त्ता नहीं होता–

**परमप्पाणमकुव्वं, अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।**
**सो णाणमओ जीवो, कम्माणमकारगो होदि।। 3-25-93।।**

***सान्वय अर्थः***—**जो** (परं) **पर को** (अप्पाणं) **अपने रूप** (अकुव्वं) **नहीं करता,** (य) **और जो** (अप्पाणं पि) **अपने को भी** (परं) **पररूप** (अकुव्वंतो) **नहीं करता;** (सो) **वह** (णाणमओ) **ज्ञानमय – ज्ञानी** (जीवो) **जीव** (कम्माणं) **कर्मों का** (अकारगो) **अकर्त्ता** (होदि) **होता है।**

**अर्थः**—जो पर को अपने रूप नहीं करता और जो अपने को भी पररूप नहीं करता, वह ज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता नहीं होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—अज्ञानी अपने विकारी-भाव का कर्त्ता है–

**तिविहो एसुवओगो, अप्पवियप्पं करेदि कोहो हं।**
**कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स।। 3-26-94।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एस) **यह** (तिविहो) **तीन प्रकार का** (उवओगो) **उपयोग** (कोहोहं) **'मैं क्रोध हूँ' – ऐसा** (अप्पवियप्पं) **आत्मविकल्प** (करेदि) **करता है,** (सो) **वह** (तस्स उवओगस्स) **उस उपयोगरूप** (अत्तभावस्स) **अपने भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।**

**अर्थ**:—यह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिरूप) तीन प्रकार का उपयोग 'मैं क्रोध हूँ' ऐसा आत्मविकल्प करता है। वह आत्मा उस उपयोगरूप अपने भाव का कर्त्ता होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—इसी बात को विशेषरूप से कहते हैं–

**तिविहो एसुवओगो, अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी।**
**कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स।। 3-27-95।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एस) **यह** (तिविहो) **तीन प्रकार का** (उवओगो) **उपयोग** (धम्मादि) **'मैं धर्मादिक हूँ' – ऐसा** (अप्पवियप्पं) **आत्मविकल्प** (करेदि) **करता है,** (सो) **वह आत्मा** (तस्स) **उस** (उवओगस्स) **उपयोगरूप** (अत्तभावस्स) **अपने भाव का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।**

**अर्थ**:—वह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिरूप) तीन प्रकार का उपयोग 'मैं धर्मादिक हूँ' —ऐसा आत्मविकल्प करता है। वह आत्मा उस उपयोगरूप अपने भाव का कर्त्ता होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—कर्त्तृत्व का मूल अज्ञान है–

**एवं पराणि दव्वाणि, अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीए[1] ।**
**अप्पाणं अवि य परं, करेदि अण्णाणभावेण ।। 3-28-96 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं) **इसप्रकार** (मंदबुद्धीए) **मन्दबुद्धि** (अण्णाणभावेण) **अज्ञानभाव से** (पराणि दव्वाणि) **परद्रव्यों को** (अप्पयं) **अपने रूप** (कुणदि) **करता है,** (य) **और** (अप्पाणं अवि) **अपने को भी** (परं) **पररूप** (करेदि) **करता है।**

**अर्थ**:—इसप्रकार मन्दबुद्धि (अज्ञानी) अज्ञानभाव से परद्रव्यों को अपने रूप करता है, और अपने को भी पररूप करता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञान से कर्त्तृत्व का त्याग होता है–

**एदेण दु सो कत्ता, आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो ।**
**एवं खलु जो जाणदि, सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ।। 3-29-97 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदेण दु) **इस कारण से** (णिच्छयविदूहिं) **निश्चय के ज्ञाताओं ने** (सो आदा) **वह आत्मा** (कत्ता) **कर्त्ता** (परिकहिदो) **कहा है** —(एवं) **इसप्रकार** (खलु) **निश्चय ही** (जो) **जो** (जाणदि) **जानता है** (सो) **वह** (सव्वकत्तित्तं) **सब कर्त्तृत्व को** (मुंचदि) **छोड़ देता है।**

**अर्थ**:—इस पूर्वोक्त कारण से निश्चय के ज्ञाताओं ने वह कर्त्ता कहा है। इसप्रकार वस्तुत: जो जानता है, वह सब कर्त्तृत्व को छोड़ देता है।

✱✱

---

1. 'मंदबुद्धीओ' इत्यपि पाठ:।

**उत्थानिका**:—व्यवहारी जनों का व्यामोह–

**ववहारेण दु आदा, करेदि घड-पड-रधादि-दव्वाणि।**
**करणाणि य कम्माणि य, णोकम्माणीह विविहाणि।।3-30-98।।**

***सान्वय अर्थ***:—(ववहारेण दु) **व्यवहार से – व्यवहारी जन ऐसा मानते हैं कि** (इह) **जगत् में** (आदा) **आत्मा** (घडपडरधादिदव्वाणि) **घट, पट, रथ आदि वस्तुओं को** (य) **और** (करणाणि) **इन्द्रियों को** (विविहाणि) **अनेक प्रकार के** (कम्माणि) **क्रोधादि कर्मों को** (य) **और** (णोकम्माणी) **शरीरादि नोकर्मों को** (करेदि) **करता है।**

**अर्थ**:—व्यवहार से (व्यवहारी जन ऐसा मानते हैं कि) जगत् में आत्मा घट-पट-रथ आदि वस्तुओं को और इन्द्रियों को, अनेक प्रकार के क्रोधादि कर्मों को और शरीरादि नोकर्मों को करता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—व्याप्य-व्यापक भाव से आत्मा कर्त्ता नहीं है–

**जदि सो परदव्वाणि य, करेंज्ज णियमेण तम्मओ होंज्ज।**
**जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता।। 3-31-99।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जदि य) **यदि** (सो) **वह – आत्मा** (परदव्वाणि) **परद्रव्यों को** (करेंज्ज) **करे, तो** (णियमेण) **नियम से** (तम्मओ) **तन्मय-परद्रव्यमय** (होंज्ज) **हो जाय;** (जम्हा) **चूँकि** (तम्मओ ण) **तन्मय नहीं होता,** (तेण) **इस कारण** (सो) **वह** (तेसिं) **उनका** (कत्ता) **कर्त्ता** (ण हवदि) **नहीं है।**

**अर्थ**:—यदि वह (आत्मा) परद्रव्यों को करें, तो नियम से वह तन्मय (परद्रव्यमय) हो जाए; चूंकि वह तन्मय नहीं होता, इस कारण वह (उन परद्रव्यों का) कर्त्ता नहीं है।

✱✱

**उत्थानिका**:—निमित्त-नैमित्तिक भाव से भी जीव कर्त्ता नहीं है–

**जीवो ण करेदि घडं, णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।**
**जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता।। 3-32-100।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवो) **जीव** (घडं) **घट को** (ण) **नहीं** (करेदि) **करता है,** (णेव) **न ही** (पडं) **पट को करता हे,** (णेव) **न ही** (सेसगे दव्वे) **शेष द्रव्यों को करता है;** (जोगुवओगा य) **जीव के योग और उपयोग** (उप्पादगा) **उत्पादक – घटादि के उत्पन्न करने में निमित्त हैं,** (तेसिं) **उन योग और उपयोग का** (कत्ता) **कर्त्ता।** (हवदि) **जीव होता है।**

**अर्थ**:—जीव घट को नहीं करता, न ही पट को करता है, न ही शेष द्रव्यों को करता है। जीव के योग और उपयोग घटादि के उत्पन्न करने में निमित्त हैं, उन योग और उपयोग का कर्त्ता जीव है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञान का ही कर्त्ता है–

**जे पोग्गलदव्वाणं, परिणामा होंति णाणआवरणा[1]।**
**ण करेदि ताणि आदा, जो जाणदि सो हवदि णाणी।। 3-33-101।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जे) **जो** (णाणआवरणा) **ज्ञानावरणादिक** (पोग्गलदव्वाणं) **पुद्गल-द्रव्यों के** (परिणामा) **परिणाम** (होंति) **हैं;** (ताणि) **उन्हें** (जो आदा) **जो आत्मा** (ण) **नहीं** (करेदि) **करता, परन्तु मात्र** (जाणदि) **जानता है,** (सो) **वह** (णाणी) **ज्ञानी** (हवदि) **है।**

**अर्थ**:—जो ज्ञानावरणादिक पुद्गलद्रव्यों के परिणाम हैं, उन्हें जो आत्मा नहीं करता, (परन्तु जो) मात्र जानता है, वह ज्ञानी है।

✱✱

---

1. 'णाणावरणा' ऐसा संधिरूप भी प्राकृत में बनता सकता है, किंतु यहाँ छंदानुरोध से प्रकृतिभाव किया गया है।

**उत्थानिका**:—अज्ञानी अज्ञानभावों का कर्त्ता है–

**जं भावं सुहमसुहं, करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।**
**तं तस्स होदि कम्मं, सो तस्स दु वेदगो अप्पा।। 3-34-102।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आदा) **आत्मा** (जं) **जिस** (सुहमसुहं) **शुभ या अशुभ** (भावं) **भाव को** (करेदि) **करता है,** (स) **वह** (तस्स) **उस भाव का** (खलु) **निश्चय ही** (कत्ता) **कर्त्ता होता है।** (तं) **वह भाव** (तस्स) **उसका** (कम्मं) **कर्म** (होदि) **होता है,** (दु) **और** (सो) **वह** (अप्पा दु) **आत्मा** (तस्स) **उस भावरूप कर्म का** (वेदगो) **भोक्ता होता है।**

**अर्थ**:—आत्मा जिस शुभ या अशुभ भाव को करता है, वह उस भाव का निश्चय ही कर्त्ता होता है। वह भाव उसका कर्म होता है, और वह आत्मा उस भावरूप कर्म का भोक्ता होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—कोई द्रव्य परभाव को नहीं करता –

**जो जम्हि गुणे दव्वे, सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।**
**सो अण्णमसंकंतो, किह तं परिणामए दव्वं।। 3-35-103।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो वस्तु** (जम्हि) **जिस** (गुणे) **गुण में और** (दव्वे) **द्रव्य में वर्तती है,** (सो) **वह** (अण्णम्हि दु) **अन्य** (दव्वे) **द्रव्य, गुण में** (ण संकमदि) **संक्रमण नहीं करती है।** (अण्णमसंकतो) **अन्य में संक्रमण न करती हुई** (सो) **वह वस्तु** (तं दव्वं) **उस द्रव्य को** (किह) **किस प्रकार** (परिणामए) **परिणमन करा सकती है?**

**अर्थ**:—जो वस्तु जिस द्रव्य और गुण में (वर्तती है), वह अन्य द्रव्य (और गुण) में संक्रमण नहीं करती है। अन्य में संक्रमण न करती हुई वह वस्तु उस (अन्य) द्रव्य को किसप्रकार परिणमन करा सकती है?

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा पुद्गल-कर्मों का कर्त्ता नहीं है–

**दव्वगुणस्स य आदा, ण कुणदि पोंग्गलमयम्हि कम्मम्हि।**
**तं उहयमकुव्वंतो, तम्हि कहं तस्स सो कत्ता।। 3-36-104।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आदा) **आत्मा** (पोंग्गलमयम्हि) **पुद्गलमय** (कम्मम्हि) **कर्म में** (दव्वगुणस्स य) **अपने द्रव्य और गुण को** (ण कुणदि) **नहीं करता है,** (तम्हि) **उसमें** (तं उहयं) **द्रव्य और गुण दोनों को** (अकुव्वंतो) **न करता हुआ** (सो) **वह** (तस्स) **उस पुद्गलकर्म का** (कत्ता) **कर्त्ता** (कहं) **किसप्रकार हो सकता है?**

**अर्थ**:—आत्मा पुद्गलमय कर्म में (अपने) द्रव्य और गुण का (संक्रमण) नहीं करता। उसमें द्रव्य और गुण दोनों का (संक्रमण) न करता हुआ वह (आत्मा) उस पुद्गलकर्म का कर्त्ता किसप्रकार हो सकता है?

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा उपचार से पुद्गल-कर्म का कर्त्ता कहा है–

**जीवम्हि हेदुभूदे, बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।**
**जीवेण कदं कम्मं, भण्णदि उवयारमेत्तेण।। 3-37-105।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवम्हि) **जीव के** (हेदुभूदे) **निमित्तभूत होने पर** (बंधस्स दु) **ज्ञानावरणादि बन्ध का** (परिणामं) **परिणमन** (पस्सिदूण) **देखकर** (जीवेण) **"जीव ने** (कम्मं) **कर्म** (कदं) **किया", —यह** (उवयारमेत्तेण) **उपचारमात्र से** (भण्णदि) **कहा जाता है।**

**अर्थ**:—जीव के निमित्तभूत होने पर ज्ञानावरणादि बन्ध का परिणमन देखकर 'जीव ने कर्म किया' – यह उपचार मात्र से कहा जाता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—व्यवहार से कर्मों का कर्तृत्व–

**जोधेहि कदे जुद्धे, रायेण कदं त्ति जंपदे लोगो।**
**तह ववहारेण कदं, णाणावरणादि जीवेण।।3-38-106।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जोधेहि) **योद्धाओं के द्वारा** (जुद्धे कदे) **युद्ध करने पर** "(रायेण) **राजा ने** (कदं) **युद्ध किया**" – (त्ति) **इस प्रकार** (लोगो) **लोग** (जंपदे) **कहते हैं**; (तह) **उसी प्रकार** "(णाणावरणादि) **ज्ञानावरणादि कर्म** (जीवेण) **जीव ने** (कदं) **किया**" – (ववहारेण) **यह व्यवहार से कहा जाता है।**

**अर्थ**:—योद्धाओं के द्वारा युद्ध करने पर "राजा ने युद्ध किया" – इस प्रकार लोग कहते हैं। उसीप्रकार "ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किया", – (ववहारेण) यह व्यवहार से कहा जाता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—व्यवहार से आत्मा पुद्गल का कर्त्ता है–

**उप्पादेदि करेदि य, बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।**
**आदा पोंग्गलदव्वं, ववहारणयस्स वत्तव्वं।। 3-39-107।।**

***सान्वय अर्थ***:—"(आदा) **आत्मा** (पोंग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य को** (उप्पादेदि) **उपजाता है,** (करेदि य) **करता है,** (बंधदि) **बाँधता है,** (परिणामएदि) **परिणमन करता है,** (य) **और** (गिण्हदि) **ग्रहण करता है**" —**यह** (ववहारणयस्स) **व्यवहार नय का** (वत्तव्वं) **कथन है।**

**अर्थ**:—"आत्मा पुद्गलद्रव्य को उपजाता है, करता है, बाँधता है, परिणमन कराता है और ग्रहण करता है", —यह व्यवहारनय का कथन है।

✱✱

**उत्थानिका**:—दृष्टान्तपूर्वक व्यवहार का कथन–

**जह राया ववहारा, दोस-गुणुप्पादगो त्ति आलविदो।**
**तह जीवो ववहारा, दव्व-गुणुप्पादगो भणिदो।। 3-40-108।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** "(राया) **राजा** (दोस-गुणुप्पादगो) **प्रजा में दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला है**" –(त्ति) **यह** (ववहारा) **व्यवहार से** (आलविदो) **कहा जाता है**; (तह) **उसीप्रकार** (जीवो) **जीव** (ववहारा) **व्यवहार से**, '(दव्व-गुणुप्पादगो) **पुद्गलद्रव्य के द्रव्य और गुणों का उत्पादक**' (भणिदो) **कहा गया है**।

**अर्थ**:—जैसे "राजा (प्रजा में) दोष और गुणों का उत्पन्न करनेवाला है", — यह व्यवहार से कहा जाता है; उसीप्रकार जीव व्यवहार से '(पुद्गल द्रव्य के) द्रव्य और गुणों का उत्पादक' कहा गया है।

✱✱

**उत्थानिका**:—कर्म-बन्ध के चार मूल कारण–

**सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।**
**मिच्छत्तं अविरमणं, कसाय-जोगा य बोद्धव्वा।। 3-41-109।।**

**तेसिं पुणो वि य इमो, भणिदो भेदो दु तेरस-वियप्पो।**
**मिच्छादिट्ठी आदी, जाव सजोगिस्स चरमंतं।। 3-42-110।।**

***सान्वय अर्थ***:—(खलु) **वास्तव में** (चउरो) **चार** (सामण्णपच्चया) **सामान्य-मूल प्रत्यय-आस्रव** (बंधकत्तारो) **बन्ध के कर्त्ता** (भण्णंति) **कहे जाते हैं** – **वे** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व,** (अविरमणं) **अविरति,** (कसायजोगा य) **कषाय और योग** (बोद्धव्वा) **जानने चाहिए।** (पुणो वि य) **और फिर** (तेसिं) **उनके** (तेरसवियप्पो) **तेरह प्रकार का** (भेदो दु) **भेद** (भणिदो) **कहा गया है** – **वे** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि से लेकर** (सजोगिस्स) **सयोगी केवली के** (चरमंतं जाव) **चरम-समय-पर्यन्त हैं।**

**अर्थ**:—वास्तव में चार सामान्य प्रत्यय (मूलप्रत्यय-आस्रव) बंन्ध के कर्त्ता कहे जाते हैं, (वे) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग जानने चाहिये। और फिर उनका तेरह प्रकार के भेद कहे गये हैं। (वे भेद) मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी केवली (नामक तेरहवें गुणस्थान) के चरम-समय-पर्यन्त हैं।

✸✸

**उत्थानिका**:—प्रत्यय कर्मों के कर्त्ता हैं–

**एदे अचेदणा खलु, पोंग्गल-कम्मुदय-संभवा जम्हा।**
**ते जदि करंति कम्मं, ण वि तेसिं वेदगो आदा।। 3-43-111।।**

**गुणसण्णिदा दु एदे, कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा।**
**तम्हा जीवोऽकत्ता, गुणा य कुव्वंति कम्माणि।। 3-44-112।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदे) **ये – मिथ्यात्वादि प्रत्यय** (खलु) **निश्चय से** (अचेदणा) **अचेतन हैं;** (जम्हा) **क्योंकि** (पोंगलकम्मुदयसंभवा) **ये पुद्गलकर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं।** (जदि) **यदि** (ते) **वे प्रत्यय** (कम्मं) **कर्म** (करंति) **करते हैं, तो** (तेसिं) **उन कर्मों का** (वेदगो वि) **भोक्ता भी** (आदा) **आत्मा** (ण) **नहीं है;** (जम्हा) **क्योंकि** (एदे) **ये** (गुणसण्णिदा दु) **'गुणस्थान' नामक** (पच्चया) **प्रत्यय** (कम्मं) **कर्म** (कुव्वंति) **करते हैं,** (तम्हा) **इसलिए** (जीवो) **जीव** (अकत्ता) **कर्मों का कर्त्ता नहीं है,** (य) **और** (गुणा) **'गुणस्थान' नामक प्रत्यय ही** (कम्माणि) **कर्मों को** (कुव्वंति) **करते हैं।**

**अर्थ**:—ये मिथ्यात्वादि प्रत्यय निश्चय से अचेतन हैं; क्योंकि ये पुद्गलकर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। यदि वे प्रत्यय कर्म करते हैं तो करें, उन कर्मों का भोक्ता भी आत्मा नहीं है; क्योंकि ये गुणस्थान नामक प्रत्यय कर्म करते हैं, इसलिए (निश्चय नय से) जीव कर्मों का कर्त्ता नहीं है, और 'गुणस्थान' नामक प्रत्यय ही कर्मों को करते हैं।

**

**उत्थानिका**:—जीव और प्रत्यय एक नहीं है–

**जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।**
**जीवस्साजीवस्स य, एवमणण्णत्तमावण्णं।। 3-45-113।।**

**एवमिह जो दु जीवो, सो चेव दु णियमदो तहाजीवो।**
**अयमेयत्ते दोसो, पच्चय-णोकम्म-कम्माणं।। 3-46-114।।**

**अह पुण अण्णो कोहो, अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।**
**जह कोहो तह पच्चय, कम्मं णोकम्ममवि अण्णं।। 3-47-115।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (जीवस्स) **जीव के** (अणण्णुवओगो) **ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न हैं**; (तह) **उसीप्रकार** (जदि) **यदि** (कोहो वि) **क्रोध भी** (अणण्णो) **जीव से अभिन्न हो, तो** (एवं) **इसप्रकार** (जीवस्ससाजीवस्स य) **जीव और अजीव का** (अणण्णत्तं) **अनन्यत्व** (आवण्णं) **प्राप्त हो गया।** (एवं च) **और ऐसा होने पर** (इह) **इस लोक में** (जो दु) **जो** (जीवों) **जीव है,** (सो एव दु) **वही** (णियमदो) **नियम से** (तहा) **उसीप्रकार** (अजीवो) **अजीव होगा,** (पच्चयणोकम्मकम्माणं) **प्रत्यय, नोकर्म और कर्मों के** (एयत्ते) **एकत्व में भी** (अयं दोसो) **यही दोष आता है।** (अह पुण) **अथवा – इस दोष के भय से ऐसी मानो कि** (कोहो) **क्रोध** (अण्णो) **अन्य है और** (उवओगप्पगो) **उपयोगस्वरूप** (चेदा) **आत्मा** (अण्ण) **अन्य है; – तो** (जह) **जैसे** (कोहो) **क्रोध - अन्य है,** (तह) **उसी प्रकार** (पच्चय) **प्रत्यय** (कम्मं) **कर्म और** (णोकम्ममवि) **नोकर्म भी** (अण्णं) **अन्य है।**

**अर्थ**:—जैसे जीव के ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न हैं, उसी प्रकार यदि क्रोध भी जीव से अनन्य हो, तो इसप्रकार जीव और अजीव का अनन्यत्व (एकत्व) प्राप्त हो गया; और ऐसा होने पर इस लोक में जो जीव है, वही नियम से उसीप्रकार अजीव होगा। प्रत्यय, कर्म और नोकर्म के एकत्व में भी यही दोष आता, अथवा (इस दोष के भय से ऐसा मानो कि) क्रोध अन्य है और उपयोगस्वरूप आत्मा अन्य है, तो जैसे क्रोध अन्य है, उसी प्रकार प्रत्यय, कर्म और नोकर्म भी अन्य है।

**

**उत्थानिका**:—सांख्यमत का निराकरण–

**जीवे ण सयं बद्धं, ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।**
**जदि पोग्गलदव्वमिणं, अप्परिणामी तदा होदि।। 3-48-116।।**

**कम्मइयवग्गणासु य, अपरिणमंतीसु कम्मभावेण।**
**संसारस्स अभावो, पसज्जदे संखसमओ वा।। 3-49-117।।**

**जीवो परिणामयदे, पोग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।**
**ते सयमपरिणमंते, कहं तु[1] परिणामयदि चेदा।। 3-50-118।।**

**अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोग्गलं दव्वं।**
**जीवो परिणामयदे, कम्मं कम्मत्तमिदिमिच्छा।। 3-51-119।।**

**णियमा कम्मपरिणदं, कम्मं चिय होदि पोग्गलं दव्वं।**
**तह तं णाणावरणाइ-परिणदं मुणसु तच्चेव।। 3-52-120।।**

***सान्वय अर्थ***:—'(इणं पोग्गलदव्वं) **यह पुद्गलद्रव्य** (जीवे) **जीव में** (सयं) **स्वयं** (ण बद्धं) **नहीं बँधा है और** (कम्मभावेण) **कर्मभाव से** (सयं) **स्वयं** (ण परिणमदि) **परिणमन नहीं करता है'**; (जदि) **यदि ऐसा मानो,** (तदा) **तब तो वह** (अप्परिणामी) **अपरिणामी** (होदि) **हो जाएगा।** (य) **अथवा** (कम्मइयवग्गणासु) **कार्मणवर्गणाएँ** (कम्मभावेण) **कर्मभाव से—द्रव्यकर्मरूप से** (अपरिणमंतीसु) **परिणमन नहीं करतीं', —ऐसा मानो, तो** (संसारस्स) **संसार के** (अभावो) **अभाव का** (पसज्जदे) **प्रसंग आ जाएगा,** (वा) **अथवा** (संखसमओ) **सांख्य-मत का प्रसंग आ जाएगा।**

(जीवो) **जीव** (पोग्गलदव्वाणि) **पुद्गलद्रव्यों को** (कम्मभावेण) **कर्मभाव से** (परिणामयदे) **परिणमन कराता है'; यदि ऐसा मानो, तो** (चेदा) **जीव उन्हें** (कहं तु) **किसप्रकार (परिणामयदि) परिणमन करा सकता है? जबकि** (ते) **वे पुद्गल द्रव्य** (सयमपरिणमंते) **स्वयं परिणमन नहीं करते हैं।** (अह) **अथवा यह मानो कि** (पोग्गलं

---

1. 'णु' – इत्यपि पाठः।

दव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (सयमेव हि) **स्वयं ही** (कम्मभावेण) **कर्मभाव से** (परिणमदि) **परिणमन करता है; तो** (जीवो) **जीव** '(कम्मं) **कर्मरूप पुद्गल को** (कम्मत्तं) **कर्मरूप** (परिणामयदे) **परिणमन कराता है**' –(इदि) **यह कहना** (मिच्छा) **मिथ्या सिद्ध होता है; इसलिए** (णियमा) **जैसे नियम से** (कम्मपरिणदं) **कर्मरूपकर्त्ता के कार्यरूप से परिणत** (पोंग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (कम्मं चिय) **कर्म ही** (होदि) **है;** (तह) **इसीप्रकार** (णाणावरणाइपरिणदं) **ज्ञानावरणादिरूप परिणमित** (तं) **पुद्गलद्रव्य** (तच्चेव) **ज्ञानावरणादि ही है**', —(मुणसु) **ऐसा जानो।**

**अर्थ:**—'यह पुद्गलद्रव्य जीव में स्वयं नहीं बँधा है और कर्मभाव से स्वयं परिणमन नहीं करता है' – यदि ऐसा मानो, तब तो वह अपरिणामी हो जाएगा। अथवा 'कार्मण वर्गणाएँ द्रव्यकर्मरूप से परिणमन नहीं करतीं' – ऐसा मानो, तो संसार के अभाव का प्रसंग आ जाएगा अथवा 'सांख्यमत' का प्रसंग आ जाएगा।

'जीव पुद्गलद्रव्यों को कर्मभाव से परिणमन करता है' – यदि ऐसा मानो, तो जीव उन्हें किसप्रकार परिणमन करा सकता है? जबकि वे पुद्गलद्रव्य स्वयं परिणमन नहीं करते; अथवा यह मानो की 'पुद्गलद्रव्य स्वयं ही कर्मभाव से परिणमन करता है', तो 'जीव कर्मरूप पुद्गल को कर्मरूप परिणमन कराता है' – यह परिणत पुद्गलद्रव्य कर्म ही है, इसीप्रकार ज्ञानावरणादिरूप परिणमित पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादि ही है; ऐसा जानो।

✱✱

उत्थानिका:—सांख्यमतानुयायी शिष्य को संबोधन–

**ण सयं बद्धो कम्मे, ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।**
**जदि एस तुज्झ जीवो, अप्परिणामो तदा होदि।। 3-53-121।।**

**अपरिणमंतम्हि सयं, जीवे कोहादिएहि भावेहिं।**
**संसारस्स अभावो, पसज्जदे संखसमओ वा।। 3-54-122।।**

**पोग्गलकम्मं कोहो, जीवं परिणामएदि कोहत्तं।**
**तं सयमपरिणमंतं, किह परिणामयदि कोहत्तं।। 3-55--123।।**

**अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी।**
**कोहो परिणामयदे, जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा।। 3-56-124।।**

**कोहवजुत्तो कोहो, माणवजुत्तो य माणमेवादा।**
**माउवजुत्तो माया, लोहुवजुत्तो हवदि लोहो।। 3-57-125।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जदि) यदि (तुज्झ) तेरी ऐसी मान्यता है कि '(एस) यह (जीवो) जीव (कम्मे) कर्म में (सयं) स्वयं (बद्धो ण) बँधा नहीं है – और (कोहमादीहिं) क्रोधादि भावों से (सयं) स्वयं (ण परिणमदि) परिणमन नहीं करता है'; (तदा) तब तो वह (अप्परिणामी) अपरिणामी (होदि) सिद्ध होता है। और (कोहादिएहि) क्रोधादि (भावेहिं) भावरूप से (जीवे) जीव के (सयं) स्वयं (अपरिणमंतम्हि) परिणमन न करने पर (संसारस्स) संसार के (अभावो) अभाव का (पसज्जदे) प्रसंग आ जाएगा (वा) अथवा (संखसमओ) सांख्यमत का प्रसंग आ जाएगा।

यदि यह कहो कि (पोग्गलकम्मं) पुद्गलकर्मरूप (कोहो) क्रोध (जीवं) जीव को (कोहत्तं) क्रोधभावरूप (परिणामएदि) परिणमाता है, तो (सयमपरिणमंतं तं) स्वयं परिणमन न करने वाले जीव को (कोहत्तं) क्रोधरूप (किह) किसप्रकार (परिणामयदि) परिणमन करा सकता है।

(अह) अथवा '(अप्पा) आत्मा (सयं) स्वयं (कोहभावेण) क्रोधभाव से (परिणमदि) परिणमन करता है', (दे) यदि तेरी (एस बुद्धी) ऐसी मान्यता है, तो

'(कोहो) **क्रोध** (जीवं) **जीव को** (कोहत्तं) **क्रोधभावरूप** (परिणामयदे) **परिणमन कराता है**' – (इदि) **यह कहना** (मिच्छा) **मिथ्या ठहरेगा।**

**अत: सिद्ध हुआ कि** (कोहवजुत्तो) **क्रोध में उपयुक्त – जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा** – (आदा) **आत्मा** (कोहो) **क्रोध ही है,** (य) **और** (माणवजुत्तो) **मान में उपयुक्त आत्मा** (माणमेव) **मान ही है,** (माउवजुत्तो) **माया में उपयुक्त आत्मा** (माया) **माया है, और** (लोहुवजुत्तो) **लोभ में उपयुक्त आत्मा** (लोहो) **लोभ** (हवदि) **है।**

**अर्थ**:—(सांख्यमतानुयायी शिष्य के प्रति आचार्य कहते हैं कि) यदि तेरी ऐसी मान्यता है कि यह जीव कर्म में स्वयं नहीं बँधा है और क्रोधादि भावों में स्वयं परिणमन नहीं करता है; तब तो वह अपरिणामी सिद्ध होता है (और) क्रोधादि भावरूप से जीव के स्वयं परिणमन न करने पर संसार के अभाव का प्रसंग आ जाएगा अथवा 'सांख्यमत' का प्रसंग आ जाएगा।

(यदि यह कहो कि) पुद्गलकर्मरूप क्रोध जीव को क्रोधभावरूप परिणमता है तो स्वयं परिणमन न करने वाले जीव को क्रोधरूप किसप्रकार परिणमन करा सकता है?

अथवा आत्मा स्वयं क्रोधभाव से परिणमन करता है, यदि तेरी ऐसी मान्यता है, तो 'क्रोध जीव को क्रोधभावरूप परिणमन करता है' –यह कहना मिथ्या ठहरेगा।

(अत: सिद्ध हुआ कि) क्रोध में उपयुक्त (जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा) आत्मा क्रोध ही है; मान में उपयुक्त आत्मा मान ही है; माया में उपयुक्त आत्मा माया है और लोभ में उपयुक्त आत्मा लोभ है।

✱✱

उत्थानिका:—आत्मा अपने भावों का कर्त्ता है–

**जं कुणदि भावमादा, कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।**
**णाणिस्स दु णाणमओ, अण्णाणमओ अणाणिस्स।। 3-58-126।।**

***सान्वय अर्थ:***—(आदा) **आत्मा** (जं भाव) **जिस भाव को** (कुणदि) **करता है,** (सो) वह (तस्स कम्मस्स) **उस भावकर्म का** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है।** (णाणिस्स दु) **ज्ञानी के तो** (णाणमओ) **ज्ञानमय भाव होता है – और** (अणाणिस्स) **अज्ञानी के** (अण्णाणमओ) **अज्ञानमय भाव होता है।**

**अर्थ:**—आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावकर्म का कर्त्ता होता है। ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है।

✱✱

उत्थानिका:—ज्ञान और अज्ञानमय भाव का कार्य–

**अण्णाणमओ भावो, अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।**
**णाणमओ णाणिस्स दु, ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि।। 3-59-127।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अणाणिणो) **अज्ञानी के** (अण्णाणमओ) **अज्ञानमय** (भावो) **भाव होता है;** (तेण) **इस कारण वह** (कम्माणि) **कर्मों को** (कुणदि) **करता है।** (णाणिस्स दु) **और ज्ञानी के तो** (णाणमओ) **ज्ञानमय भाव होता है;** (तम्हा दु) **इस कारण वह** (कम्माणि) **कर्मों को** (ण) **नहीं** (कुणदि) **करता है।**

**अर्थ:**—अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है, इस कारण वह कर्मों को करता है; और ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है, इसी कारण वह कर्मों को नहीं करता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के सब भाव ज्ञानमय, और अज्ञानी के सब भाव अज्ञानमय होते हैं–

**णाणमया भावादो, णाणमओ चेव जायदे भावो।**
**जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया।। 3-60-128।।**

**अण्णामया भावा, अण्णाणो चेव जायदे भावो।**
**जम्हा तम्हा भावा, अण्णाणमया अणाणिस्स।। 3-61-129।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जम्हा) **चूंकि** (णाणमया भावादो) **ज्ञानमय भाव से** (णाणमओ) **ज्ञानमय** (चेव) **ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है,** (तम्हा) **इस कारण** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (सव्वे) **सब** (भावा) **भाव** (हु) **वास्तव में** (णाणमया) **ज्ञानमय होते हैं।** (च) **ओर** (जम्हा) **चूँकि** (अण्णाणमया भावा) **अज्ञानमय भाव से** (अण्णाणो एव) **अज्ञानमय ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है,** (तम्हा) **इस कारण** (अणाणिस्स) **अज्ञानी के** (भावा) **सब भाव** (अण्णाणमया) **होते हैं।**

**अर्थ**:—चूंकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण ज्ञानी के सब भाव वास्तव में ज्ञानमय होते हैं। और चूंकि अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण अज्ञानी के सब भाव अज्ञानमय होते हैं।

**

**उत्थानिका**:—दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त तथ्य का स्पष्टीकरण–

**कणयमया-भावादो, जायंते कुंडलादयो भावा।**
**अययमया-भावादो, जह जायंते दु कडयादी।। 3-62-130।।**

**अण्णाणमया भावा, अणाणिणो बहुविहा वि जायंते।**
**णाणिस्स दु णाणमया, सव्वे भावा तहा होंति।। 3-63-131।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जहा) **जैसे** (कणयमया-भावादो) **स्वर्णमय-भाव से** (कुंडलादयो भावा) **कुण्डल आदि भाव** (जायंते) **उत्पन्न होते हैं,** (दु) **तथा** (अयमयया-भावादो) **लौहमय-भाव से** (कडयादी) **कड़ा आदि भाव** (जायंते) **उत्पन्न होते हैं;** (तहा) **इसी प्रकार** (अणाणिणो) **अज्ञानी के अज्ञानमय भाव से** (बहुविहा वि) **अनेक प्रकार के** (अण्णाणमया भावा) **अज्ञानमय भाव** (जायंते) **उत्पन्न होते हैं,** (दु) **तथा** (णाणिस्स) **ज्ञानी के ज्ञानमय भाव से** (सव्वे) **समस्त** (णाणमया भावा) **ज्ञानमय भाव** (होंति) **होते हैं।**

**अर्थ**:—जैसे स्वर्णमय भाव से कुण्डल आदि भाव उत्पन्न होते हैं, तथा लोहमय भाव से कड़ा आदि भाव उत्पन्न होते हैं; इसी प्रकार अज्ञानी के (अज्ञानमय भाव से) अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं, तथा ज्ञानी के (ज्ञानमय भाव से) समस्त ज्ञानमय भाव होते हैं।

✱✱

उत्थानिका:—कर्मबन्ध के चार कारण-

**अण्णाणस्स दु उदओ, जा जीवाणं अतच्च-उवलद्धी।**
**मिच्छत्तस्स दु उदओ, जीवस्स असद्दहाणत्तं।। 3-64-132।।**

**उदओ असंजमस्स दु, जं जीवाणं हवेदि अविरमणं।**
**जो दु कलुसोवओगो, जीवाणं सो कसाउदओ।। 3-65-133।।**

**तं जाण जोग-उदयं, जो जीवाणं तु चिट्ठ-उच्छाहो।**
**सोहणमसोहणं वा, कादव्वो विरदिभावो वा।। 3-66-134।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जीवाणं) **जीवों के** (जा) **जो** (अतच्चउवलद्धी) **विपरीत ज्ञान अर्थात् वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान है,** (दु) **वह तो** (अण्णाणस्स) **अज्ञान का** (उदओ) **उदय है।** (दु) **तथा** (जीवस्स) **जीव के** (असद्दहाणत्तं) **जो तत्त्व का अश्रद्धान है, वह** (मिच्छत्तस्स) **मिथ्यात्व का** (उदओ) **उदय है।** (दु) **और** (जीवाणं) **जीवों के** (जं) **जो** (अविरमणं) **अत्यागभाव-विषयों से विरत न होना है, वह** (असंजमस्स) **असंयम का** (उदओ) **उदय** (हवेदि) **है।** (दु) **और** (जीवाणं) **जीवों के** (जो) **जो** (कलुसोवओगो) **मलिन उपयोग-क्रोधादि कषायरूप उपयोग है,** (सो) **वह** (कसाउदओ) **कषाय का उदय है।** (तु) **तथा** (जीवाणं) **जीवों के** (जो) **जो** (सोहणमसोहणं वा) **शुभरूप या अशुभरूप** (कादव्वो विरदिभावो वा) **प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिरूप** (चिट्ठउच्छाहो) **मन, वचन, काय के व्यापार में उत्साह है;** (तं) **उसे** (जोगउदयं) **योग का उदय** (जाण) **जानो।**

***अर्थ:***—जीवों के जो विपरीत ज्ञान (वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान) है, वह तो अज्ञान का उदय है; तथा जीव के तत्त्व का अश्रद्धान है, वह मिथ्यात्व का उदय है; और जीवों के जो अत्यागभाव (विषयों से विरत न होना) है, वह असंयम का उदय है; और जीवों के जो मलिन उपयोग (क्रोधादि कषायरूप उपयोग) है, वह कषाय का उदय है; तथा जीवों के जो शुभरूप, प्रवृत्तिरूप अथवा निवृत्तिरूप मन-वचन-काय के व्यापार में उत्साह है उसे योग का उदय जानो।

**

**उत्थानिका**:—द्रव्यकर्म और भावकर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध–

**एदेसु हेदुभूदेसु, कम्मइयवग्गणागदं जं तु।**
**परिणमदे अट्ठविहं, णाणावरणादि-भावेहिं।। 3-67-135।।**

**तं खलु जीवणिबद्धं, कम्मइयवग्गणागदं जइया।**
**तइया दु होदि हेदु[1], जीवो परिणामभावाणं।। 3-68-136।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदेसु हेदुभूदेसु) **इन मिथ्यात्व आदि उदयों के हेतुभूत होने पर** (कम्मइयवग्गणागदं) **कार्मणवर्गणाओं के रूप में आया हुआ** (जं तु) **जो पुद्गल द्रव्य है, वह** (णाणावरणादि भावेहिं) **ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म के रूप में** (अट्ठविहं) **आठ प्रकार** (परिणमदे) **परिणमन करता है**; (तं कम्मइयवग्गणागदं) **वह कार्मण-वर्गणागत पुद्गलद्रव्य** (जइया) **जब** (खलु) **वास्तव में** (जीवणिबद्धं) **जीव के साथ बँधता है,** (तइया दु) **उस काल में** (जीवो) **जीव** (परिणामभावाणं) **अपने अज्ञानमय परिणामस्वरूप भावों का** (हेदू) **हेतु** (होदि) **होता है।**

**अर्थ**:—इन मिथ्यात्व आदि उदयों के हेतुभूत होने पर कार्मण-वर्गणाओं के रूप में आया हुआ जो पुद्गलद्रव्य है, वह ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म के रूप में आठ प्रकार से परिणमन करता है। वह कार्मणवर्गणागत पुद्गलद्रव्य जब वास्तव में जीव के साथ बँधता है, उस काल में जीव अपने अज्ञानमय परिणामरूप भावों का कारण होता है।

**

1. 'हेदू' – ऐसा दीर्घान्त पाठ छन्द की दृष्टि से उचित है।

**उत्थानिका**:—जीव का परिणाम पुद्गल द्रव्य से भिन्न है–

**जीवस्स दु कम्मेण य, सह परिणामा दु होंति रागादी।**
**एवं जीवो कम्मं, च दो वि रागादिमावण्णा।। 3-69-137।।**

**एकस्स दु परिणामो, जायदि जीवस्स रागमादीहिं।**
**ता कम्मोदय-हेदूहि विणा जीवस्स परिणामो।। 3-70-138।।**

***सान्वय अर्थ***:—**यदि** (जीवस्स दु) **जीव के** (कम्मेण य सह) **पुद्गल कर्म के साथ ही** (रागादी परिणामा दु) **रागादि परिणाम** (होंति) **होते हैं,** — (एवं) **इस प्रकार** (हो) **तो** (जीवो कम्मं च) **जीव और कर्म** (दो वि) **दोनों ही** (रागादिभावण्णा) **रागादिभाव को प्राप्त हो जाएँ;** (दु) **किन्तु** (रागमादीहिं परिणामो) **रागादि अज्ञान परिणाम** (एकस्स जीवस्स) **एक जीव के ही** (जायदि) **होता है** (ता) **इसलिए** (कम्मोदयहेदूहि विणा) **कर्म के उदयरूप निमित्तकारण से पृथक् ही** (जीवस्स) **जीव का** (परिणामो) **परिणाम है।**

**अर्थ**:—यदि 'जीव के पुद्गलकर्म के साथ ही रागादि परिणाम होते हैं', —ऐसा मानें तो जीव और कर्म दोनों ही रागादि भाव को प्राप्त हो जाएँ; किन्तु रागादि अज्ञान परिणाम एक जीव के ही होता है, इसलिए कर्म के उदयरूप निमित्तकारण से पृथक् ही जीव का परिणाम है।

**

---

* यहाँ पर गाथा 137 एवं 139 किन्हीं-किन्हीं प्रतियों पर 'क्रम व्यत्यय' (आपस में स्थान-परिवर्तन) के रूप में भी पायीं जातीं हैं।

**उत्थानिका**:—पुद्गलद्रव्य का परिणाम जीव से भिन्न है–

**जदि जीवेण सहच्चिय, पोंग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।**
**एवं पोंग्गलजीवा, हु दो वि कम्मत्तमावण्णा।। 3-71-139।।**

**एकस्स दु परिणामो, पोंग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।**
**ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो।। 3-72-140।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जदि) **यदि** '(जीवेण सहच्चिय) **जीव के साथ ही** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्गलद्रव्य का** (कम्मपरिणामो) **कर्मरूप परिणाम होता है**' – (एवं) **इस प्रकार माना जाए, तो** (पोंग्गलजीवा) **पुद्गल और जीव** (दो वि हु) **दोनों ही** (कम्मत्तमावण्णा) **कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे**; (दु) **किन्तु** (कम्मभावेण) **कर्मभाव** से (परिणामो) **परिणाम** (एकस्स पोंग्गलदव्वस्स) **एक पुद्गलद्रव्य का ही होता है,** (ता) **इसलिए** (जीवभावहेदूहि विणा) **जीव के रागादि अज्ञानपरिणामरूप निमित्तकारण से पृथक् ही** (कम्मस्स) **कर्म का** (परिणामो) **परिणाम है।**

**अर्थ**:—यदि 'जीव के साथ ही पुद्गलद्रव्य का कर्मरूप परिणाम होता है', – इसप्रकार माना जाए, तो पुद्गल और जीव दोनों ही कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे; किन्तु कर्मभाव से परिणाम एक पुद्गलद्रव्य का ही होता है, इसलिए जीव के रागादि अज्ञान परिणामरूप निमित्त-कारण से पृथक् ही पुद्गल द्रव्य-कर्म का परिणाम है।

**

**उत्थानिका**:—जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध–

**जीवे कम्मं बद्धं, पुट्ठं चेदि ववहारणय-भणिदं।**
**सुद्धणयस्स दु जीवे, अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं।। 3-73-141।।**

***सान्वय अर्थ***:—"(जीवे) **जीव में** (कम्मं) **कर्म** (बद्धं) **उसके प्रदेशों के साथ बँधा हुआ है** (पुटठं च) **और** (वह) **उसे स्पर्श करता है**" – (इदि) **यह** (ववहारणय भणिदं) **व्यवहारनय का कथन है,** (दु) **और** '(जीवे) **जीव में** (कम्मं) **कर्म** (अबद्धपुट्ठं हवदि) **अबद्ध और अस्पृष्ट है**' – (सुद्धणयस्स) **यह शुद्धनय-निश्चयनय का कथन है।**

**अर्थ**:—'जीव में कर्म (उसके प्रदेशों के साथ) बँधा हुआ है और उसे स्पर्श करता है' —यह व्यवहारनय का कथन है, और 'जीव में कर्म अबद्ध और अस्पृष्ट है' –यह निश्चयनय का कथन है।

✱✱

**उत्थानिका**:—समयसार नयपक्षों से रहित है–

**कम्मं बद्धमबद्धं, जीवे एदं तु जाण णयपक्खं।**
**णयपक्खातिक्कंतो[1], भण्णदि जो सो समयसारो।। 3-47-142।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवे) **जीव में** (कम्मं) **कर्म** (बद्धं) **बँधा है** – **अथवा** (अबद्धं) **नहीं बँधा है** (एदं तु) **यह तो** (णयपक्खं) **नयपक्ष** (जाण) **जानो; और** (जो) **जो** (णयपक्खातिक्कंतो) **नयपक्ष से अतिक्रान्त - नयपक्ष के विकल्प से रहित** (भण्णदि) **कहलाता है,** (सो) **वह** (समयसारो) **समयसार-निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है।**

**अर्थ**:—जीव में कर्म बँधा है अथवा नहीं बँधा है, यह तो नयपक्ष जानो (इसप्रकार का कोई भी विकल्प नयपक्ष है, ऐसा जानो); और जो नयपक्ष से अतिक्रान्त (किसी भी नयपक्ष के विकल्प से रहित) कहलाता है, वह समयसार (निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व) है।

✱✱

1. 'पक्खादिक्कंतो पुण' इत्यपिपाठः।

**उत्थानिका**:—पक्षातिक्रान्त का स्वरूप–

**दोण्ह वि णयाण भणिदं, जाणदि णवरिं तु समय-पडिबद्धो।**
**ण दु णयपक्खं गिण्हदि, किंचि वि णयपक्ख-परिहीणो।। 3-75-143।।**

***सान्वय अर्थ***:—(दोण्ह वि) **दोनों ही** (णयाण) **नयों के** (भणिदं) **कथन को** (णवरिं तु) **अपितु केवल** (जाणदि) **जानता है, और** (समयपडिबद्धो) **सहज परमानन्दैक-स्वभाव आत्मा का अनुभव करता हुआ** (और) (णयपक्ख-परिहीणो) **समस्त नयपक्षों के विकल्प से रहित हुआ** (णयपक्खं दु) **किसी भी नयपक्ष को** (किंचि वि) **किंचिन्मात्र भी** (ण गिण्हदि) **ग्रहण नहीं करता।**

**अर्थ**:—(श्रुतज्ञानी आत्मा) दोनों ही नयों के कथन को केवलमात्र जानता है। वह (सहज परमानन्दैकस्वभाव) आत्मा का अनुभव करता हुआ और समस्त नयपक्ष के विकल्पों से रहित हुआ किसी भी नयपक्ष को किंचिन्मात्र भी ग्रहण नहीं करता (आत्मानुभव के समय नयों के विकल्प दूर हो जाते हैं)।

✱✱

**उत्थानिका**:—समयसार ज्ञानदर्शन स्वरूप है–

**सम्मद्दंसण-णाणं, एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।**
**सव्व-णयपक्ख-रहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।। 3-76-144।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (सव्वणयपक्खरहिदो) **समस्त नयपक्ष से रहित** (भणिदो) **कहा गया है,** (सो) **वह** (समयसारो) **'समयसार' है।** (एसो) **यह समयसार ही** (णवरि) **केवल** (सम्मद्दंसणणाणं) **सम्यग्दर्शन-ज्ञान** (त्ति) **इस** (ववदेसं) **संज्ञा को (लहदि) पाता है।**

**अर्थ**:—जो समस्त नयपक्ष से रहित कहा है, वह 'समयसार' है। यह 'समयसार' ही केवल सम्यग्दर्शनज्ञान इस नाम को पाता है (अर्थात् समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।)

✱✱

**।। इति तिदिया कत्तिकम्माधियारो समत्तो।।**

# चउत्थो पुण्णपावाधियारो

**उत्थानिका**:—शुभकर्म भी संसार का कारण है–

**कम्ममसुहं कुसीलं, सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।**
**किह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि।। 4-1-145।।**

***सान्वय अर्थ***:—'(असुहं) **अशुभ** (कम्मं) **कर्म** (कुसीलं) **कुशील है,** (अवि च) **और** (सुहकम्मं) **शुभकर्म** (सुसीलं) **सुशील है' —ऐसा** (जाणह) **तुम जानते हो;** **किन्तु** (जं) **जो कर्म** (संसारं) **जीव को संसार में** (पवेसेदि) **प्रवेश कराता है,** (तं) **वह शुभ कर्म** (किह) **किसप्रकार** (सुसीलं) **सुशील** (होदि) **हो सकता है?**

**अर्थ**:—'अशुभ-कर्म कुशील (बुरा) है और शुभकर्म सुशील (अच्छा) है', —ऐसा तुम जानते हो; किन्तु जो शुभ कर्म जीव को संसार में प्रवेश कराता है, वह किसप्रकार सुशील (अच्छा) हो सकता है?

✱✱

**उत्थानिका**:—शुभाशुभ परिणाम कर्मबन्ध के कारण हैं–

**सोवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।**
**बंधदि एवं जीवं, सुहमसुहं वा कदं कम्मं।। 14-2-146।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (सोवण्णियं) **सोने की** (णियलं) **बेड़ी** (पि) **भी** (पुरिसं) **पुरुष को** (बंधदि) **बाँधती है, और** (कालायसं) **लोहे की बेड़ी** (पि) **भी बाँधती है;** (एवं) **इसी प्रकार** (सुहमसुहं वा) **शुभ या अशुभ** (कदं कम्मं) **किया हुआ कर्म** (जीवं) **जीव को** (बंधदि) **बाँधता है।**

**अर्थ**:—जैसे सोने की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है, और लोहे की बेड़ी भी बाँधती है; इसीप्रकार किया हुआ शुभ या अशुभ कर्म जीव को बाँधता है (दोनों ही बन्धनरूप हैं)।

✱✱

**उत्थानिका**:—शुभाशुभ दोनों त्याज्य हैं–

**तम्हा दु कुसीलेहि य, रागं मा काहि मा व संसग्गिं[1] ।**
**साधीणो हि विणासो, कुसील-संसग्गि[2]-रागेण ।। 4-3-147 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(तम्हा दु) **इसलिए** (कुसीलेहि य) **शुभ और अशुभ दोनों कुशीलों से** (रागं) **राग** (मा काहि) **मत करो,** (व) **तथा** (संसग्गिं) **संसर्ग भी** (मा) **मत करो;** (हि) **क्योंकि** (कुसील-संसग्गि-रागेण) **कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से** (साधीणो) **स्वाधीन-सुख का** (विणासो) **विनाश होता है।**

**अर्थ**:—इसलिए शुभ और अशुभ इन दोनों कुशीलों के साथ राग मत करो, तथा संसर्ग भी मत करो; क्योंकि कुशील के साथ संसर्ग और राग करने से स्वाधीन-सुख का विनाश होता है।

**

1. 'संसग्गं' –यह पाठ उचित जान पड़ता है। क्योंकि मूल शब्द 'संसग्ग' हैं
2. यहाँ भी 'संसग्ग' पाठ होना चाहिये।

**उत्थानिका**:—पूर्वोक्त तथ्य का दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण–

**जह णाम को वि पुरिसो, कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।**
**वज्जेदि तेण समयं, संसग्गिं[1] रागकरणं च।। 4-4-148।।**

**एमेव कम्मपयडी सील-सहावं हि कुच्छिदं णादुं।**
**वज्जंति परिहरंति य, तं संसग्गिं सहावरदा।। 4-5-149।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह णाम) **जैसे** (को वि) **कोई** (पुरिसो) **पुरुष** (कुच्छियसीलं) **कुत्सित स्वभाववाले** (जणं) **व्यक्ति को** (वियाणित्ता) **जानकर** (तेण समयं) **उसके साथ** (संसग्गिं) **संसर्ग** (रागकरणं च) **और राग करना** (वज्जेदि) **छोड़ देता है**; (एमेव) **इसी प्रकार** (सहावरदा) **स्वभाव में रत ज्ञानी जीव** (कम्मपयडी सीलसहावं) **कर्म-प्रकृति के शील-स्वभाव को** (कुच्छिदं) **कुत्सित** (णादुं) **जानकर**, (हि) **निश्चय ही** (तं संसग्गिं) **उसके साथ संसर्ग को** (वज्जंति) **छोड़ देते हैं**, (य) **और** (परिहरंति) **राग को छोड़ देते हैं।**

**अर्थ**:—जैसे कोई पुरुष कुत्सित स्वभाववाले पुरुष को जानकर उसके साथ संसर्ग और राग करना छोड़ देता है; इसीप्रकार स्वभाव में रत ज्ञानी जीव कर्म-प्रकृति के शील-स्वभाव को कुत्सित जान कर निश्चय ही उसके साथ संसर्ग को छोड़ देते हैं और (राग को भी) छोड़ देते हैं।

**

1. 'संसग्गं' –यह पाठ होना चाहिए।

**उत्थानिका**:—हे भव्य ! तू कर्मों में राग मत कर–

**रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।**
**एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।। 4-6-150।।**

***सान्वय अर्थ***:—'(रत्तो) **रागी** (जीवो) **जीव** (कम्मं) **कर्मों को** (बंधदि) **बाँधता है, और** (विरागसंपण्णो) **विरक्त जीव** (मुंचदि) **कर्मों से छूटता है**' –(एसो) **यह** (जिणोवदेसो) **जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है;** (तम्हा) **इसलिए** (हे भव्य जीव ! ) (कम्मेसु) **कर्मों में** (मा रज्ज) **तू राग मत कर।**

**अर्थ**:—'रागी जीव कर्मों को बाँधता है, और विरागी जीव कर्मों से छूटता है' –यह जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है; इसलिए (हे भव्य जीव !) तू कर्मों में राग मत कर !

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञान-निर्वाण का कारण है–

**परमट्ठो खलु समओ, सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।**
**तम्हि ट्ठिदा सहावे[1], मुणिणो पावंति णिव्वाणं।। 4-7-151।।**

***सान्वय अर्थ***:—(खलु) **निश्चय से** (जो) **जो** (परमट्ठो) **परमार्थ - शुद्ध आत्मा है – वह** (समओ) **समय – शुद्ध गुण-पर्यायों में परिणमन करनेवाला है,** (सुद्धो) **शुद्ध—समस्त नयपक्षों से रहित एक ज्ञान-स्वरूप होने से 'शुद्ध' है** (केवली) **केवली—केवल चिन्मात्र-वस्तुस्वरूप होने से 'केवली' है,** (मुणी) **मुनि – केवल मननमात्र भावस्वरूप होने से 'मुनि' है,** (णाणी) **ज्ञानी – स्वयं ही ज्ञानस्वरूप होने से 'ज्ञानी' है;** (तम्हि सहावे) **उस परमात्म-स्वभाव में** (ट्ठिदा) **स्थित** (मुणिणो) **मुनिजन** (णिव्वाणं) **निर्वाण को** (पावंति) **प्राप्त करते हैं।**

**अर्थ**:—निश्चय से जो परमार्थ (आत्मा) है, वह समय (शुद्ध गुण-पर्यायों में परिणमन करने वाला) है, शुद्ध (समस्त नयपक्षों से रहित एक ज्ञानस्वरूप होने से शुद्ध) है, केवली (केवल चिन्मात्र-वस्तुस्वरूप होने से केवली) है, मुनि (केवल मननमात्र भावस्वरूप होने से मुनि) है, ज्ञानी (स्वयं ही ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी) है; उस परमात्मस्वभाव में स्थित मुनिजन निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

✱✱

---

1. सब्भावे इत्यपि पाठः। 'आत्मख्याति' के अनुसार 'सहावे' और 'सब्भावे' मे केवल शब्दभेद है, अर्थभेद नहीं।

**उत्थानिका**:—अज्ञानी का व्रत, तप निष्फल है–

**परमट्ठम्मि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारयदि।**
**तं सव्वं बालतवं, बालवदं विंति सव्वण्हू।। 4-8-152।।**

***सान्वय अर्थ***:—(दु) **किन्तु** (जो) **जो** (परमट्ठम्मि) **परमार्थ-शुद्धात्मतत्त्व में** (अठिदो) **स्थित नहीं है; तथा** (तवं) **तप** (कुणदि) **करता है,** (च) **और** (वदं) **व्रत** (धारयदि) **धरण करता है;** (तं सव्वं) **उसके उस समस्त तप और व्रत को** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (बालतंव) **'बालतप' और** (बालवदं) **'बालव्रत'** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—जो परमार्थ में तो स्थित नहीं है, किन्तु तप करता है, और व्रत धारण करता है; उसके उस समस्त तप और व्रत को सर्वज्ञदेव 'बालतप' और 'बालव्रत' कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—अज्ञानी को निर्वाण नहीं है–

**वद-णियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।**
**परमट्ठबाहिरा जे, णिव्वाणं ते ण विंदंति।। 4-9-153।।**

***सान्वय अर्थ***:—(वद-णियमाणि) **व्रत और नियमों को** (धरंता) **धारण करते हुए भी,** (तहा) **तथा** (सीलाणि) **शील** (च) **और** (तवं) **तप** (कुव्वंत) **करते हुए भी** (जे) **जो** (परमट्ठबाहिरा) **परमार्थ से बाह्य हैं – परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा की जिन्हें अनुभूति नहीं है;** (ते) **वे** (णिव्वाणं) **निर्वाण को** (ण) **नहीं** (विंदंति) **प्राप्त करते हैं।**

**अर्थ**:—व्रत और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थ से बाह्य हैं (जिन्हें परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति नहीं है); वे निर्वाण को प्राप्त नहीं करते।

**

**उत्थानिका**:—पुण्य संसार का कारण है–

**परमट्ठबाहिरा जे, ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।**
**संसारगमणहेदुं, वि मोक्खहेदु[1] अयाणंता।। 4-10-154।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जे) **जो** (परमट्ठबाहिरा) **परमार्थ से बाह्य हैं – शुद्ध आत्मस्वरूप का जिन्हें अनुभव नहीं है,** (ते) वे (मोक्खहेदुं) **मोक्ष के हेतु को** (अयाणंता) **न जानते हुए** (अण्णाणेण) **अज्ञान से** (संसारगमणहेदुं वि) **संसार-गमन का हेतु होने पर भी** (पुण्णमिच्छंति) **पुण्य को चाहते हैं।**

**अर्थ**:—जो परमार्थ से बाह्य हैं (शुद्ध-आत्मस्वरूप का जिन्हें अनुभव नहीं है), वे मोक्ष के हेतु को न जानते हुए अज्ञान से संसार-गमन के कारण होने पर भी पुण्य को चाहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—मोक्षमार्ग–

**जीवादी-सद्दहणं, सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।**
**रागादी-परिहरणं, चरणं एसो दु मोक्खपहो।। 4-11-155।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवादी-सद्दहणं) **जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करना** (सम्मत्तं) **'सम्यग्दर्शन' है,** (तेसिमधिगमो) **उन्हीं पदार्थों का संशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान** (णाणं) **'सम्यग्ज्ञान' है,** (रागादी-परिहरणं) **रागादिक का परित्याग** (चरणं) **सम्यक्चारित्र है** —(एसो दु) **यही** (मोक्खपहो) **मोक्ष का मार्ग है।**

**अर्थ**:—जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करना 'सम्यग्दर्शन' है। उन्हीं पदार्थों का संशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान 'सम्यग्ज्ञान' है। रागादिक का परित्याग 'सम्यक्चारित्र' है –यही मोक्ष का मार्ग है।

**

---

1. 'मोक्खहेदुं' यह प्रयोग शुद्ध है। तथा ऐसा न करने से छन्दोभंग भी हो रहा है।

उत्थानिका:—'यति' कर्मों का क्षय करता है–

**मोत्तूण णिच्छयट्ठं, ववहारेण विदुसा[1] पवट्ठंति[2] ।**
**परमट्ठमस्सिदाण दु, जदीण[3] कम्मक्खओ होदि ।। 4-12-156 ।।**

***सान्वय अर्थ:***—(णिच्छयट्ठं) **निश्चयनय के विषय को** (मोत्तूण) **छोड़कर** (विदुसा) **विद्वान्** (ववहारेण) **व्यवहार के द्वारा** (पवट्ठंति) **प्रवृत्ति करते हैं;** (दु) **किन्तु** (परमट्ठमस्सिदाण) **निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित** (जदीण) **यतियों के ही** (कम्मक्खओ) **कर्मों का क्षय** (होदि) **होता है।**

**अर्थ:**—निश्चयनय के विषय को छोड़कर विद्वान् व्यवहार के द्वारा प्रवृत्ति करते हैं; किन्तु निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित यतियों के ही कर्मों का क्षय होता है।

**

---

1. 'विदुसा' विशिष्ट प्रयोग है, यहाँ सामान्यत: कर्तृवाच्य होने से प्रथमा बहुवचन का रूप अपेक्षित है। प्रतीत होता है कि संस्कृत के 'विद्वस्' इस सान्तरूप को ही प्रमुख मानकर **'माणुस' > माणुसा** की तरह **विदुस > विदुसा** रूप प्रयोग किया है। साथ ही यहाँ 'विद्वान्' व्यंजित प्रयोग है।
2. 'पवट्टंति' पाठ शुद्ध है।
3. 'निरत: कात्स्न्र्निवृत्तौ भवति यति: समयसारभूतोऽयम्।' –पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, 147

**उत्थानिका**:—रत्नत्रय की मलिनता के कारण–

**वत्थस्स सेदभावो, जह णासदि मल-विमेलणोच्छण्णो।**
**मिच्छत्त-मलोच्छण्णं, तह सम्मत्तं खु णादव्वं।। 4-13-157।।**

**वत्थस्स सेदभावो, तह णासदि मल-विमेलणोच्छण्णो।**
**अण्णाण-मलोच्छण्णं, तह णाणं होदि णादव्वं।। 4-14-158।।**

**वत्थस्स सेदभावो, जह णासदि मल-विमेलणोच्छण्णो।**
**कस्सायं-मलोच्छण्णं, तह चारित्तं पि णादव्वं[1]।। 4-15-159।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (मल-विमेलणोच्छण्णो) **मैल से व्याप्त हुआ** (वत्थस्स) **वस्त्र का** (सेदभावो) **श्वेतभाव** (णासदि) **नष्ट हो जाता है,** (तह) **उसी प्रकार** (मिच्छत्तमलोच्छण्णं) **मिथ्यात्वरूपी मैल से व्याप्त** (सम्मत्तं) **सम्यक्त्व** (खु) **निश्चय ही तिरोहित हो जाता है,** – (णादव्वं) **ऐसा जानना चाहिये।**

(जह) **जिस प्रकार** (मलविमेलणोच्छण्णो) **मैल से व्याप्त हुआ** (वत्थस्स) **वस्त्र का** (सेदभावो) **श्वेतभाव** (णासदि) **नष्ट हो जाता है,** (तह) **उसी प्रकार** (अण्णाणमलोच्छण्णं) **अज्ञानरूपी मैल से व्याप्त** (णाणं) **ज्ञान** (होदि) **तिरोहित हो जाता है,** –(णादव्वं) **ऐसा जानना चाहिये।**

(जह) **जिस प्रकार** (मलविमेलणोच्छण्णो) **मैल से व्याप्त हुआ** (वत्थस्स) **वस्त्र का** (सेदभावो) **श्वेतभाव** (णासदि) **नष्ट हो जाता है,** (तह पि) **उसी प्रकार** (कस्सायमलोच्छण्णं) **कषाय से व्याप्त हुआ** (चारित्तं) **चारित्र** (होदि) **तिरोहित हो जाता है,** – (णादव्वं) **ऐसा जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जैसे मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार मिथ्यात्वरूपी मैल से व्याप्त सम्यक्त्व निश्चय ही तिरोहित हो जाता है, —ऐसा जानना चाहिये।

---

1. मूडवद्रीताडपत्रप्रतौ। 'कस्साय' में छन्दानुरोध से 'स्' का आगम हुआ है।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से व्याप्त ज्ञान तिरोहित हो जाता है, —ऐसा जानना चाहिये।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार कषाय से व्याप्त हुआ चारित्र तिरोहित हो जाता है, —ऐसा जानना चाहिये।

✱✱

**उत्थानिका:**—कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप हैं–

**सो सव्वणाण-दरिसी, कम्मरयेण णिएणावच्छण्णो।**
**संसार-समावण्णो, ण विजाणदि सव्वदो सव्वं।। 4-16-160।।**

***सान्वय अर्थ:***—(सो) **वह आत्मा** (सव्वणाण-दरिसी) **सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, फिर भी वह** (णिएण) **अपने** (कम्मरयेण) **कर्मरूपी रज से** (अवच्छण्णो) **आच्छादित है; अत: वह** (संसारसमावण्णो) **संसार को प्राप्त हुआ है; और वह** (सव्वं) **सब पदार्थों को** (सव्व्दो) **सब प्रकार से** (ण विजाणदि) **नहीं जानता।**

**अर्थ:**—वह आत्मा (स्वभाव से) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। (फिर भी वह) अपने कर्मरूपी रज से आच्छादित है, (अत: वह) संसार को प्राप्त हुआ है। वह समस्त पदार्थों को सब प्रकार से नहीं जानता।

✱✱

**उत्थानिका**:—रत्नत्रय के प्रतिबन्धक कारण –

**सम्मत्त-पडिणिबद्धं, मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहिदं।**
**तस्सोदयेण जीवो, मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो।। 4-17-161।।**

**णाणस्स पडिणिबद्धं, अण्णाणं जिणवरेहि परिकहिदं।**
**तस्सोदयेण जीवो, अण्णाणी होदि णादव्वो।। 4-18-162।।**

**चारित्त-पडिणिबद्धं, कसायमिदि जिणवरेहि परिकहिदं।**
**तस्सोदयेण जीवो, अचरित्तो होदि णादव्वो।। 4-19-163।।**

***सान्वय अर्थ***:—'(सम्मत्तपडिणिबद्धं) **सम्यक्त्व का प्रतिबन्धक – रोकने वाला** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व है' – यह** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है,** (तस्सोदयेण) **उसके – मिथ्यात्व के उदय से** (जीवो) **जीव** (मिच्छादिट्ठि त्ति) **मिथ्यादृष्टि होता है, – ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (णाणस्स) **ज्ञान का** (पडिणिबद्धं) **प्रतिबन्धक – रोकने वाला** (अण्णाणं) **अज्ञान है – ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है,** (तस्सोदयेण) **उसके उदय से** (जीवो) **जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (होदि) **होता है – ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (चारित्तपडिणिबद्धं) **चारित्र की प्रतिबन्धक – रोकने वाली** (कसायं) **कषाय है – ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिदं) **कहा है,** (तस्सोदयेण) **उनके उदय से** (जीवो) **जीव** (अचरित्तो) **चारित्ररहित** (होदि) **होता है – ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—सम्यक्तव का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) मिथ्यात्व है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव 'मिथ्यादृष्टि' होता है, – ऐसा जानना चाहिये। ज्ञान का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) अज्ञान है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव 'अज्ञानी' होता है, – ऐसा जानना चाहिये।

चारित्र का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) कषाय है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव 'चारित्ररहित' होता है, –ऐसा जानना चाहिये।

**

**।। इति चउत्थो पुण्णपावाधियारो समत्तो।।**

# पंचमो आसवाधियारो

**उत्थानिका**:—दो प्रकार के आस्रव–

**मिच्छत्तं अविरमणं, कसाय-जोगा य सण्णसण्णा दु।**
**बहुविहभेदा जीवे, तस्सेव अणण्णपरिणामा।। 5-1-164।।**

**णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।**
**तेसिं पि होदि जीवो, राग-द्दोसादिभावकरो[1]।। 5-2-165।।**

***सान्वय अर्थ***:—(मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व,** (अविरमणं) **अविरति,** (कसायजोगा य) **कषाय और योग** (सण्णसण्णा दु) **भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रूप में चेतन और अचेतन – इन दो प्रकार के होते हैं।** (जो चेतन के विकार हैं वे) (जीवे) **जीव में** (बहुविहभेदा) **अनेक प्रकार के भेदवाले हैं और वे** (तस्सेव) **जीव के ही** (अणण्णपरिणामा) **अनन्य परिणाम हैं।** (ते दु) **जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हैं, वे** (णाणावरणादीयस्स कम्मस्स) **ज्ञानावरण आदि कर्मों के** (कारणं) **कारण – निमित्त** (होंति) **होते हैं;** (तेसिं पि) **उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारों का कारण – निमित्त** (रागद्दोसादिभावकरो) **राग, द्वेष आदि भावों का कर्त्ता** (जीवो) **जीव** (होदि) **होता है।**

**अर्थ**:—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग (भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रूप में) चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते हैं। (जो चेतन के विकार है, वे) जीव में अनेक प्रकार के भेदवाले हैं और वे जीव के ही अनन्य परिणाम हैं। जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हैं, वे ज्ञानावरण आदि कर्मों के निमित्त हैं। उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारों का निमित्त राग-द्वेष आदि भावों का कर्त्ता जीव होता है।

**

---

1. यहाँ पर **'द्दोस'** प्रयोग अपेक्षित नहीं है, इससे मात्रा भी बढ़ रही है। 'राग-दोसादि' ही शुद्ध रूप होगा।

**उत्थानिका**:—सम्यग्दृष्टि के आस्रवों का अभाव है–

**णत्थि दु आसव-बंधो, सम्मादिट्ठिस्स आसव-णिरोहो।**
**संते पुव्वणिबद्धे, जाणदि सो ते अबंधंतो।। 5-3-166।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सम्मादिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि के** (आसवबंधो) **आस्रव-निमित्तक बन्ध** (णत्थि) **नहीं है**; (दु) **किन्तु** (आसवणिरोहो) **आस्रव का निरोध है।** (ते) **नवीन कर्मों को** (अबंधंतो) **नहीं बाँधता हुआ** (सो) **वह** (संते) **सत्ता में विद्यमान** (पुव्वणिबद्धे) **पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को** (जाणदि) **जानता है।**

**अर्थ**:—सम्यग्दृष्टि के आस्रव-निमित्तक बन्ध नहीं है; किन्तु आस्रव का निरोध है। नवीन कर्मों को न बाँधता हुआ वह सत्ता में विद्यमान पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को जानता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—राग-द्वेष ही आस्रव हैं–

**भावो रागादि-जुदो, जीवेण कदो दु बंधगो होदि।**
**रागादि-विप्पमुक्को, अबंधगो जाणगो णवरि।। 5-4-167।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवेण कदो) **जीव के द्वारा किया हुआ** (रागादिजुदो) **रागादियुक्त** (भावो) **भाव** (दु) **तो** (बंधगो) **नवीन कर्मों का बन्ध करने वाला** (होदि) **होता है, और** (रागादि-विप्पमुक्को) **रागादि से रहित भाव** (अबंधगो) **बन्ध नहीं करता**; (णवरि) **वह मात्र** (जाणगो) **ज्ञायक है।**

**अर्थ**:—जीव के द्वारा किया हुआ रागादियुक्त भाव तो नवीन कर्मों का बन्ध करने वाला होता है और रागादि से रहित भाव बन्ध नहीं करता; वह मात्र ज्ञायक है।

✱✱

**उत्थानिका**:—निर्जरित कर्म का पुनः बन्ध नहीं–

**पक्के फलम्मि पडिदे[1], जह ण फलं बज्झदे पुणो विंटे।**
**जीवस्स कम्मभावे, पडिदे[2] ण पुणोदयमुवेदि।। 5-5-168।।**

**सान्वय अर्थ**: (जह) **जैसे** (पक्के) **पके हुए** (फले) **फल के** (पडिदे) **गिरने पर** (फलं) **वह फल** (पुणो) **पुनः** (विंटे) **डंठल में** (ण बज्झदे) **नहीं जुड़ता; उसी प्रकार** (जीवस्स) **जीव के** (कम्मभावे पडिदे) **पुद्गलकर्मों की निर्जरा होने पर** (पुणो) **पुनः** (ण उदयमुवेदि) **वे उदय को प्राप्त नहीं होते।**

**अर्थ**:—जैसे पके हुए फल के (वृक्ष से) गिरने पर वह फल पुनः डंठल में नहीं जुड़ता, उसी प्रकार जीव के पुद्गल कर्मों की निर्जरा होने पर पुनः वे उदय को प्राप्त नहीं होते (पुनः वे जीव के साथ नहीं बँधते)।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है–

**पुढवीपिंडसमाणा, पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।**
**कम्मसरीरेण दु ते, बद्धा सव्वे वि णाणिस्स।। 5-6-169।।**

***सान्वय अर्थ***:—(तस्स णाणिस) **उस ज्ञानी के** (पुव्वणिबद्धा) **पूर्व अज्ञान अवस्था में बँधे** (सव्वे वि पच्चया) **समस्त प्रत्यय** (दु) **तो** (पुढवीपिंडसमाणा) **पृथ्वी के ढेले के समान हैं,** (दु) **और** (ते) वे (कम्मसरीरेण) **कार्मण शरीर के साथ** (बद्धा) **बँधे हुए हैं।**

**अर्थ**:—उस ज्ञानी के पहले (अज्ञान अवस्था में) बँधे हुए सभी (मिथ्यात्वादि द्रव्य) प्रत्यय तो पृथ्वी के ढेले के समान हैं (अकिंचित्कर हैं); और वे (अपने पुद्गलस्वभाव से) कार्मण शरीर के साथ बँधे हुए हैं।

✱✱

---

1-2. यहाँ पर 'पडिदे' पाठ में 'सति-सप्तमी' का प्रयोग है।

उत्थानिका:—ज्ञानगुण से कर्म-बन्ध–

**चहुविह[1] अणेयभेयं, बंधंते णाण-दंसणगुणेहिं।**
**समये-समये जम्हा, तेण अबंधो त्ति णाणी दु।। 5-7-170।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जम्हा) **चूँकि** (चहुविह) **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग —ये चार प्रकार के द्रव्यास्रव** (णाण-दंसणगुणेहिं) **ज्ञान-दर्शन गुणों के द्वारा** (समये समये) **प्रतिसमय** (अणेयभेयं) **अनेक प्रकार के कर्मों को** (बंधंते) **बाँधते हैं;** (तेण) **इसलिए** (णाणी) **ज्ञानी** (दु) **तो** (अबंधो-त्ति) **अबन्धक है।**

**अर्थ:**—चूँकि (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये) चार प्रकार के द्रव्यास्रव ज्ञान-दर्शन गुणों के द्वारा प्रतिसमय अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं; अत: ज्ञानी तो अबन्धक ही हैं।

✱✱

उत्थानिका:—ज्ञानगुण कर्म-बन्ध का कारण क्यों है–

**जम्हा दु जहण्णादो, णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।**
**अण्णत्तं णाणगुणो, तेण दु सो बंधगो भणिदो।। 5-8-171।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जम्हा दु) **चूँकि** (णाणगुणो) **ज्ञानगुण** (जहण्णादो णाणगुणादो) **जघन्य ज्ञानगुण से** (पुणो वि) **पुन: अन्तर्मुहूर्त के पश्चात्** (अण्णत्तं) **अन्य रूप से** (परिणमदि) **परिणमन करता है;** (तेण दु) **इसलिए** (सो) **वह** (बंधगो) **कर्म-बन्ध करानेवाला** (भणिदो) **कहा गया है।**

**अर्थ:**—चूंकि 'ज्ञानगुण' ज्ञानगुण के जघन्य भाव (क्षायोपशमिक ज्ञान) के कारण पुन: अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अन्यरूप से परिणमन करता है, इसी प्रकार वह (ज्ञानगुण का जघन्य भाव—यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति से पूर्व तक) कर्म का बन्ध करानेवाला कहा गया है।

✱✱

1. 'चहुविह इति बहुवचने प्राकृतलक्षणबलेन ह्रस्वत्वं।' —आचार्य जयसेन।

**उत्थानिका**:—रत्नत्रय का जघन्य भाव कर्म-बन्ध का कारण है–

**दंसण-णाण-चरित्तं, जं परिणमदे जहण्णभावेण।**
**णाणी तेण दु बज्झदि, पोग्गलकम्मेण विविहेण।। 5-9-172।।**

***सान्वय अर्थ***:—(दंसणणाणचरित्तं) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (जहण्णभावेण) **जघन्य भाव से** (जं) **जो** (परिणमदे) **परिणमन करते हैं;** (तेण दु) **इसलिए** (णाणी) **ज्ञानी जीव** (विविहेण) **अनेक प्रकार के** (पोग्गलकम्मेण) **पुद्गलकर्मों से** (बज्झदि) **बन्ध को प्राप्त होता है।**

**अर्थ**:—जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्य भाव से परिणमन करते हैं, उसके कारण ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गलकर्मों को प्राप्त होता है।

✱✱

उत्थानिका:—सम्यग्दृष्टि के कर्म-बन्ध नहीं होता–

**सव्वे पुव्व-णिबद्धा, दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स।**
**उवओगप्पाओगं, बंधंते कम्मभावेण।। 5-10-173।।**

**संता दु णिरुवभोज्जा, बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स।**
**बंधदि ते उवभोज्जे, तरुणी इत्थी जह णरस्स।। 5-11-174।।**

**होदूण णिरुवभोज्जा, तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।**
**सत्तट्ठविहा भूदा, णाणावरणादि-भावेहिं।। 5-12-175।।***

**एदेण कारणेण दु, सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो।**
**आसव-भावाभावे, ण पच्चया बंधगा भणिदा।। 5-13-176।।**

***सान्वय अर्थ:***—(सम्मदिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि जीव के** (पुव्वणिबद्धा दु) **पूर्व की सराग दशा में बाँधे हुए** (सव्वे) **सभी** (पच्चया) **द्रव्यास्रव** (संति) **सत्ता में विद्यमान हैं;** वे (उवओगप्पाओगे) **उपयोग के प्रयोगानुसार** (कम्मभावेण) **कर्म के रूप में** (बंधते) **बन्ध को प्राप्त होते हैं,** (संता दु) **सत्ता में विद्यमान रहते हैं; फिर भी उदय से पूर्व** (णिरुवभोज्जा) **भोगने योग्य नहीं होते हैं,** (जहेव) **जिस प्रकार** (पुरिसस्स) **किसी पुरुष** (बाला इत्थी) **बाल स्त्री भोग्य नहीं होती है।** (ते) **वे ही कर्म** (उवभोज्जे) **उदय काल में भोगने योग्य होने पर** (बंधदि) **नये कर्मों का बन्ध करते हैं,** (जह) **जिस प्रकार** (णरस्स) **किसी पुरुष की** (तरुणी इत्थी) **तरुणी स्त्री भोग्य होती है और पुरुष को रागभाव में बाँध लेती है।** (णिरुवभोज्जा होदूण) **वे पूर्वबद्ध प्रत्यय भोगने के अयोग्य होकर** (जह) **जैसे** (उवभोज्जा) **भोगने योग्य** (हवंति) **होते हैं,** (तह) उसी **प्रकार** (णाणावरणादि भावेहिं) **ज्ञानावरण आदि रूप से** (सत्तट्ठविहा भूदा) **आयुकर्म के बिना सात प्रकार के और आयुकर्म-सहित आठ प्रकार के कर्मों को** (बंधदि) **बाँधते हैं;** (एदेण कारणेण दु) **इसी कारण से** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि जीव**

---

* गाथा क्र० 174 एवं 175 में किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में 'क्रम व्यत्यय' (आपस में स्थान-परिवर्तन) पाया जाता है।

(अबंधगो) **कर्म-बन्ध न करने वाला** (भणिदो) **कहा गया है,** (आसवभावाभावे) **आस्रव भाव—रागादि भावास्रव के अभाव में** (पच्चया) **द्रव्य-प्रत्यय** (बंधगा) **बन्धकारक** (ण) **नहीं** (भणिदा) **कहे गये हैं।**

**अर्थ:**—सम्यग्दृष्टि जीव के पूर्व की सरागदशा में बाँधे हुए सभी द्रव्यास्रव सत्ता में विद्यमान हैं। वे उपयोग के प्रयोगानुसार कर्म भाव के द्वारा (रागादि भाव-प्रत्ययों के द्वारा) बन्ध को प्राप्त होते हैं। सत्ता में विद्यमान रहते हैं, फिर भी उदय से पूर्व वे भोगने योग्य नहीं होते; जैसे बाल-स्त्री पुरुष के लिए भोग्य नहीं होती। वे ही कर्म उदयकाल में भोगने योग्य होने पर नये कर्मों का बाँधते हैं; जिस प्रकार तरुणी स्त्री पुरुष के लिए (भोगने योग्य होती है औरपुरुष को राग भाव में बाँध लेती है)। वे पूर्वबद्ध कर्म भोगने के अयोग्य होकर जैसे भोगने योग्य होते हैं, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि रूप से (आयुकर्म के बिना) सात प्रकार के और (आयुकर्म-सहित) आठ प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं। इसी कारण से सम्यग्दृष्टि जीव 'अबन्धक' (कर्म-बन्ध न करने वाला) कहा गया है। रागादि भावास्रव के अभाव में द्रव्य-प्रत्यय बन्धकारक नहीं नहीं होते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—भाव-प्रत्यय के बिना द्रव्य-प्रत्यय नहीं होता –

**रागो दोसो मोहो, य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स[1] ।**
**तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ।। 5-14177 ।।**

**हेदू चदुव्वियप्पो, अट्ठवियप्पस्स कारणं हवदि ।**
**तेसिं पि य रागादी, तेसिमभावे ण बज्झंति ।। 5-15-178 ।।**

***सान्वय अर्थ***:—(रागो) **राग,** (दोसो) **द्वेष,** (य) **और मोह-**(आसवा) **ये आस्रव** (सम्मदिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि के** (णत्थि) **नहीं होते हैं;** (तम्हा) **इसलिए** (आसवभावेण विणा) **रागादि भावास्रव के बिना** (पच्चया) **द्रव्य-प्रत्यय** (हेदू) **कर्मबन्ध के कारण** (ण होंति) **नहीं होते हैं ।** (चदुव्वियप्पो हेदू) **मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु** (अट्ठवियप्पस्स) **आठ प्रकार के कर्मों के** (कारणं) **कारण** (हवदि) **होते हैं,** (च) **और** (तेसिं पि) **उन चार प्रकार के हेतुओं के** (रागादी) **जीव के रागादि भाव-कारण हैं;** (तेसिमभावे) **उन रागादि भावों का अभाव होने के कारण** (ण झंति) **कर्मों का बन्ध नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि के कर्मबन्ध नहीं होता ।**

**अर्थ**:—राग, द्वेष और मोह —ये आस्रव सम्यग्दृष्टि के नहीं होते हैं, इसलिए रागादि भावास्रव के बिना द्रव्य-प्रत्यय कर्म-बन्ध के कारण नहीं होते हैं। मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के कर्मों के कारण होते हैं और उन चार प्रकार के हेतुओं के कारण जीव के रागादि भाव हैं। उन रागादि भावों का अभाव होने के कारण सम्यग्दृष्टि के कर्म-बन्ध नहीं होता है।

✱✱

1. सामान्यतः 'सम्मादिट्ठि' प्रयोग साधु है, किंतु यहाँ छन्दानुरोध से 'सम्मदिट्ठि' ऐसा ह्रस्व प्रयुक्त हुआ है।

**उत्थानिका**:—शुद्धनय से च्युत जीव के बन्ध होता है–

**जह पुरिसेणाहारो, गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।**
**मंस-वसा-रुहिरादी, भावे उदरग्गि-संजुत्तो।। 5-16-179।।**

**तह णाणिस्स दु पुव्वं, जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।**
**बज्झंते कम्मं ते, णयपरिहीणा दु ते जीवा।। 5-17-180।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (पुरिसेण) **पुरुष के द्वारा** (गहिदो) **ग्रहण किया हुआ** (आहारो) **आहार** (उदरग्गिसंजुत्तो) **उदराग्नि का संयोग पाकर** (सो) **वह आहार** (मंस-वसा-रुहिरादी भावे) **मांस, मज्जा, रुधिर आदि के रूप में** (अणेयविहं) **अनेक रूप में** (परिणमदि) **परिणमन करता है**; (तह) **उसी प्रकार** (णाणिस्स दु) **ज्ञानी के** (पुव्वं बद्धा) **पूर्व में बद्ध** (जे पच्चया) **जो प्रत्यय-द्रव्यास्रव हैं**, (ते) वे (बहुवियप्पं) **अनेक प्रकार के** (कम्मं) **कर्मों को** (बज्झंते) **बाँधते हैं**; (ते दु जीवा) **वे जीव** (णयपरिहीणा) **शुद्धनय से च्युत हैं**। (शुद्धनय से च्युत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है, उससे द्रव्यास्रव और कर्म-बन्ध होता है)।

**अर्थ**:—जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उदराग्नि का संयोग पाकर वह मांस, मज्जा, रुधिर आदि के रूप से अनेक रूप में परिणमन करता है; उसी प्रकार ज्ञानी के पूर्व में बद्ध जो द्रव्यास्रव थे, वे अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं। वे जीव शुद्धनय से च्युत हैं (शुद्धनय से च्युत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है, उससे द्रव्यास्रव और कर्म-बन्ध होता है)।

**

**।। इदि पंचमो आसवाधियारो समत्तो।।**

# छट्ठमो संवराधियारो

**उत्थानिका**:—भेदविज्ञान ही संवर का उपाय है–

**उवओगे उवओगो, कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।**
**कोहे कोहो चेव हि, उवओगे णत्थि खलु कोहो।। 6-1-181।।**

**अट्ठवियप्पे कम्मे, णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।**
**उवओगम्हि य कम्मं, णोकम्मं चावि णो अत्थि।। 6-2-182।।**

**एदं तु अविवरीदं, णाणं जइया दु होदि जीवस्स।**
**तइया ण किंचि कुव्वदि, भावं उवओग-सुद्धप्पा।। 6-3-183।।**

***सान्वय अर्थ***:—(उवओगो) **उपयोग** (उवओगे) **उपयोग में है,** (कोहादिसु) **क्रोध आदि में** (को वि) **कोई भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नहीं है;** (च) **और** (कोहे एव हि) **क्रोध में ही** (कोहो) **क्रोध है,** (खलु) **निश्चय ही** (उवओगे) **उपयोग में** (कोहो) **क्रोध** (णत्थि) **नहीं है।** (अट्ठवियप्पे) **आठ प्रकार के** (कम्मे) **कर्मों में** (च) **और** (णोकम्मे अवि) **नोकर्म में भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नहीं है,** (य) **और** (उवओगम्हि) **उपयोग में** (कम्मं) **कर्म** (च) **और** (णोकम्मं अवि) **नोकर्म भी** (णो अत्थि) **नहीं है।** (जइया दु) **जिस काल में** (एदं तु) **ऐसा** (अविवरीदं) **अविपरीत-सत्यार्थ** (णाणं) **ज्ञान** (जीवस्स) **जीव को** (होदि) **हो जाता है,** (तइया) **तब** (उवओगसुद्धप्पा) **उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा** (किंचि भावं) **उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को** (ण कुव्वदि) **नहीं करता।**

**अर्थ**:—उपयोग में उपयोग है, क्रोध आदि में कोई भी उपयोग नहीं है; और क्रोध में ही क्रोध है, निश्चय ही उपयोग में क्रोध नहीं है। आठ प्रकार के (ज्ञानावरणादि) कर्मों और (शरीरादि) नोकर्मों में भी उपयोग नहीं है, और उपयोग में कर्म और नोकर्म भी नहीं है। जिस काल में जीव को ऐसा अविपरीत (सत्यार्थ) ज्ञान हो जाता है, तब उपयोग-स्वरूप शुद्धात्मा उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को नहीं करता।

✱✱

**उत्थानिका**:—भेदविज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति–

**जह कणयमग्गितवियं, पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि।**
**तह कम्मोदय-तविदो, ण जहदि णाणी दु णाणित्तं।। 6-4-184।।**

**एवं जाणदि णाणी, अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।**
**अण्णाण-तमोच्छण्णं[1], आदसहावं अयाणंतो।। 6-5-185।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (अग्गितवियं पि) **अग्नि में तपाया हुआ भी** (कणयं) **सोना** (तं कणयसहावं) **अपने सुवर्ण-स्वभाव को** (ण परिच्चयदि) **नहीं छोड़ता**; (तह) **इसी प्रकार** (कम्मोदयतविदो) **तीव्र परीषह-उपसर्गरूप कर्मोदय से तप्त होता हुआ** (णाणी दु) **ज्ञानी भी** (णाणित्तं) **ज्ञानीपने के स्वभाव को** (ण जहदि) **नहीं छोड़ता है।** (एवं) **इसीप्रकार** (णाणी) **ज्ञानी** (जाणदि) **जानता हैं, और** (अण्णाणतमोच्छण्णं) **अज्ञानरूप अन्धकार से आच्छन्न** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (आदसहावं) **आत्मस्वभाव को** (अयाणंतो) **न जानता हुआ** (रागमेव) **राग को ही** (आदं) **आत्मा** (मुणदि) **मानता है।**

**अर्थ**:—जैसे अग्नि में तपाया हुआ सोना अपने सुवर्ण-स्वभाव को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार (तीव्र परीषह-उपसर्गरूप) कर्मोदय से तप्त होता हुआ ज्ञानी भी अपने ज्ञानीपने के स्वभाव को नहीं छोड़ता है। इसीप्रकार ज्ञानी जानता है, और अज्ञानरूप अन्धकार से आच्छन्न अज्ञानी आत्मस्वभाव को न जानता हुआ राग को ही आत्मा मानता है।

**

1. 'तमोच्छण्णो' – यह पाठ भी मिलता है।

**उत्थानिका**:—शुद्धात्मा के अनुभव से संवर होता है–

**सुद्धं तु वियाणंतो, विसुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो।**
**जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं[1] लहदि।। 6-6-186।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सुद्धं तु) **शुद्ध आत्मा को** (वियाणंतो) **जानता हुआ** (जीवो) **जीव** (विसुद्धमेव) **शुद्ध ही** (अप्पयं) **आत्मा को** (लहदि) **प्राप्त करता है**; (दु) **और** (असुद्धं) **अशुद्ध आत्मा को** (जाणंतो) **जानता हुआ जीव** (असुद्धमेव अप्पयं) **अशुद्ध आत्मा को ही** (लहदि) **प्राप्त करता है।**

**अर्थ**:—शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है; और अशुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

✱✱

1. 'अप्पयं' > आत्मानं —यह विशिष्ट प्रयोग है।

उत्थानिका:—संवर की विधि–

**अप्पाणमप्पणा रुंधिदूण दो-पुण्ण-पाव-जोगेसु।**
**दंसण-णाणम्हि ठिदो, इच्छाविरदो य अण्णम्हि।। 6-7-187।।**

**जो सव्वसंगमुक्को, झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा।**
**ण वि कम्मं णोकम्मं, चेदा चिंतेदि एयत्तं।। 6-8-188।।**

**अप्पाणं झायंतो, दंसण-णाणमइओ अणण्णमओ।**
**लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्म-पविमुक्कं।। 6-9-189।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अप्पाणं) **आत्मा को** (अप्पणा) **आत्मा के द्वारा** (दो-पुण्ण-पाव-जोगेसु) **पुण्य और पाप —इन दोनों शुभाशुभ योगों से** (रुंधिदूण) **रोककर** (दंसणणाणम्हि) **दर्शन और ज्ञान में** (ठिदो) **स्थित हुआ,** (य) **और** (अण्णम्हि) **अन्य देह – रागादि में** (इच्छाविरदो) **इच्छा से विरत हुआ, तथा** (सव्वसंगमुक्को) **समस्त बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ** (जो अप्पा) **जो आत्मा** (अप्पाणं) **आत्मा को** (अप्पणा) **आत्मा के द्वारा** (झायदि) **ध्याता है,** (कम्मं ण वि णोकम्मं) **न कर्म को और न नोकर्म को ध्याता है** – (चेदा) **ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा** (एयत्तं) **एकत्व का** (चिंतेदि) **चिन्तन – अनुभव करता है।** (सो) **वह आत्मा** (अप्पाणं) **अपनी आत्मा का** (झायंतो) **ध्यान करता हुआ** (दंसणणाणमइओ) **दर्शन और ज्ञानमय अर्थात्** (अणण्णमओ) **अनन्यमय होता हुआ** (अचिरेण एव) **थोड़े ही काल में** (कम्म-वंविमुक्कं) **कर्मों से रहित** (अप्पाणं) **आत्मा को** (लहदि) **प्राप्त कर लेता है।**

**अर्थ**:—आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा पुण्य और पाप इन दोनों शुभाशुभ योगों से रोककर दर्शन और ज्ञान में स्थित हुआ, और अन्य देह-रागादि में इच्छा से विरत हुआ, तथा समस्त बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ जो आत्मा अपनी आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा ध्याता है, (एवं) कर्म और नोकर्म को नहीं ध्याता है, – ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा एकत्व का चिन्तन (अनुभव) करता है। वह आत्मा अपनी आत्मा का ध्यान करता हुआ दर्शन-ज्ञानमय हुआ और अनन्यमय हुआ थोड़े ही काल में कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त कर लेता है।

**

उत्थानिका:—संवर का क्रम–

**तेसिं हेदू भणिदा, अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं।**
**मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरदिभावो य जोगो य।। 6-10-190।।**

**हेदु-अभावे णियमा, जायदि णाणिस्स आसव-णिरोहो।**
**आसव-भावेण विणा, जायदि कम्मस्स दु णिरोहो।। 6-11-191।।**

**कम्मस्साभावेण[1] य, णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो।**
**णोकम्म-णिरोहेण य, संसार-णिरोहणं होदि।। 6-12-192।।**

***सान्वय अर्थ:***—(सव्वदरिसीहिं) **सर्वज्ञदेव ने** (तेसिं) **रागादि विभाग कर्मरूप भावास्रवों के** (हेदू) **कारण** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व,** (अण्णाणं) **अज्ञान,** (य अविरदिभावो) **और अविरतिभाव,** (य जोगो) **और योग —ये चार** (अज्झवसाणाणि) **अध्यवसान** (भणिदा) **कहे हैं।** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (हेदु अभावे) **इन हेतुओं के अभाव में** (णियमा) **नियम से** (आसवणिरोहो) **आस्रव का निरोध** (जायदि) **होता है;** (आसवभावेण विणा) **आस्रवभाव के बिना** (कम्मस्स दु) **कर्म का भी** (णिरोहो) **निरोध** (जायदि) **हो जाता है,** (य) **और** (कम्मस्साभावेण) **कर्म का अभाव होने पर** (णोकम्माणं पि) **नोकर्मों का भी** (णिरोहो) **निरोध** (जायदि) **हो जाता है,** (य) **और** (णोकम्मणिरोहेण) **नोकर्म का निरोध होने से** (संसारणिरोहणं) **संसार का निरोध** (होदि) **होता है।**

**अर्थ:**—सर्वज्ञदेव ने (रागादि विभाव कर्मरूप) भावास्रवों के कारण मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरतिभाव और योग—ये चार अध्यवसान कहे हैं। ज्ञानी के हेतुओं के अभाव में नियम से आस्रव का निरोध हेता है। आस्रवभाव के बिना कर्म का भी निरोध हो जाता है और कर्म का अभाव होने से नोकर्मों का भी निरोध हो जाता है तथा नोकर्म का निरोध होने से संसार का निरोध होता है।

**

**।। इति छट्ठमो संवरधियारो समत्तो।।**

---

1. 'कम्मस्स अभावेण य' यह संधि-रहित पाठ छन्द की दृष्टि से अनुकूल है।

# सत्तमो णिज्जराधियारो

**उत्थानिका**:—द्रव्या-निर्जरा का स्वरूप–

**उवभोगमिंदियेहिं, दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।**
**जं कुणदि सम्मदिट्ठी[1], तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं।। 7-1-193।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सम्मदिट्ठी) **सम्यग्दृष्टिजीव** (इंदियेहिं) **इन्द्रियों के द्वारा** (अचेदणाणं) **अचेतन और** (इदराणं) **चेतन** (दव्वाणं) **द्रव्यों का** (जं) **जो** (उवभोगं) **उपभोग** (कुणदि) **करता है**; (तं सव्वं) **वह सब** (णिज्जरणिमित्तं) **निर्जरा का निमित्त है।**

***अर्थ***:—सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियों के द्वारा अचेतन और चेतन द्रव्यों का जो उपभोग करता है, वह सब निर्जरा का निमित्त है।

**

1. 'सम्मदिट्ठी' में 'म' ह्रस्व छन्दानुरोध से प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः 'सम्मादिट्ठी' प्रयोग करते है

उत्थानिका:—भाव-निर्जरा का स्वरूप–

**दव्वे उवभुज्जंते[1], णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा।**
**तं सुह-दुक्खमुदिण्णं, वेददि अध णिज्जरं जादि।। 7-2-194।।**

***सान्वय अर्थ:***—(दव्वे) **परद्रव्यों का** (उवभुज्जंते) **जीव के द्वारा उपभोग करने पर** (णियमा) **नियम से** (सुहं च) **जो सुख अथवा** (दुक्खं वा) **दु:ख** (जायदि) **होता है; जीव** (तं) **उस** (उदिण्णं) **उदय में आये हुए** (सुहदुक्खं) **सुख-दु:ख का** (वेददि) **अनुभव करता है,** (अध) **फिर – वह** (णिज्जरंजादि) **निर्जरा को प्राप्त हो जाता है – झड़ जाता है।**

**अर्थ:**—परद्रव्यों का (जीव के द्वारा) उपभोग करने पर नियम से जो सुख अथवा दु:ख होता है। (जीव) उदय में आये हुए उस सुख-दु:ख का अनुभव करता है; फिर (वह) निर्जरा को प्राप्त हो जाता है (झड़ जाता है)।

**

उत्थानिका:—ज्ञानी को कर्म-बंध नहीं होता–

**जह विसमुवभुज्जंतो, वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।**
**पोग्गलकम्मस्सुदयं, तह भुंजदि णेव बज्झदे णाणी।। 7-3-195।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जह) **जिस प्रकार** (वेज्जो पुरिसो) **विषवैद्य** (विसमुव-भुज्जंतो) **विष का उपभोग करता हुआ भी** (मरणं) **मरण को** (ण उवयादि) **प्राप्त नहीं होता है;** (तह) **उसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी पुरुष** (पोग्गलकम्मस्स) **पुद्गल कर्म के** (उदयं) **उदय को** (भुंजदि) **भोगता है, फिर भी** (णेव बज्झदे) **कर्म से बँधता नहीं।**

**अर्थ:**—जिस प्रकार विषवैद्य विष का उपभोग करता हुआ भी मरण को प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष पुद्गल-कर्म के उदय को भोगता है, तथापि वह कर्म से नहीं बँधता।

**

1. 'उवभुंजते' – इत्यपि पाठ:।

**उत्थानिका**:—वैराग्य की सामर्थ्य–

**जह मज्जं पिवमाणो[1], अरदिभावेण ण मज्जदे पुरिसो।**
**दव्वुवभोगे अरदो, णाणी वि ण बज्झदे तहेव।। 7-4-196।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जिस प्रकार** (पुरिसो) **कोई पुरुष** (मज्जं) **मद्य को** (पिवमाणो) **पीता हुआ भी** (अरदिभावेण) **तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से** (ण मज्जदे) **मतवाला नहीं होता;** (तहेव) **उसी प्रकार** (णाणी वि) **ज्ञानी भी** (दव्वुवभोगे) **द्रव्यों के उपभोग में** (अरदो) **विरक्त रहता हुआ** (ण बज्झदे) **कर्मों से नहीं बँधता।**

**अर्थ**:—जिस प्रकार कोई पुरुष मद्य को पीता हुआ तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से मतवाला नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी द्रव्यों के उपभोग में विरक्त रहता हुआ (वैराग्य की सामर्थ्य से) कर्मों से नहीं बँधता।

**

1. 'पिबमाणो' पाठ होना चाहिये।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर–

**सेवंतो वि ण सेवदि, असेवमाणो वि सेवगो को वि।**
**पगरणचेट्ठा कस्स वि, ण य पायरणो[1] त्ति सो होदि।। 7-5-197।।**

***सान्वय अर्थ***:—(को वि) **कोई सम्यग्दृष्टि - रागादिभाव के अभाव के कारण** (सेवंतो वि) **विषयों का सेवन करता हुआ भी** (ण सेवदि) **सेवन नहीं करता; और अज्ञानी विषयों में रागभाव के कारण** (असेवमाणो वि) **उन्हें सेवन न करता हुआ भी** (सेवगो) **सेवन करने वाला होता है। जैसे कि** (कस्सवि) **किसी पुरुष की** (पगरणचेट्ठा) **कार्य-सम्बन्धी क्रिया होती है;** (ण य पायरणो त्ति होदि) **किन्तु वह कार्य करने वाला नहीं होता।**

**अर्थ**:—कोई सम्यग्दृष्टि (रागादिभाव के अभाव के कारण) विषयों का सेवन करता हुआ भी उनका सेवन नहीं करता, (और अज्ञानी विषयों में रागभाव के कारण) उन्हें सेवन न करता हुआ भी सेवन करने वाला होता है। जैसे– किसी पुरुष की कार्यसम्बन्धी क्रिया होती है, किन्तु वह कार्य करने वाला नहीं होता।

*विशेष:—जैसे कोई मुनीम सेठ की ओर से व्यापार का सब कार्य करता है, किन्तु उस व्यापार तथा उसकी लाभ-हानि का वह स्वामी नहीं होता। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि-भोगों का सेवन करता हुआ भी राग न होने के कारण उसका असेवक है, और मिथ्यादृष्टि सेवन न करता हुआ भी राग के सद्भाव के कारण उसका सेवक है।*

✱✱

1. 'पागरणो' पाठ होना चाहिये।

उत्थानिका:—ज्ञानी का स्व-पर-विवेक–

**उदयविवागो विविहो, कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं।**
**ण हु ते मज्झ सहावा, जाणगभावो दु अहमेक्को।। 7-6-198।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जिणवरेहिं) **जिनेन्द्रदेव ने** (कम्माणं) **कर्मों के** (उदयविवागो) **उदय के फल** (विविहो) **अनेक प्रकार के** (वण्णिदो) **बताये हैं,** (ते हु) **वे तो** (मज्झ) **मेरे** (सहावा) **स्वभाव** (ण) **नहीं हैं;** (अहं दु) **मैं तो** (ऐक्को) **एक** (जाणगभावो) **ज्ञायकभाव हूँ।**

**अर्थ:**—जिनेन्द्रदेव ने कर्मों के उदय के फल अनेक प्रकार बताये हैं, वे तो मेरे स्वभाव नहीं हैं; मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ।

**

उत्थानिका:—राग पुद्गल-कर्म है–

**पोग्गलकम्मं रागो, तस्स विवागोदओ हवदि एसो।**
**ण हु एस मज्झ भावो, जाणगभावो दु अहमेक्को।। 7-7-199।।**

***सान्वय अर्थ:***—(रागो) **राग** (पोग्गलकम्मं) **पुद्गल-कर्म है** (तस्स) **उसके** (विवागोदओ) **फलस्वरूप उदय का** (एसो) **यह रागरूप भाव** (हवदि) **है,** – (एस हु) **यह तो** (मज्झ भावो) **मेरा भाव** (ण) **नहीं है;** (अहं दु) **मैं तो** (ऐक्को) **एक** (जाणगभावो) **ज्ञायकभाव हूँ।**

**अर्थ:**—राग पुद्गलकर्म है, उसके फलस्वरूप उदय से उत्पन्न यह रागरूप भाव है, यह मेरा भाव नहीं है; मैं तो एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव हूँ।

**

**उत्थानिका**:—सम्यग्दृष्टि ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न होता है–

**एवं सम्मादिट्ठी, अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।**
**उदयं कम्मविवागं, च मुयदि तच्चं वियाणंतो।। 7-8-200।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं) **इस प्रकार** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (अप्पाणं) **अपने-आपको** (जाणगसहावं) **ज्ञायकस्वभाव** (मुणदि) **जानता है,** (च) **और** (तच्चं) **आत्मतत्त्व को** (वियाणंतो) **जानता हुआ** (कम्मविवागं उदयं) **कर्म के विपाकरूप उदय – कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावों को** (मुयदि) **छोड़ देता है।**

**अर्थ**:—पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दृष्टि अपने-आपको (टंकोत्कीर्ण) ज्ञायक स्वभाव जानता है, और आत्मतत्त्व को जानता हुआ कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावों को छोड़ देता है।

**

**उत्थानिका**:—रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है–

**परमाणुमेत्तयं पि हु, रागादीणं तु विज्जदे जस्स।**
**ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि।। 7-9-201।।**

**अप्पाणमयाणंतो, अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।**
**किह होदि सम्मदिट्ठी[1], जीवाजीवे अयाणंतो।। 7-10-202।।**

***सान्वय अर्थ***:—(हु) **वास्तव में** (जस्स) **जिस जीव के** (रागादीणं तु) **रागादिक का** (परमाणुमेत्तयं पि) **परमाणुमात्र-लेशमात्र भी** (विज्जदे) **विद्यमान है,** (सो तु) **वह जीव** (सव्वागमधरो वि) **सर्वागम का धारक-ज्ञाता होने पर भी** (अप्पाणयं) **आत्मा को** (ण वि जाणदि) **नहीं जानता;** (च) **और** (अप्पाणं) **आत्मा को** (अयाणंतो) **न जानता हुआ** (सो) **वह** (अणप्पयं अवि) **अनात्मा को भी** (अयाणंतो) **नहीं जानता;** अतः (जीवाजीवे) **जीव और अजीव को** (अयाणंतो) **न जाननेवाला** (किह) **किस प्रकार** (सम्मदिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (होदि) **हो सकता है?**

**अर्थ**:—वास्तव में जिस जीव के रागादि (अज्ञान भावों) का परमाणुमात्र (लेशमात्र) भी विद्यमान है, वह जीव सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता होने पर भी आत्मा को नहीं जानता; और आत्मा को न जानता हुआ वह अनात्मा को भी नहीं जानता। इस प्रकार जीव और अजीव को न जाननेवाला किस प्रकार सम्यग्दृष्टि हो सकता है?

**

1. 'सम्मदिट्ठी' में 'म' का ह्रस्व-प्रयोग छन्दानुरोध से हुआ है, सामान्यतः 'सम्मादिट्ठी' प्रयोग होता है।

**उत्थानिका**:—ज्ञान ही आत्मा का पद है–

**आदम्हि दव्वभावे, अपदे[1] मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।**
**थिरमेगमिमं भावं, उवलब्भंतं सहावेण।। 7-11-203।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आदम्हि) **आत्मा में** (दव्वभावे) **द्रव्य और भावों के मध्य में – अतत्स्वभाव से अनुभव में आने वाले भाव** (अपदे) **क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नहीं हो सकते; अत: उन्हें** (मोत्तूण) **छोड़कर** (णियदं) **निश्चित** (थिरं) **स्थिर** (तह) **तथा** (एगं) **एक** (इमं) **इस** (सहावेण) **स्वभाव से** (उवलब्भंतं) **अनुभव करने योग्य** (भावं) **भाव को** (गिण्ह) **ग्रहण कर।**

**अर्थ**:—आत्मा में द्रव्य और भावों के मध्य में (अतत्स्वभाव से अनुभव में आने वाले भाव) अपद हैं (क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नहीं ले सकते); अत: उन्हें छोड़कर नियत, स्थिर तथा एक स्वभाव से अनुभव करने योग्य इस भाव को (चैतन्यमात्र ज्ञानभाव को) ग्रहण कर।

✸✸

1. अथिरे इत्यपि पाठ:।

**उत्थानिका**:—ज्ञान से निर्वाण प्राप्त होता है–

**आभिणि-सुदोहि-मण-केवलं च तं होदि ऍक्कमेव पदं।**
**सो एसो परमट्ठो, जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि।। 7-12-204।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आभिणिसुदोहिमणकेवलं च) **मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान** (तं) **पाँचों ज्ञान** (एक्कमेव) **एक ही** (पदं होदि) **पद हैं –अर्थात् एक ज्ञान नाम से जाने जाते हैं;** (सो एसो) **सो यह** (परमट्ठो) **परमार्थ है –मोक्ष का साक्षात् उपाय है,** (जं लहिदुं) **जिसे प्राप्त करके** (णिव्वुदिं जादि) **आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है।**

**अर्थ**:—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञन, मनःपर्यर्यज्ञान और केवलज्ञान —ये पाँचों ज्ञान एक ही पद है। (एक ज्ञान नाम से जाने जाते हैं)। सो यह (ज्ञान) परमार्थ है (मोक्ष का साक्षात् उपाय है), जिसे प्राप्त करके आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—कर्मकाण्ड से ज्ञान प्राप्त नहीं होता–

**णाणगुणेहि विहीणा[1], एदं तु पदं बहू वि ण लहंते।**
**तं गिण्ह णियदमेदं[2], जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्ख।। 7-13-205।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणगुणेहि) **ज्ञानगुण से** (विहीणा) **रहित** (बहू वि) **अनेक पुरुष – अनेक कर्म करते हुए भी** (एदं पदं तु) **ज्ञानरूप इस पद को** (ण लहंति) **प्राप्त नहीं करते;** (तं) **इसलिए** (जदि) **यदि** (कम्मपरिमोक्खं) **तू कर्मों से मुक्ति** (इच्छसि) **चाहता है, तो** (एदं णियदं) **इस नियत ज्ञान को** (गिण्ह) **ग्रहण कर।**

**अर्थ**:—ज्ञानगुण से रहित अनेक पुरुष (अनेक कर्म करते हुए भी) ज्ञानस्वरूप इस पद को प्राप्त नहीं करते; इसलिए (हे भव्य !) यदि तू कर्मों से मुक्ति चाहता है, तो इस नियत पद-ज्ञान को ग्रहण कर।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञान से उत्तम सुख मिलता है–

**एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।**
**एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं।। 7-14-206।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एदम्हि) **इस ज्ञान में** (णिच्चं) **सदा ही** (रदो) **प्रीति कर,** (एदम्हि) **इस ज्ञान में ही तू** (णिच्चं) **सदा ही** (संतुट्ठो होहि) **सन्तुष्ट रह,** (एदेण) **इस ज्ञान से तू** (तित्ति होहि) **तृप्त रह –इससे** (तुह) **तुझे** (उत्तमं सोक्ख) **उत्तम सुख** (होहिदि) **होगा।**

**अर्थ**:—(हे भव्य !) तू इस ज्ञान में सदा प्रीति कर, इसी में तू सदा सन्तुष्ट रह, इससे ही तू तृप्त रह। (ज्ञान-रति, सन्तुष्टि और तृप्ति से) तुझे उत्तम सुख होगा।

✱✱

---

1. 'विहूणा' इति बालचन्दटीकायां पाठः।
2. 'सुपदमेदं' इत्यपि पाठः।

**उत्थानिका**:—ज्ञानीं अपनी आत्मा को ही स्व मानता है–

**को णाम भणेज्ज बुहो, परदव्वं मम इदं हवदि दव्वं।**
**अप्पाणमप्पणो परिगहं[1] तु णियदं वियाणंतो।। 7-15-207।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अप्पाणं) **अपनी आत्मा को ही** (णियदं) **निश्चितरूप से** (अप्पणो) **अपना** (परिगहं तु) **परिग्रह** (वियाणंतो) **जानता हुआ** (को णाम बुहो) **कौन ज्ञानी पुरुष** (भणेज्ज) **कहेगा कि** "(इदं परदव्वं) **यह परद्रव्य** (मम दव्वं) **मेरा द्रव्य** (हवदि) **है।**"

**अर्थ**:—अपनी आत्मा को ही निश्चितरूप से अपना परिग्रह जानता हुआ कौन ज्ञानी पुरुष कहेगा कि "यह पर द्रव्य मेरा द्रव्य है।"

✱✱

**उत्थानिका**:—परद्रव्य मेरा नहीं है–

**मज्झं परिग्गहो जदि, तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।**
**णादेव अहं जम्हा, तम्हा ण परिग्गहो मज्झं।। 7-6-208।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जदि) **यदि** (परिग्गहो) **परिग्रह-परद्रव्य** (मज्झं) **मेरा हो,** (तदो तु) **तब तो** (अहं) **चैतन्य स्वभाववाला मैं** (अजीवदं) **अजीवता को** (गच्छेज्ज) **प्राप्त हो जाऊँ;** (जम्हा) **चूँकि** (अहं) **मैं** (णादेव) **ज्ञाता ही हूँ,** (तम्हा) **इस कारण** (परिग्गहो) **परद्रव्यरूप परिग्रह** (मज्झं ण) **मेरा नहीं है।**

**अर्थ**:—यदि परिग्रह (परद्रव्य) मेरा हो, तब तो (चैतन्य स्वभाववाला) मैं अजीवता को प्राप्त हो जाऊँ; चूँकि मैं ज्ञाता ही हूँ, इस कारण परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा नहीं है।

✱✱

---

1. यहाँ छन्दानुरोध से 'परिगह' –ऐसा प्रयोग हुआ है। चूंकि **परि** के बाद 'यति' आ रही है। तथा उसके बाद यदि संयुक्त व्यंजन आता तो 'रि' गुरु होने से प्रथम चरण में 1 मात्रा बढ़ जाती तथा अगला चरण संयुक्त व्यंजन से प्रारंभ होता, जबकि प्राकृत में सामान्यतः संयुक्त व्यंजन पद के प्रारंभ में प्रयोग नहीं करते हैं।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी का निश्चय–

**छिज्जदु वा भिज्जदु वा, णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।**
**जम्हा तम्हा गच्छदु, तहावि ण परिग्गहो मज्झं।। 7-15-209।।**

***सान्वय अर्थ***:—(छिज्जदु वा) **चाहे छिद जाए,** (भिज्जदु वा) **चाहे भिद जाए,** (णिज्जदु वा) **चाहे कोई ले जाए,** (अहव) **अथवा** (विप्पलयं जादु) **नष्ट हो जाए,** (जम्हा तम्हा) **चाहे जिस कारण से** (गच्छदु) **चला जाए;** (तहावि) **तथापि** (परिग्गहो) **परिग्रह** (मज्झं ण) **मेरा नहीं है।**

**अर्थ**:—चाहे छिद जाए, चाहे भिद जाए, चाहे कोई ले जाए अथवा नष्ट हो जाए, चाहे जिस कारण से चला जाए; तथापि परिग्रह मेरा नहीं है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के धर्म का परिग्रह नहीं है–

**अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं।**
**अपरिग्गहो दु धम्मस्स, जाणगो तेण सो होदि।। 7-18-210।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है, वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है;** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (धम्मं) **धर्म को** (णेच्छदे) **नहीं चाहता,** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (धम्मस्स दु) **धर्म का—पुण्य का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नहीं है; किन्तु** (जाणगो) **धर्म का ज्ञायक** (होदि) **है।**

**अर्थ**:—जिसके इच्छा नहीं है, वह 'अपरिग्रही' कहा है; और ज्ञानी धर्म को – पुण्य को नहीं चाहता, इसलिए वह धर्म का परिग्रही नहीं है; (किन्तु वह) धर्म का ज्ञायक है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के अधर्म का परिग्रह नहीं है–

**अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो णाणी य णेंच्छदि अधम्मं।**
**अपरिग्गहो अधम्मस्स, जाणगो तेणं सो होदि।। 7-19-211।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है,** वह (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है;** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (अधम्मं) **अधर्म को – पाप को** (णेंच्छदि) **नहीं चाहता,** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (अधम्मस्स) **अधर्म का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नहीं है; किन्तु** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

**अर्थ**:—जिसके इच्छा नहीं है, वह 'अपरिग्रही' कहा है; और ज्ञानी अधर्म को – पाप को नहीं चाहता; इसलिए वह अधर्म का परिग्रही नहीं है, किन्तु ज्ञायक है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के भोजन का परिग्रह नहीं है–

**अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो असणं च णेंच्छदे णाणी।**
**अपरिग्गहो दु असणस्स, जाणगो तेण सो होदि।। 7-20-212।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है,** वह (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा गया है;** (च) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (असणं) **भोजन को** (णेंच्छदे) **नहीं चाहता,** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (असणस्स दु) **भोजन का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नहीं है; किन्तु** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

**अर्थ**:—जिसे इच्छा नहीं है, 'अपरिग्रही' कहा है; और ज्ञानी भोजन को नहीं चाहता, इसलिए वह भोजन का परिग्रही नहीं है; (किन्तु वह) ज्ञायक है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के पान का परिग्रह नहीं है–

**अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो पाणं च णेंच्छदे णाणी।**
**अपरिग्गहो दु पाणस्स, जाणगो तेण सो होदि।। 7-21-213।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अणिच्छो) **जिसके इच्छा नहीं है, वह** (अपरिग्गहो) **अपरिग्रही** (भणिदो) **कहा है;** (च) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (णाणं) **पान को** (णेंच्छदे) **नहीं चाहता,** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (पाणस्स दु) **पान का** (अपरिग्गहो) **परिग्रही नहीं है; किन्तु वह** (जाणगो) **ज्ञायक** (होदि) **है।**

**अर्थ**:—जिसके इच्छा नहीं है, वह 'अपरिग्रही' कहा है; और ज्ञानी पान को नहीं चाहता, इसलिए वह पान का परिग्रही नहीं है; (किन्तु वह) ज्ञायक है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी के परभावों का परिग्रह नहीं–

**एमादिए दु विविहे, सव्वे भावे य णेंच्छदे णाणी।**
**जाणगभावो णियदो, णीरालंबो दु सव्वत्थ।। 7-22-214।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एमादिए दु) **इत्यादिक** (विविहे) **नाना प्रकार के** (सव्वे भावे य) **सब भावों को** (णाणी) **ज्ञानी** (णेंच्छदे) **नहीं चाहता है;** (सव्वत्थ) **सर्वत्र** (णीरालंबो दु) **निरालम्ब वह** (णियदो जाणगभावो) **निश्चित ज्ञायकभाव ही है।**

**अर्थ**:—इत्यादिक नाना प्रकार के समस्त भावों को ज्ञानी नहीं चाहता; सर्वत्र निरालम्ब वह प्रतिनियत (टंकोत्कीर्ण) ज्ञायक भाव ही है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी को त्रिकाल के भोगों की आकांक्षा नहीं है–

**उप्पण्णोदयभोगो, वियोगबुद्धिए[1] तस्स सो णिच्चं।**
**कंखामणागदस्स य, उदयस्स ण कुव्वदे णाणी।। 7-23-215।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सो) **वह** (उप्पण्णोदयभोगो) **वर्तमान काल के उदय का – कर्मोदय का भोग** (तस्स) **ज्ञानी के** (णिच्चं) **सदा ही** (वियोगबुद्धिए) **वियोगबुद्धि से होता है;** (य) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (अणागदस्स) **आगामी काल के** (उदयस्स) **उदय की** (कंखां) **आकांक्षा** (ण कुव्वदे) **नहीं करता।**

**अर्थ**:—वह वर्तमाल काल के कर्मोदय का भोग ज्ञानी के सदा ही वियोगबुद्धि से होता है; और ज्ञानी आगामी काल के उदय की आकांक्षा नहीं करता।

(ज्ञानी तो मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता, तब वह अन्य पदार्थों की इच्छा क्यों करेगा?)

✱✱

1. कई प्रतियों में 'वियोग-बुद्धीए' पाठ है, जो अशुद्ध है। उससे छन्दोभंग होता है।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी वेद्य-वेदक भाव की आकांक्षा नहीं करता–

**जो वेददि वेदिज्जदि, समये-समये विणस्सदे उहयं।**
**तं जाणगो दु णाणी, उहयं पि ण कंखदि कयावि।। 7-24-216।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (वेददि) **अनुभव करता है** – **ऐसा वेदक भाव,** (वेदिज्जदि) **जो अनुभव किया जाता है** – **ऐसा वेद्यभाव,** (उहयं) **ये दोनों भाव अर्थपर्याय की अपेक्षा** (समये-समये) **समय-समय में** (विणस्सदे) **नष्ट हो जाते हैं** –(तं) **ऐसा उन दोनों भावों का** (जाणगो दु णाणी) **जाननेवाला ज्ञानी** (उहयं पि) **उन दोनों भावों की** (कयादि) **कदापि** (ण कंखदि) **आकांक्षा नहीं करता।**

**अर्थ**:—जो अनुभव करता है (ऐसा वेदकभाव), जो अनुभव किया जाता है (ऐसा वेद्यभाव), –ये दोनों भाव (अर्थपर्याय की अपेक्षा) समय-समय में नष्ट हो जाते हैं; –ऐसा जाननेवाला ज्ञानी उन दोनों भावों की कदापि आकांक्षा नहीं करता।

✱✱

**उत्थानिका**:—संसार, शरीर, भोग से विरक्त–

**बंधुवभोगणिमित्ते, अज्झवसाणोदयेसु णाणिस्स।**
**संसारदेहविसयेसु, णेव उप्पज्जदे रागो।। 7-25-217।।**

***सान्वय अर्थ***:—(बंधुवभोगणिमित्ते) **बन्ध और उपभोग के निमित्तभूत** (संसार-देहविसयेसु) **संसार-सम्बन्धी** (अज्झवसाणोदयेसु) **रागादि अध्यवसानों के उदय में** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (रागो) **राग** (णेव उप्पज्जदे) **उत्पन्न नहीं होता है।**

**अर्थ**:—बन्ध ओर उपभोग के निमित्तभूत संसार-सम्बन्धी और देह-सम्बन्धी रागादि अध्यवसानों के उदय में ज्ञानी के राग उत्पन्न नहीं होता है।

✱✱

**उत्थानिका:**—ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर–

**णाणी रागप्पजहो, हि सव्वदव्वेसु कम्म-मज्झगदो।**
**णो लिप्पदि रजएण[1] दु, कद्दम-मज्झे जहा कणयं।। 7-26-218।।**

**अण्णाणी पुण रत्तो, हि सव्वदव्वेसु कम्म-मज्झगदो।**
**लिप्पदि कम्मरयेण दु, कद्दम-मज्झे जहा लोहं।। 7-27-219।।**

***सान्वय अर्थ:***—(णाणी) **ज्ञानी** (सव्वदव्वेसु) **सब द्रव्यों में** (हि) **निश्चय ही** (रागप्पजहो) **राग का त्यागी होता है, वह** (कम्म-मज्झगदो) **कर्मों के मध्य पड़ा हुआ भी** (रजएण दु) **कर्मरूपी रज से** (णो लिप्पदि) **लिप्त नहीं होता है।** (जहा) **जिस प्रकार कद्दममज्झे कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ** (कणयं) **सोना कीचड़ में लिप्त नहीं होता।** (पुण) **पुन:** (अण्णाणी) **अज्ञानी जीव** (सव्वदव्वेसु) **सब परद्रव्यों में** (हि) **निश्चय ही** (रत्तो) **रागी है; अत:** (कम्म-मज्झगदो) **मन-वचन-काय के व्यापाररूप कर्मों के मध्य पड़ा हुआ** (कम्मरयेण दु) **कर्मरूपी रज से** (लिप्पदि) **लिप्त होता है।** (जहा) **जिस प्रकार** (कद्दममज्झे) **कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ** (लोहं) **लोहा कीचड़ से लिप्त होता है।**

**अर्थ:**—ज्ञानी सब द्रव्यों में निश्चय ही राग का त्यागी (वीतराग) होता है, कर्मों के मध्य पड़ा हुआ भी कर्मरूपी रज से लिप्त नहीं होता है, जिस प्रकार कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ सोना (कीचड़ में लिप्त नहीं होता)। जबकि अज्ञानी सब परद्रव्यों में निश्चय ही रागी होता है, (अत: वह) कर्मों के मध्य पड़ा हुआ कर्मरूपी रज से लिप्त होता है, जिस प्रकार कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ लोहा (कीचड़-जंग से लिप्त होता है)।

✱✱

1. 'रजएण' की जगह सामान्यत: 'रयेण' पाठ होना चाहिए था, किंतु छन्दानुरोध से 'एण' प्रत्यय का अलग प्रयोग हुआ है, पररूप नहीं किया है।

**उत्थानिका**:—शंख के दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त का समर्थन–

**भुंजंतस्स वि विविहे, सच्चित्ताचित्त मिस्सिए दव्वे।**
**संखस्स सेदभावो, ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं।। 7-28-220।।**

**तह णाणिस्स दु विविहे, सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।**
**भुंजंतस्स वि णाणं, ण सक्कमण्णाणदं णेदुं।। 7-29-221।।**

**जइया स एव संखो, सेदसहावं सयं पंजहिदूण।**
**गच्छेंज्ज किण्हभावं, तइया सुक्कत्तणं पजहे।। 7-30-222।।**

**तह णाणी वि हु जइया, णाणसहावं सयं पजहिदूण।**
**अण्णाणेण परिणदो, तइया अण्णाणदं गच्छे।। 7-31-223।।**

***सान्वय अर्थ***:—(विविहे) **अनेक प्रकार के** (सच्चित्ताचित्तमिस्सिए) **सचित्त, अचित्त और मिश्रित** (दव्वे) **द्रव्यों को** (भुंजंतस्स वि) **भोग-उपभोग करने वाले** (संखस्स) **शंख का** (सेदभावो) **श्वेत भाव** (किण्हगो कादुं) **कृष्णरूप करना** (ण वि सक्कदि) **शक्य नहीं है – कृष्ण नहीं किया जा सकता**; (तह) **उसी प्रकार** (विविहे) **अनेक प्रकार के** (सच्चित्ताचित्तमिस्सिए) **सचित्त, अचित्त और मिश्रित** (दव्वे) **द्रव्यों का** (भुंजंतस्स वि) **उपभोग करते हुए भी** (णाणिस्स दु) **ज्ञानी के** (णाणं) **ज्ञान को** (अण्णाणदं) **अज्ञानरूप** (णेदुं ण सक्कं) **नहीं किया जा सकता।** (जइया) **जब** (स एव संखो) **वही शंख** (सेदसहावं) **श्वेत स्वभाव को** (सयं पजहिदूण) **स्वयं छोड़कर** (किण्हभावं) **कृष्णभाव को** (गच्छेंज्ज) **प्राप्त होता है,** (तइया) **तभी** (सुक्कत्तणं) **शुक्लत्व को** (पजहे) **छोड़ देता है**; (तह) **उसी प्रकार** (णाणी वि) **ज्ञानी भी** (जइया हु) **जब** (णाणसहावं) **अपने ज्ञान-स्वभाव को** (सयं पजहिदूण) **स्वयं छोड़कर** (अण्णाणेण परिणदो) **अज्ञानरूप परिणमित हाता है,** (तइया) **तब** – वह (अण्णाणदं) **अज्ञान-भाव को** (गच्छे) **प्राप्त हो जाता है।**

**अर्थ**:—अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यों का उपभोग करनेवाले शंख का श्वेतभाव कृष्ण नहीं किया जा सकता है। इसीप्रकार अनेक प्रकार के सचित्त,

अचित्त और मिश्रित द्रव्यों का उपभोग करते हुए ज्ञानी के ज्ञान को अज्ञानरूप नहीं किया जा सकता।

जब वही शंख अपने श्वेत स्वभाव को स्वयं छोड़कर कृष्णभाव को प्राप्त होता है, तभी वह शुक्लत्व को छोड़ देता है। इसीप्रकार ज्ञानी भी जब अपने ज्ञानस्वभाव को स्वयं छोड़कर अज्ञानरूप परिणमित होता है, तब वह अज्ञानभाव को प्राप्त हो जाता है।

✸✸

**उत्थानिका**:—ज्ञानी निष्काम कर्म करता है–

**पुरिसो जह को वि इहं[1], वित्ति-णिमित्तं तु सेवदे रायं।**
**तो सो वि देदि राया, विविहे भोगे सुहुप्पादे।। 7-32-224।।**

**एमेव जीवपुरिसो, कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।**
**तो सो वि देदि कम्मो, विविहे भोगे सुहुप्पादे।। 7-33-225।।**

**जह पुण सोच्चिय पुरिसो, वित्ति-णिमित्तं ण सेवदे रायं।**
**तो सो ण देदि राया, विविहे भोगे सुहुप्पादे।। 7-34-226।।**

**एमेव सम्मदिट्ठी[2], विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं।**
**तो सोण देदि कम्मो, विविहे भोगे सुहुप्पादे।। 7-35-227।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जिस प्रकार** (इहं) **इस लोक में** (को वि पुरिसो) **कोई पुरुष** (वित्तिणिमित्तं तु) **आजीविका के लिए** (रायं) **राजा की** (सेवदे) **सेवा करता है,** (तो) (सो वि राया) **वह राजा भी उसे** (सुहुप्पादे) **सुख देने वाले** (विविहे) **नाना प्रकार के** (भोगे) **भोग** (देदि) **देता है।** (एमेव) **इसी प्रकार** (जीवपुरिसो) **जीवपुरुष** (सुहुणिमित्तं) **सुख के लिए** (कम्मरयं) **कर्मरज की** (सेवदे) **सेवा करता है,** (तो) **तो** (सो कम्मो वि) **वह कर्म भी** (सुहुप्पादे) **सुख देनेवाले** (विविहे) **नाना प्रकार के** (भोगे) **भोग** (देदि) **देता है।** (पुण) **पुनः** (जह) **जैसे** (सोच्चिय पुरिसो) **वही पुरुष** (वित्तिणिमित्तं) **आजीविका के लिए** (रायं) **राजा की** (ण सेवदे) **सेवा नहीं करता है,** (तो) **तो** (सो राया) **वह राजा** (सुहुप्पादे) **सुख देनेवाले** (विविहे) **नाना प्रकार के** (भोगे) **भोग** (ण देदि) **नहीं देता है।** (एमेव) **इसी प्रकार** (सम्मदिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (विसयत्थं) **विषयों के लिए** (कम्मरयं) **कर्मराज का** (ण सेवदे) **सेवन नहीं करता,** (तो) **तो** (सो कम्मो) **वह कर्म उसे** (सुहुप्पादे) **सुख देने वाले** (विविह) **नाना प्रकार के** (भोगे) **भोग** (ण देदि) **नहीं देता।**

---

1. यहाँ छन्दानुरोध से सानुनासिक पाठ प्रयुक्त हुआ है।
2. सम्मदिट्ठी में 'म' ह्रस्व छन्दानुरोध से है।

**अर्थ**:—जिस प्रकार इस लोक में कोई पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा करता है, तो वह राजा भी उसे सुख देनेवाले नाना प्रकार के भोग देता है; इसी प्रकार जो जीव/पुरुष सुख के लिए कर्मरज की सेवा करता है, तो वह कर्म भी उसे सुख देनेवाले नाना प्रकार के भोग देता है।

पुन: जैसे वही पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा नहीं करता, तो वह राजा उसे सुख देनेवाले नाना प्रकार के भोग नहीं देता है। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि विषयों के लिए कर्मरज का सेवन नहीं करता, तो वह कर्म उसे सुख देनेवाले नाना प्रकार के भोग नहीं देता।

**

**उत्थानिका**:—सम्यग्दृष्टि सप्तभय मुक्त होता है–

**सम्मादिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।**
**सत्तभय-विप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका।। 7-36-228।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सम्मादिट्ठी जीवा) **सम्यग्दृष्टि जीव** (णिस्संका) **नि:शंक** (होंति) **होते हैं,** (तेण) **इसलिए** (णिब्भया) **निर्भय होते हैं;** (जम्हा) **और चूँकि** वे (सत्तभय-विप्पमुक्का) **सप्त-भयों से रहित होते हैं,** (तम्हा) **इसलिए वे** (दु) **निश्चय ही** (णिस्संका) **नि:शंक होते हैं।**

**अर्थ**:—सम्यग्दृष्टि जीव नि:शंक होते हैं, इसलिये वे निर्भय होते हैं; और चूँकि सप्तभय से रहित होते हैं, इसलिए वे निश्चय ही नि:शंक होते हैं।

**

**उत्थानिका**:—नि:शंक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप–

**जो चत्तारि वि पाये, छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे।**
**सो णिस्संको चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-37-229।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (कम्मबंध मोहकरे) **कर्म-बन्ध का भ्रम उत्पन्न करनेवाले** (ते चत्तारि वि) **उन चारों ही** (पाये) **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय ओर योगरूप पायों को** (छिंददि) **काटता है,** (सो) **उसे** (णिस्संको सम्मादिट्ठी) **नि:शंक सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा कर्म-बन्ध का भ्रम उत्पन्न करनेवाले उन चारों ही (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरूप चारों ही) पायों को काटता है, उसे 'नि:शंक सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—नि:कांक्षित सम्यग्दृष्टि–

**जो दु ण करेदि कंखं, कम्मफले तह य सव्वधम्मेसु।**
**सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-38-230।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो दु चेदा) **जो आत्मा** (कम्मफले) **कर्मों के फल की** (तह य) **तथा** (सव्वधम्मेसु) **समस्त धर्मों की** (कंखं) **कांक्षा – इच्छा** (ण करेदि) **नहीं करता,** (सो) **उसे** (णिक्कंखो) **निष्कांक्ष** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा कर्मों के फल की तथा समस्त धर्मों की कांक्षा (इच्छा) नहीं करता, उसे 'निष्कांक्षित सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण–

**जो ण करेदि दुगुंछं[1], चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।**
**सो खुल णिव्विदिगिंछो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-39-231।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (सव्वेसिमेव) **सभी** (धम्माणं) **धर्मों–वस्तु-स्वभावों के प्रति** (दुगुंछं) **जुगुप्सा-ग्लानि** (ण करेदि) **नहीं करता है,** (सो) **उसको** (खलु) **वस्तुत:** (णिव्विदिगिंछो) **निर्विचिकित्सक** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा सभी धर्मों (वस्तु-स्वभावों) के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता है, उसे वस्तुत: 'निर्विचिकित्सक सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

✱✱

**उत्थानिका**:—अमूढ़दृष्टि का कथन–

**जो हवदि असम्मूढो, चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।**
**सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-40-232।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (सव्वभावेसु) **समस्त भावों में** (असम्मूढो) **अमूढ़ एवं** (सद्दिट्ठि) **यथार्थ दृष्टिवाला** (हवदि) **होता है,** (सो) **उसे** (खलु) **वास्तव में** (अमूढदिट्ठी) **अमूढदृष्टि** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा समस्त भावों में अमूढ़ एवं यथार्थ दृष्टिवाला होता है, उसे वस्तुत: 'अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

✱✱

---

1. 'जुगुप्सं' इत्यपि पाठ:।

**उत्थानिका**:—उपगूहन का स्वरूप–

**सो सिद्धभत्तिजुत्तो, उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।**
**सो उवगूहणगारी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-41-233।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो आत्मा** (सिद्धभत्तिजुत्तो) **शुद्धात्मभावनारूप सिद्धभक्ति से युक्त है,** (दु) **और** (सव्वधम्माणं) **रागादि विभाव-धर्मों का** (उवगूहणगो) **उपगूहक — नाश करनेवाला है;** (सो) **उसे** (उवगूहणगारी) **उपगूहनकारी** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा (शुद्धात्म भावनारूप) सिद्धभक्ति से युक्त है और समस्त रागादि विभाव-धर्मों का उपगूहक (नाश करनेवाला) है, उसे 'उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—स्थितिकरण अंग–

**उम्मग्गं गच्छंतं, सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।**
**सो ठिदिकरणाजुत्तो[1], सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-42-234।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (उम्मग्गं गच्छंतं) **उन्मार्ग में जाते हुए** (सगं पि) **स्वयं अपनी आत्मा को भी** (मग्गे) **शिवमार्ग में** (ठवेदि) **स्थापित करता है,** (सो) **उसे** (णिदिकरणाजुत्तो) **स्थितिकरणयुक्त** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा उनमार्ग में जाते हुए स्वयं अपनी आत्मा को भी शिवमार्ग में स्थापित करता है, उसे 'स्थितिकरण-युक्त सम्यग्दृष्टि' मननपूर्वक जानना चाहिये।

**

1. यहाँ छन्दानुरोध से **णा** दीर्घ प्रयोग किया गया है। सामान्यतः ह्रस्व होता।

**उत्थानिका**:—वात्सल्य अंग की परिभाषा–

**जो कुणदि वच्छलत्तं, तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्मि।**
**सो वच्छलभावजुदो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-43-235।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो आत्मा** (मोक्खमग्गम्मि) **मोक्षमार्ग में** (तिण्हं साहूण) **तीन – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीन साधनों अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओं – आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के प्रति** (वच्छलत्तं) **वात्सल्य** (कुणदि) **करता है,** (सो) **उसे** (वच्छलभावजुदो) **वात्सल्यभाव से युक्त** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा मोक्षमार्ग में तीन – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन साधनों अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओं – आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के प्रति वात्सल्य करता है, उसे वात्सल्यभाव से युक्त सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मज्ञान-विहारी जिनज्ञान-प्रभावी है–

**विज्जारहमारूढो, मणोरहपहेसु भमदि जो चेदा।**
**सो जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।। 7-44-236।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (विज्जारहमारूढो) **विद्यारूपी रथ में आरूढ़ हुआ** (मणोरहपहेसु) **मनोरथ-मार्ग में** (भमदि) **भ्रमण करता है,** (सो) **उसे** (जिणणाणपहावी) **जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करनेवाला** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—जो आत्मा विद्यारूपी रथ में आरुढ़ हुआ मनोरथ-मार्ग में भ्रमण करता है, उसे जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि (मननपूर्वक) जानना चाहिये।

**।। इदि सत्तमो णिज्जराधियारो समत्तो।।**

# अट्ठमो बंधाधियारो

**उत्थानिका**:—रागादि से कर्म-बन्ध होता है–

**जह णाम को वि पुरिसो, णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि।**
**ठाणम्मि ठाइदूण य, करेदि सत्थेहि वायामं।। 8-1-237।।**

**छिंददि भिंददि य तहा, ताली-तल-कयलि-वंसपिंडीओ।**
**सच्चित्ताचित्ताणं, करेदि दव्वाणमुवघादं।। 8-2-238।।**

**उवघादं कुव्वंतस्स, तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।**
**णिच्छयदो चिंतेज्ज हु, किं पच्चयगो दु रयबंधो।। 8-3-239।।**

**जो सो दु णेह भावो, तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।**
**णिच्छयदो विण्णेयं, ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं।। 8-4-240।।**

**एवं मिच्छादिट्ठी, वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु[1]।**
**रायादी उवओगे, कुव्वंतो लिप्पदि रयेण[2]।। 8-5-241।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह णाम) **जिस प्रकार** (को वि) **कोई** (पुरिसो) **पुरुष** (णेहब्भत्तो दु) **तेल लगाकर** (य) **और** (रेणुबहुलम्मि) **बहुत धूलवाले** (ठाणम्मि) **स्थान में** (ठाइदूण) **रहकर** (सत्थेहिं) **शस्त्रों से** (वायामं) **व्यायाम** (करेदि) **करता है,** (तहा) **तथा** (ताली-तल-कयलि-वंसपिंडीओ) **ताड़, तमाल, केला और बाँस के समूह को** (छिंदति) **छेदता है** (य भिंददि) **और भेदता है; तथा** (सच्चित्ताचित्ताणं) **सचित्त और अचित्त** (दव्वाणं) **द्रव्यों का** (उवघादं) **उपघात** (करेदि) **करता है।** (नानाविहेहि करणेहिं) **नाना प्रकार के करणों के द्वारा (उवघादं) उपघात** (कुव्वंतस्स तस्स) **करते हुए उस पुरुष के** (रयबंधो दु) **धूलि का बंध** (हु) **वास्तव में** (किं पच्चयगो) **किस**

---

1. 'चिट्ठासु' के स्थान पर 'चेट्ठासु' प्रयोग अधिक समीचीन है।
2. इसमें एक मात्रा कम हो रही है। 'रयेणं' पाठ होना चाहिये था।

**कारण से होता है?** – (णिच्छयदो) **निश्चय से यह** (चिंतेज्ज) **विचार करो।** (तम्हि णरे) **उस मनुष्य के शरीर पर** (सो जो दु णेहभावो) **वह जो तेल की चिकनाहट है,** (तेण) **उसके कारण** (तस्स) **उस मनुष्य के** (रयबंधो) **धूलि का बन्ध होता है,** (सेसाहिं) **शेष** (कायचेट्ठाहिं) **काय की चेष्टाओं से** (ण) **रज-बन्ध नहीं होता** –यह (णिच्छयदो) **निश्चय से** (विण्णेयं) **जानना चाहिये।**

(एवं) **इसी प्रकार** (बहुविहासु) **नाना प्रकार की** (चिट्ठासु) **चेष्टाओं में** (वट्टंतो) **प्रवर्तमान** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (उवओगे) **उपयोग में** (रायादी) **रागादि भावों को** (कुव्वंतो) **करता हुआ** (रयेण) **कर्मरज से** (लिप्पदि) **लिप्त होता है।**

**अर्थ:**—जिस प्रकार कोई पुरुष शरीर मे तेल लगाकर और बहुत धूलवाले स्थान में रहकर शस्त्रों से व्यायाम करता है तथा ताड़, तमाल, कदली और बांस के समूह को छेदता और भेदता है; तथा सचित्त और अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। नाना प्रकार के करणों के द्वारा उपघात करते हुए उसके धूलि का बन्ध किस कारण से होता है? –यह निश्चय से विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाहट है, उसके कारण उस मनुष्य के धूलि-बन्ध होता है, काय की शेष चेष्टाओं से नहीं होता —यह निश्चय से जानना चाहिये।

इसीप्रकार नानाप्रकार की चेष्टाओं में प्रवर्तमान मिथ्यादृष्टि उपयोग में रागादिभावों को करता हुआ कर्मरज से लिप्त होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—रागादि के अभाव में कर्म-बन्ध का अभाव–

**जह पुण सो चेव णरो, णेहे सव्वम्हि अवणिदे संते।**
**रेणु-बहुलम्मि ठाणे, करेदि सत्थेहि वायामं।। 8-6-242।।**

**छिंददि भिंददि य तहा, ताली-तल-कयलि-वंसपिंडीओ।**
**सच्चित्ताचित्ताणं, करेदि दव्वाणमुवघादं।। 8-7-243।।**

**उवघादं कुव्वंतस्स, तस्स णाणाविहेहि करणेहिं।**
**णिच्छयदो चिंतेज्ज दु, किं पच्चयगो ण रयबंधो।। 8-8-244।।**

**जो सो दु णेहभावो, तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।**
**णिच्छयदो विण्णेयं, ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं।। 8-9-245।।**

**एवं सम्मादिट्ठी, वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु।**
**अकरंतो उवओगे, रागादी ण लिप्पदि रयेण।। 8-10-246।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जिस प्रकार** (पुण) **पुनः** (सो चेव) **वही** (णरो) **मनुष्य** (सव्वम्हि णेहे) **समस्त तेल के** (अवणिदे संते) **दूर किये जाने पर** (रेणुबहुलम्मि) **बहुत धूलवाले** (ठाणे) **स्थान में** (सत्थेहिं) **शस्त्रों के द्वारा** (वायामं) **व्यायाम** (करेदि) **करता है**; (तहा य) **और** (तालीतलकयलिवंसपिंडीओ) **ताड़, तमाल, कदली और बांस के समूह को** (छिंददि) **छेदता है** (य भिंददि) **और भेदता है**, (सच्चित्ताचित्ताणं) **सचित्त और अचित्त** (दव्वाणं) **द्रव्यों का** (उवघादं) **उपघात** (करेदि) **करता है**। (णाणाविहेहि) **नाना प्रकार के** (करणेहिं) **करणों से** (उवघादं) **उपघात** (कुव्वंतस्स) **करते हुए** (तस्स) **उसके** (दु) **वास्तव में** (किं पच्चयगो) **किस कारण से** (रयबंधो ण) **धूलि का बन्ध नहीं होता?** –(णिच्छयदो) **निश्चय से यह** (चिंतेज्ज) **विचार करो**।

(तम्हि णरे) **उस मनुष्य के शरीर पर** (जो सो दु) **वह जो** (णेह भावो) **चिकनाई थी**, (तेण) **उसके कारण** (तस्स) **उसके** (रयबंधो) **धूलि का बन्ध होता था**, (सेसाहिं) **शेष** (कायचेट्ठाहिं) **काय की चेष्टाओं से** (ण) **धूलि-बन्ध नहीं होता**– (णिच्छयदो) **यह निश्चयपूर्वक** (विण्णेयं) **जानना चाहिये**।

(एवं) **इसी प्रकार** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि जीव** (बहुविहेसु) **नाना प्रकार के** (जोगेसु) **योगों में** (वट्टंतो) **वर्तन - प्रवृत्ति करते हुए** (उवओगे) **उपयोग में** (रागादी) **रागादि भावों को** (अकरंतो) **नहीं करता, इसलिए वह** (रयेण) **कर्म-रज से** (ण लिप्पदि) **लिप्त नहीं होता है।**

**अर्थ:**—जिस प्रकार पुनः वही मनुष्य समस्त तेल के दूर किये जाने पर बहुत धूलवाले स्थान में शस्त्रों से व्यायाम करता है; तथा ताड़, तमाल, कदली और बाँस के समूह को छेदता और भेदता है, सचित्त ओर अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। नाना प्रकार के कारणों से उपघात करते हुए उसके किस कारण से धूलि का बन्ध नहीं होता? —निश्चय से यह विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाई थी, उसके कारण उसके धूलि का बन्ध होता था, काय की शेष चेष्टाओं से धूलि-बन्ध नहीं होता, —यह निश्चयपूर्वक जानो।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नानाप्रकार के योगों में वर्तन करते हुए उपयोग में रागादि भावों को नहीं करता; इसलिए वह कर्म-रज से लिप्त नहीं होता।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी और अज्ञानी की पहचान–

**जो मण्णदि हिंसामि य, हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहिं।**
**सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।। 8-11-247।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो पुरुष** (मण्णदि) **मानता है कि** (हिंसामि) **मैं परजीव को मारता हूँ** (य) **और** (परेहि) **दूसरे** (सत्तेहिं) **जीवों के द्वारा** (हिंसिज्जामि) **मैं मारा जाता हूँ,** (सो) **वह पुरुष** (मूढो) **मोही है और** (अण्णाणी) **अज्ञानी है;** (दु) **किन्तु** (एत्तो) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत अर्थात् जो ऐसा नहीं मानता है, वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

**अर्थ**:—जो पुरुष मानता है कि 'मैं परजीव को मारता हूँ' अथवा 'दूसरे जीवों के द्वारा मैं मारा जाता हूँ', वह पुरुष मोही है और अज्ञानी है; और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नहीं मानता), वह ज्ञानी है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आयुकर्म के क्षय से ही मरण होता है–

**आउक्खयेण मरणं, जीवाणं जिणवरेहि पण्णत्तं।**
**आउं च ण हरसि तुमं, किह ते मरणं कदं तेसिं।। 8-12-248।।**

**आउक्खयेण मरणं, जीवाणं जिणवरेहि पण्णत्तं।**
**आउं ण हरंति तुहं, किह ते मरणं कदं तेहिं।। 8-13-249।।**

***सान्वय अर्थ***:—"(जीवाणं) **जीवों का** (मरणं) **मरण** (आउक्खयेण) **आयुकर्म के क्षय से होता है**" –(जिणवरेहि) **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने** (पण्णत्तं) **बताया है,** (च) **और** (तुमं) **तूँ** (आउं) **उनके आयुकर्म को** (ण हरसि) **हरता नहीं है; तब** (ते) **तूने** (तेसिं) **उन परजीवों का** (मरणं) **मरण** (किह) **किस प्रकार** (कदं) **किया?** '(जीवाणं) **जीवों का** (मरणं) **मरण** (आउक्खयेण) **आयुकर्म के क्षय से होता है**' –(जिणवरेहि) **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने** (पण्णत्तं) **बताया है,** – (पर जीव) (तुहं) **तेरा** (आउं) **आयुकर्म** (ण हरंति) **हरते नहीं;** – (पर जीव) (तुहं) **तेरा** (आउं) **आयुकर्म** (ण हरंति) **हरते नहीं; तब** (तेहिं) **उन्होंने** (ते मरणं) **तेरा मरण** (किह) **किस प्रकार** (कदं) **किया?**

**अर्थ**:—"जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है", –ऐसा जिनेन्द्रदेव ने बताया है, और तू उनके आयुकर्म को हरता नहीं है, तब तूने उन परजीवों का मरण किस प्रकार किया?

"जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है", –ऐसा जिनेन्द्रदेव ने बताया है; परजीव तेरा आयुकर्म हरते नहीं हैं, तब उन्होंने तेरा मरण किस प्रकार किया?

✱✱

**उत्थानिका**:—अज्ञानी और ज्ञानी–

**जो मण्णदि जीवेमि य, जीविस्सामि य परेहि सत्तेहिं।**
**सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।। 8-14-250।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो पुरुष** (मण्णदि) **ऐसा मानता है कि** (जीवेमि य) **मैं परजीवों को जिलाता हूँ,** (य) **और** (परेहि सत्तेहिं) **परजीव** (जीविस्सामि) **मुझे जिलाते हैं;** (सो) **वह पुरुष** (मूढो) **मोही है,** (अण्णाणी) **और अज्ञानी है।** (दु) **और जो** (एत्तो) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत है – जो ऐसा नहीं मानता है, वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

**अर्थ**:—जो पुरुष ऐसा मानता है कि 'मैं परजीवों को जिलाता हूँ और परजीव मुझे जिलाते हैं'; वह पुरुष मोही है, और अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नहीं मानता), वह ज्ञानी है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आयुकर्म के उदय से ही जीवन है–

**आउउदयेण[1] जीवदि, जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।**
**आउं च ण देसि तुमं, कहं तए जीविदं कदं तेसिं।। 8-15-251।।[2]**

**आउउदयेण[3] जीवदि, जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।**
**आउं ण देंति तुहं, कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं।। 8-16-252।।[4]**

***सान्वय अर्थ***:—"(जीवो) **जीव** (आउउदयेण) **आयुकर्म के उदय से** (जीवदि) **जीता है**" –(एवं) **इस प्रकार** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (भणंति) **कहते हैं।** (तुमं) **तू** (आउं च) **अन्य को आयुकर्म** (ण देसि) **नहीं देता है, तब** (तए) **तूने** (तेसिं) **उन पर जीवों को** (कहं) **किस प्रकार** (जीविदं) **जीवित** (कदं) **किया?**

"(जीवो) **जीव** (आउउदयेण) **आयुकर्म के उदय से** (जीवदि) **जीता है**" – (एवं) **इसप्रकार** (सव्वण्हू) **सर्वज्ञदेव** (भणंति) **कहते हैं। परजीव** (तुहं) **तुझे** (आउं) **आयुकर्म** (ण देंति) **देते नहीं, तब** (तेहिं) **उन परजीवों ने** (ते) **तुझे** (जीविदं) **जीवित** (कहं णु) **किस प्रकार** (कदं) **किया?**

**अर्थ**:—"जीव आयुकर्म के उदय से जीता है", – ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं। तू अन्य जीवों को आयुकर्म नहीं देता, तब तूने उन परजीवों को किस प्रकार जीवित किया?

"जीव आयुकर्म के उदय से जीता है", –ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं। परजीव तुझे आयुकर्म देते नहीं, तब उन परजीवों ने तुझे जीवित किस प्रकार किया?

✱✱

---

1-3. 'आऊदयेण' – ऐसा संधिपरक रूप होना चाहिए, इससे छंदोभंग भी नहीं होगा, तथा उच्चारण-सौकर्य भी रहेगा।

2-4. ये छंद विशेष हैं, सामान्यतः 12-18 का क्रम 12-15 चल रहा है।

**उत्थानिका**:—अज्ञानी और ज्ञानी का अन्तर–

**जो अप्पणा दु मण्णदि, दुक्खिद-सुहिदे करमि सत्ते त्ति।**
**सो मूढो अण्णाणी, णाणी एॅत्तो दु विवरीदो।। 8-17-253।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (त्ति मण्णदि) **यह मानता है कि "मैं** (अप्पणा दु) **अपने द्वारा – अपने सम्बन्ध से ही** (सत्ते) **परजीवों को** (दुक्खिदसुहिदे) **दुःखी और सुखी** (करेमि) **करता हूँ;"** (सो) **वह** (मूढो) **मोही और** (अण्णाणी) **अज्ञानी है; तथा जो** (एत्तो दु) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत मानता है, वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

**अर्थ**:—जो ऐसा मानता है कि 'मैं अपने द्वारा (अपने सम्बन्ध से ही) परजीवों को दुखी और सुखी करता हूँ;' वह मोही और अज्ञानी है। जो इससे विपरीत मानता है, वह ज्ञानी है।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीव कर्म के उदय से दु:खी-सुखी होते हैं–

**कम्मोदयेण जीवा, दुक्खिद-सुहिदा हवंति जदि सव्वे।**
**कम्मं च ण देसि तुमं, दुक्खिद-सुहिदा किह कदा ते।। 8-18-254।।**

**कम्मोदयेण जीवा, दुक्खिद-सुहिदा हवंति जदि सव्वे।**
**कम्मं च ण दिंति तुमं, कदोसि किह दुक्खिदो तेहिं।। 8-19-255।।**

**कम्मोदयेण जीवा, दुक्खिद-सुहिदा हवंति जदि सव्वे।**
**कम्मं च ण दिंति तुमं, किह तं सुहिदो कदो तेहिं।। 8-20-256।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जदि) **यदि** (सव्वेजीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिद-सुहिदा) **दु:खी और सुखी** (हवंति) **होते हैं,** (च) **और** (तुमं) **तूं उन्हें** (कम्मं) **कर्म तो** (ण देसि) **देता नहीं है; तब** (ते) **वे जीव तूंने** (दुक्खिद-सुहिदा) **दु:खी और सुखी** (किह) **किस प्रकार** (कदा) **किये?**

(जदि) **यदि** (सव्वे जीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिद-सुहिदा) **दु:खी और सुखी** (हवंति) **होते हैं** (च) **और** वे (तुमं) **तुझे** (कम्मं) **कर्म** (ण दिंति) **देते नहीं; तब तुझे** (तेहिं) **उन जीवों ने** (किह) **किस प्रकार** (दुक्खिदो) **दु:खी** (कदोसि) **किया?**

(जदि) **यदि** (सव्वे जीवा) **सभी जीव** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (दुक्खिद-सुहिदा) **दु:खी और सुखी** (हवंति) **होते हैं** (च) **और – वे जीव** (तुमं) **तुझे** (कम्मं) **कर्म** (ण दिंति) **नहीं देते – फिर** (तेहिं) **उन्होंने** (तं) **तुझे** (सुहिदो) **सुखी** (किह) **किस प्रकार** (कदो) **किया?**

***अर्थ***:—यदि कर्म के उदय से सब जीव दु:खी और सुखी होते हैं, और तू उन्हें कर्म तो देता नहीं है; तब वे जीव तूने दु:खी और सुखी किस प्रकार किये?

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दु:खी और सुखी होते हैं, और वे तुझे कर्म देते नहीं; तब तुझे उन जीवों ने किस प्रकार दु:खी किया?

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दु:खी और सुखी होते हैं, और वे जीव तुझे कर्म तो देते नहीं है; तब उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया।

**

उत्थानिका:—मरण और दु:ख कर्मोदय से होता है–

**मो मरदि जो य दुहिदो, जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।**
**तम्हा दु मारिदो दे, दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।। 8-21-257।।**

**जो ण मरदि ण य दुहिदो, सो वि य कम्मोदयेण खलु[1] जीवो।**
**तम्हा ण मारिदो णो, दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।। 8-22-258।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जो) **जो** (मरदि) **मरता है,** (य) **और** (जो) **जो** (दुहिदो) **दु:खी होता है,** (सो सव्वो) **सब** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से** (जायदि) **होता है;** (तम्हा दु) **इसलिए** "(मारिदो) **मैंने अमुक को मार दिया"** (च दुहाविदो) **और "मैंने अमुक को दु:खी किया–** "(इदि) **ऐसा** (दे) **तेरा अभिप्राय** (ण हु मिच्छा) **क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है?**

(जो) **जो** (ण मरदि) **मरता नहीं,** (य) **और** (ण दुहिदो) **जो दु:खी नहीं होता,** (सो वि य जीवो) **वह जीव भी** (खलु) **वास्तव में** (कम्मोदयेण) **कर्म के उदय से ही होता है;** (तम्हा) **इसलिए** "(ण मारिदो) **इसे मैंने नहीं मारा"** (च) **और** "(णो दुहाविदो) **मैंने इसे दु:खी नहीं किया"** – (इदि ण हु मिच्छा) **ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है?**

***अर्थ:***—जो मरता है और जो दु:खी होता है, वह सब कर्म के उदय से होता है; 'इसलिए मैंने अमुक को मार दिया' और 'मैंने अमुक को दु:खी किया' – ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है?

जो न मरता है और न जो दु:खी होता है, वह जीव भी वास्तव में कर्म के उदय से ही होता है; इसलिए 'इसे मैंने नहीं मारा' और 'इसे मैंने दु:खी नहीं किया' —ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है?

**

---

1. 'चेव खलु' इत्यपि पाठान्तरम्। 'चेव' पाठ 'खलु' के साथ असंगत है, इससे छंदोभंग भी होता है।

**उत्थानिका**:—मूढ़बुद्धि बन्ध का कारण है–

**एसा दु जा मदी दे, दुक्खिद-सुहिदे करेमि सत्ते त्ति।**
**एसा दे मूढमदी, सुहासुहं बंधदे कम्मं।। 8-23-259।।**

***सान्वय अर्थ***:—(दे) **तेरी** (एसा दु जा) **यह जो** (मदी) **बुद्धि है कि "मैं** (सत्ते) **जीवों को** (दुक्खिदसुहिदे) **दुःखी-सुखी** (करेमित्ति) **करता हूँ"** – (एसा दे) **यह तेरी** (मूढमदी) **मूढ़बुद्धि ही** (सुहासुहं) **शुभ और अशुभ** (कम्मं) **कर्मों को** (बंधदे) **बाँधती है।**

**अर्थ**:—तेरी यह जो बुद्धि है कि "मैं जीवों को दुःखी-सुखी करता हूँ", —यह तेरी मूढ़बुद्धि ही शुभाशुभ कर्मों को बाँधती है।

✱✱

**उत्थानिका**:—मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है–

**दुक्खिद-सुहिदे सत्ते, करेमि जं एवमज्झवसिदं ते।**
**तं पावबंधगं वा, पुण्णस्स व बंधगं होदि।। 8-24-260।।**

**मारेमि जीववेमि य, सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते।**
**तं पावबंधगं वा, पुण्णस्स व बंधगं होदि।। 8-25-261।।**

***सान्वय अर्थ***:—**"मैं** (सत्ते) **जीवों को** (दुक्खिदसुहिदे) **दु:खी और सुखी** (करेमि) **करता हूँ"**, (जं एवं) **जो इस प्रकार का** (ते) **तेरा** (अज्झवसिदं) **रागादि अध्यवसान है;** (तं) **वह अध्यवसान** (पाव बंधगं वा) **पाप का बंध करनेवाला** (पुण्णस्स व बंधगं) **अथवा पुण्य का बन्ध करनेवाला** (होदि) **होता है।**

**"मैं** (सत्ते) **जीवों को** (मारेमि) **मारता हूँ** (य) **और** (जीववेमि) **जिलाता हूँ"**, – (जं एवं) **जो इस प्रकार का** (ते) **तेरा** (अज्झवसिदं) **रागादि अध्यवसान है,** (तं) **वह अध्यवसान** (पावबंधगं) **पाप का बन्ध करनेवाला** (पुण्णस्स व बंधगं) **अथवा पुण्य का बन्ध करनेवाला** (होदि) **होता है।**

**अर्थ**:—"मैं जीवों को दु:खी और सुखी करता हूँ" —इसप्रकार का जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करनेवाला अथवा पुण्य का बन्ध करनेवाला है।

"मैं जीवों को मारता हूँ, और जिलाता हूँ" —इसप्रकार को जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करनेवाला अथवा पुण्य का बन्ध करनेवाला है।

✱✱

**उत्थानिका**:—निश्चयनय से बन्ध का कारण–

**अज्झवसिदेण बंधो, सत्ते मारेहि मा व मारेहि।**
**एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स।। 8-26-262।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सत्ते) **जीवों को** (मारेहि) **मारो** (व) **अथवा** (मा मारेहि) **न मारो,** (बंधो) **कर्म-बन्ध** (अज्झवसिदेण) **अध्यवसान से होता है** – (एसो) **यह** (णिच्छयणयस्स) **निश्चयनय से** (जीवाणं) **जीवों के** (बंधसमासो) **बन्ध का संक्षेप है।**

**अर्थ**:—जीवों को मारो अथवा न मारो, कर्म-बन्ध 'अध्यवसान' से होता है –यह निश्चयनय से जीवों के बन्ध का संक्षेप है।

**

**उत्थानिका**:—अध्यवसान से पाप, पुण्य का बन्ध–

**एवमलिये अदत्ते, अबंभचेरे परिग्गहे चेव।**
**कीरदि अज्झवसाणं, जं तेण दु बज्झदे पावं।। 8-27-263।।**

**तह वि य सच्चे दत्ते, बम्हे अपरिग्गहत्तणे चेव।**
**कीरदि अज्झवसाणं, जं तेण दु बज्झदे पुण्णं।। 8-28-264।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं) **इसीप्रकार – हिंसा के अध्यवसान के समान** (अलिये) **असत्य में,** (अदत्ते) **चोरी में,** (अबंभचेरे) **अब्रह्मचर्य में,** (चेव) **और** (परिग्गहे) **परिग्रह में** (जं) **जो** (अज्झवसाणं) **अध्यवसान** (कीरदि) **किया जाता है;** (तेण दु) **उससे** (पावं) **पाप का** (बज्झदे) **बन्ध होता है।**

(तह वि य) **और इसी प्रकार** (सच्चे) **सत्य में,** (दत्ते) **अचौर्य में,** (बम्हे) **ब्रह्मचर्य में,** (चेव) **और** (अपरिग्गहत्तणे) **अपरिग्रह में** (जं) **जो** (अज्झवसाणं) **अध्यवसान** (कीरदि) **किया जाता है;** (तेण दु) **उससे** (पुण्णं) **पुण्य का** (बज्झदे) **बन्ध होता है।**

**अर्थ**:—इसीप्रकार (हिंसा के अध्यवसान के समान) असत्य में, चोरी में, अब्रह्मचर्य में और परिग्रह में जो अध्यवसान किया जाता है; उससे पाप का बंध होता है।

और इसी प्रकार सत्य में, अचौर्य में, ब्रह्मचर्य में और अपरिग्रह में जो अध्यवसान किया जाता है; उससे पुण्य का बन्ध होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—बन्ध वस्तु से नहीं होता–

**वत्थुं पडुच्च तं पुण, अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।**
**ण हि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधो त्ति।। 8-29-265।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पुण) **पुनः** (वत्थुं पडुच्च) **चेतनाचेतन बाह्य वस्तु का आलम्बन लेकर** (जीवाणं तु) **जीवों के** (तं अज्झवसाणं) **वह रागादि अध्यवसान** (होदि) **होता है;** (दु) **वास्तव में** (वत्थुदो) **वस्तु से** (ण हि बंधो) **बन्ध नहीं होता,** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान से ही** (बंधो त्ति) **बन्ध होता है।**

**अर्थ**:—पुनः (चेतनाचेतन बाह्य) वस्तु का आलम्बन लेकर जीवों के वह रागादि अध्यवसान होता है। वास्तव में वस्तु से बन्ध नहीं होता, अध्यवसान से ही बन्ध होता है।

**

**उत्थानिका**:—मोह-बुद्धि निरर्थक है–

**दुक्खिद-सुहिदे जीवे, करेमि बंधेमि तह विमोचेमि।**
**जा एसा मूढमदी, णिरत्थया सा हु दे मिच्छा।। 8-30-266।।**

***सान्वय अर्थ***:—**"मैं** (जीवे) **जीवों को** (दुक्खिद-सुहिदे) **दुःखी-सुखी** (करेमि) **करता हूँ,** (बंधेमि) **बँधवाता हूँ,** (तह) **तथा** (विमोचेमि) **छुड़ाता हूँ"** – (दे) **तेरी** (जा एसा) **जो ऐसी** (मूढमदी) **मूढ़बुद्धि है,** (सा) **वह** (णिरत्थया) **निरर्थक है;** अतः (दु) **वास्तव में वह** (मिच्छा) **मिथ्या है।**

**अर्थ**:—मैं जीवों को दुःखी-सुखी करता हूँ, बँधवाता हूँ, छुड़ाता हूँ; –तेरी जो ऐसी मूढ़बुद्धि है, वह निरर्थक है; अतः वास्तव में वह मिथ्या है।

**

**उत्थानिका**:—पर-कर्त्तृत्व का अहंकार निरर्थक है–

**अज्झवसाण-णिमित्तं, जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।**
**मुच्चंति मोक्खमग्गे, ठिदा य ते किं करोसि तुमं।। 8-31-267।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जदि हि) **यदि वास्तव में** (अज्झवसाणणिमित्तं) **अध्यवसान के निमित्त से** (जीवा) **जीव** (कम्मणा) **कर्मों से** (बज्झंति) **बँधते हैं** (य) **और** (मोक्खमग्गे) **मोक्षमार्ग में** (ठिदा) **स्थित** (ते) वे (मुच्चंति) **कर्मों से मुक्त होते हैं – तब** (तुमं) **तू** (किं करोसि) **क्या करता है?**

**अर्थ**:—यदि वास्तव में अध्यवसान के निमित्त से जीव कर्मों से बंधते हैं और मोक्षमार्ग में स्थित वे कर्मों से मुक्त होते हैं, तब तू क्या करता है? (अर्थात् दूसरों को बाँधने-छोड़ने का तेरा अध्यवसान निष्प्रयोजन रहा)।

**

**उत्थानिका**:—जीव निज को पररूप मानता है–

**सव्वे करेदि जीवो, अज्झवसाणेण तिरिय-णेरइये।**
**देव-मणुवे य सव्वे, पुण्णं पावं अणयेविहं।। 8-32-268।।**

**धम्माधम्मं च तहा, जीवाजीवे अलोगलोगं च।**
**सव्वे करेदि जीवो, अज्झवसाणेण अप्पाणं।। 8-33-269।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवो) **जीव** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान के द्वारा** (तिरिय-णेरइये) **तिर्यञ्च, नारक** (य) **और** (देव-मणुवे) **देव, मनुष्य** – (सव्वे) **इन सब पर्यायरूप** (अणेयविहं) **और अनेक प्रकार के** (पुण्णं पावं) **पुण्य और पाप-**(सव्वे) **इन सबरूप** (करेदि) **अपने आपको करता है;** (तहा च) **तथा** – **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान के द्वारा** (धम्माधम्मं) **धर्म-अधर्म,** (जीवाजीवे) **जीव-अजीव,** (अलोगलोगं च) **लोक और अलोक** – (सव्वे) **इन सब रूप** (अप्पाणं) **अपने को** (करेदि) **करता है।**

**अर्थ**:—जीव अध्यवसान के द्वारा तिर्यञ्च, नारक, देव और मनुष्य–इन सब रूप और अनेक प्रकार के पुण्य और पाप-इन सब रूप अपने आपको करता है।

तथा उसी प्रकार जीव अध्यवसान के द्वारा धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक और अलोक–इन सब रूप अपने को करता है।

**

**उत्थानिका:**—जिनके अध्यवसान नहीं, उनके कर्म-बन्ध नहीं है–

**एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एवमादीणि।**
**ते असुहेण सुहेण य, कम्मेण मुणी ण लिप्पंति।। 8-34-270।।**

***सान्वय अर्थ:***—(एदाणि) **ये पूर्व में कहे गये अध्यवसान,** (एवमादीणि) **तथा इसी प्रकार के अन्य भी** (अज्झवसाणाणि) **अध्यवसान** (जेंसि) **जिनके** (णत्थि) **नहीं हैं;** (ते मुणी) **वे मुनि** (असुहेण) **अशुभ** (य) **और** (सुहेण) **शुभ** (कम्मेण) **कर्म से** (ण लिप्पंति) **लिप्त नहीं होते।**

**अर्थ:**—ये पूर्व में कहे गये अध्यवसान, तथा इसी प्रकार के अन्य भी अध्यवसान जिनके नहीं हैं; वे मुनि अशुभ और शुभ कर्म से लिप्त नहीं होते हैं।

**

**उत्थानिका:**—अध्यवसान के नामान्तर–

**बुद्धी ववसाओ वि य, अज्झवसाणं[1] मदी य विण्णाणं।**
**ऍक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तं भावो य परिणामो।। 8-35-271।।**

***सान्वय अर्थ:***—(बुद्धी) **बुद्धि,** (ववसाओ वि य) **व्यवसाय,** (अज्झवसाणं) **अध्यवसान,** (मदी य) **मति,** (विण्णाणं) **विज्ञान,** (चित्तं) **चित्त,** (भावो) **भाव** (य) **और** (परिणामो) **परिणाम** – (सव्वं) **ये सब** (एक्कट्ठमेव) **एकार्थक हैं।**

**अर्थ:**—बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम — ये सब एकार्थक हैं (अर्थात् जीव का परिणाम अध्यवसान है)।

**

---

1. अज्झवसाण - अध्यवसान। "अतिहर्ष-विषादाभ्यामधिकमवसानम्। चिन्तनमवसानम्। विशे०। रागस्नेहसयात्मिकेऽध्याये। राग-भय-स्नेहभेदात् त्रिविधमध्यवसानम्। अध्यवसानं जीवपरिणाम:।"—अभिधान राजेंद्र कोश, पृ० 232।

**उत्थानिका**:—निश्चयाश्रित जीव ही निर्वाण को पाते हैं–

**एवं ववहारणओ, पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।**
**णिच्छयणयासिदा पुण, मुणिणो पावंति णिव्वाणं।। 8-36-272।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं) **इसप्रकार** (ववहारणओ) **व्यवहारनय को** (णिच्छयणयेण) **निश्चयनय के द्वारा** (पडिसिद्धो) **निषिद्ध** (जाण) **जानो**; (पुण) **पुनः** (णिच्छयणयासिदा) **निश्चय नय के आश्रित** (मुणिणो) **मुनिगण** (णिव्वाणं) **निर्वाण** (पावंति) **प्राप्त करते हैं।**

**अर्थ**:—इसप्रकार व्यवहारनय को निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जानो; तथा निश्चयनय के आश्रित मुनि निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—अभव्य का चारित्र व्यर्थ है–

**वद-समिदी-गुत्तीओ, सील-तवं जिणवरेहि पण्णत्तं।**
**कुव्वंतो वि अभव्वो, अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु।। 8-37-273।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव के द्वारा** (पण्णत्तं) **कथित** (वद-मिदी-गुत्तीओ) **व्रत, समिति, गुप्ति,** (सील-तवं) **शील और तप** (कुव्वंतो वि) **करता हुआ भी** (अभव्वो) **अभव्य जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (मिच्छदिट्ठी दु) **मिथ्यादृष्टि ही है।**

**अर्थ**:—जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप को करता हुआ भी अभव्य जीव 'अज्ञानी मिथ्यादृष्टि' ही है।

✱✱

**उत्थानिका**:—अभव्य का शास्त्र-पाठ गुणकारी नहीं है–

**मोक्खं असद्दहंतो, अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज।**
**पाठो ण करेदि गुणं, असद्दहंतस्स णाणं तु।। 8-38-274।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (अभवियसत्तो) **अभव्यजीव है, वह** (अधीयेज्ज दु) **शास्त्र तो पढ़ता है; किन्तु** (मोक्खं) **मोक्ष का** (असद्दहंतो) **श्रद्धान नहीं करता,** (तु) **तो** (णाणं असद्दहंतस्स) **ज्ञान का श्रद्धान न करनेवाले उस अभव्यजीव का** (पाठो) **पाठ** (गुणं) **गुण--लाभ** (ण करेदि) **नहीं करता है।**

**अर्थ**:—जो अभव्यजीव है, वह शास्त्र तो पढ़ता है; किन्तु मोक्षतत्त्व का श्रद्धान नहीं करता, तो ज्ञान का श्रद्धान न करनेवाले उस अभव्यजीव का शास्त्र-पाठ कोई लाभ नहीं करता है।

**

**उत्थानिका**:—अभव्य की श्रद्धा निरर्थक है–

**सद्दहदि य पत्तियदि[1] य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।**
**धम्मं भोग-णिमित्तं, ण हु सो कम्मक्खय-णिमित्तं।। 8-39-275।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सो) **वह अभव्यजीव** (भोगणिमित्तं धम्मं) **भोग के निमित्तभूत धर्म का ही** (सद्दहदि य) **श्रद्धान करता है,** (पत्तियदि य) **उसी की प्रतीति करता है,** (रोचेदि य) **उसी की रुचि करता है,** (तह पुणो वि) **तथा पुन:** (फासेदि य) **उसी का स्पर्श करता है;** (ण हु कम्मक्खयणिमित्तं) **परन्तु कर्म-क्षय के निमित्तरूप धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श नहीं करता।**

**अर्थ**:—वह अभव्यजीव भोग के निमित्तभूत धर्म का ही श्रद्धान करता है, (उसी की) प्रतीत करता है, (उसी की) रुचि करता है तथा पुन: (उसी का) स्पर्श करता है; परन्तु कर्म-क्षय के निमित्तरूप (धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श) नहीं करता।

**

1. 'पत्तेदि य' पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है।

**उत्थानिका**:—व्यवहार और निश्चय का स्वरूप–

**आयारादी णाणं, जीवादी दंसणं च विण्णेयं।**
**छज्जीव-णिकं च तहा, भणदि चरित्तं दु ववहारो।। 8-40-276।।**

**आदा हु मज्झ णाणं, आदा मे दंसणं चरित्तं च।**
**आदा पच्चक्खाणं, आदा मे संवरो जोगो।। 8-41-277।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आयारादी) **आचारांग आदिशास्त्र** (णाणं) **ज्ञान है,** (जीवादी) **जीवादि तत्त्व** (दंसण च) **दर्शन** (विण्णेयं) **जानना चाहिये,** (च) **और** (**छज्जीवणिकं**) **छह जीव निकाय** (चरित्तं) **चारित्र हैं**; —(तहा तु) **इस प्रकार तो** (ववहारो) **व्यवहारनय** (भणदि) **कहता है।**

(हु) **निश्चय से** (मज्झ आदा) **मेरी आत्मा ही** (णाणं) **ज्ञान है,** (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (दंसणं चरित्तं च) **दर्शन और चारित्र है,** (आदा) **मेरी आत्मा ही** (पच्चक्खाणं) **प्रत्याख्यान है, और** (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (संवरो जोगो) **संवर और योग है।**

**अर्थ**:—आचारांग आदि शास्त्रों (को जानना) 'ज्ञान' है, जीवादि तत्त्वों (का श्रद्धान) 'दर्शन' जानना चाहिये और छह जीवनिकायों (की रक्षा) चारित्र है – इस प्रकार व्यवहारनय कहता है।

निश्चय से मेरी आत्मा ही ज्ञान है, मेरी आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरी आत्मा की प्रत्याख्यान है, और मेरी आत्मा ही संवर और योग है (—यह निश्चयनय का कथन है)।

**

**उत्थानिका**:—भावकर्म से रागादि परिणति–

**जह फलिहमणि विसुद्धो, ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।**
**रंगिज्जदि अण्णेहिं दु, सो रत्तादीहि दव्वेहिं।। 8-42-278।।**

**एवं णाणी सुद्धो, ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।**
**रागिज्जदि अण्णेहिं, दु सो रागादीहि दोसेहिं।। 8-43-279।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (फलिहमणि) **स्फटिकमणि** (विसुद्धो) **विशुद्ध है,** वह (रागमादीहिं) **रक्तादिरूप से** (सयं)**स्वयं** (ण परिणमदि) **परिणत नहीं होती;** (दु) **परन्तु** (सो) **वह** (अण्णेहिं) **अन्य** (रत्तादीहि दव्वेहिं) **लाल आदि वर्णवाले द्रव्यों से** (रंगिज्जदि) **लाल आदि रंगरूप परिणत होती है।** (एवं) **इसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी** (सुद्धो) **स्वयं तो शुद्ध है,** वह (रागमादीहिं) **रागादिरूप** (सयं) **अपने आप** (ण परिणमदि) **परिणमन नहीं करता;** (दु) **परन्तु** (सो) **वह** (अण्णेहिं) **अन्य** (रागादीहि दोसेहिं) **रागादि दोषों से** (रागिज्जदि) **रागरूप परिणमन करता है।**

**अर्थ**:—जैसे स्फटिक मणि विशुद्ध है, वह स्वयं लाल आदि वर्णरूप से परिणत नहीं होती; परन्तु वह अन्य लाल आदि वर्णवाले द्रव्यों से लाल आदि रूप परिणमन करती है। इसी प्रकार ज्ञानी (आत्मा स्वयं तो) शुद्ध है, वह रागादिरूप स्वयं परिणमन नहीं करता; परन्तु वह अन्य रागादि दोषों से रागरूप परिणमन करता है।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी रागादि का कर्त्ता नहीं है–

**ण वि राग-दोस-मोहं, कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।**
**सयमप्पणो ण सो, तेण कारगो तेसि भावाणं।। 8-44-280।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणी) **ज्ञानी** (रागदोसमोहं) **राग, द्वेष, मोह को** (कसायभावं वा) **अथवा कषायभाव को** (सयं) **स्वयं** (अप्पणो) **निजरूप** (ण वि) **न तो** (कुव्वदि) **करता है;** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह ज्ञानी** (तेसि भावाणं) **उन भावों का** (कारगो ण) **कर्त्ता नहीं है।**

**अर्थ**:—ज्ञानी राग, द्वेष, मोह को अथवा कषायभाव को स्वयं निजरूप नहीं करता है; इसलिए वह उन भावों का कर्त्ता नहीं है।

✱✱

**उत्थानिका**:—अज्ञानी रागादि का कर्त्ता है–

**रागम्हि य दोसम्हि य, कसाय-कम्मेसु चेव जे भावा।**
**तेहिं दु परिणमंतो, रागादी बंधदि पुणो वि।। 8-45-281।।**

***सान्वय अर्थ***:—(रागम्हि य) **राग के होने पर** (दोसम्हि य) **द्वेष के होने पर** (कषायकम्मेसु चेव) **और कषाय कर्मों के होने पर** (जे भावा) **जो भाव होते हैं;** (तेहिं दु) **उन रूप** (परिणमंतो) **परिणमन करता हुआ अज्ञानी** (रागादी) **रागादि को** (पुणो वि) **बार-बार** (बंधदि) **बाँधता हैं**

**अर्थ**:—राग के होने पर, द्वेष के होने पर और कषाय कर्मों के होने पर जो भाव होते हैं, उन रूप परिणमन करता हुआ (अज्ञानी) रागादि को बार-बार बाँधता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—रागादि से कर्मबन्ध होता है–

**रागम्हि य दोसम्हि य, कसायकम्मेसु चेव जे भावा।**
**तेहिं दु परिणमंतो, रागादी बंधदे चेदा।। 8-46-282।।**

***सान्वय अर्थ***:—(रागम्हि य) **राग के होने पर,** (दोसम्हि य) **द्वेष के होने पर,** (कसायकम्मेसु चेव) **और कषाय-कर्मों के होने पर** (जे भावा) **जो रागादि परिणाम होते हैं;** (तेहिं दु) **उन रूप** (परिणमंतो) **परिणमन करता हुआ** (चेदा) **आत्मा** (रागादी) **रागादि को** (बंधदे) **बाँधता है।**

**अर्थ**:—राग, द्वेष और कषाय-कर्मरूप (द्रव्यकर्म के उदय) होने पर जो रागादि परिणाम होते हैं, उन रूप परिणमन करता हुआ आत्मा रागादि को बाँधता है।

(निष्कर्ष यह है कि कर्म-बन्ध के उदय से रागादि भाव होते हैं, और रागादि भाव कर्म-बन्ध का कारण हैं।)

✱✱

उत्थानिका:—प्रतिक्रमण का स्वरूप–

**अप्पडिकमणं दुविहं, अपच्चखाणं[1] तहेव विण्णेयं।**
**एदेणुवदेसेण दु, अकारगो वण्णिदो चेदा।। 8-47-283।।**

**अप्पडिकमणं दुविहं, दव्वे भावे अपच्चखाणं[2] पि।**
**एदेणुवदेसेण दु, अकारगो वण्णिदो चेदा।। 8-48-284।।**

**जाव ण पच्चक्खाणं, अप्पडिकमणं[3] च दव्वभावाणं।**
**कुव्वदि आदा ताव दु, कत्ता सो होदि णादव्वो।। 8-49-285।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अप्पडिकमणं) **अप्रतिक्रमण** (दुविहं) **दो प्रकार का है,** (तहेव) **इसी प्रकार** (अपच्चखाणं) **प्रत्याख्यान भी दो प्रकार का** (विण्णेयं) **जानना चाहिये** – (एदेणुवदेसेण दु) **इस उपदेश से** (चेदा) **आत्मा** (अकारगो) **अकारक** (वण्णिदो) **कहा गया है।** (अप्पडिकमणं) **अप्रतिक्रमण** (दुविहं) **दो प्रकार का है** – (दव्वे भावे) **द्रव्यरूप और भावरूप;** (अपच्चखाणं पि) **अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है – द्रव्यरूप और भावरूप** – (एदेणुवदेसेण दु) – **इस उपदेश से** (चेदा) **आत्मा** (अकारगो) **अकारक** (वण्णिदो) **कहा गया है।** (जाव) **जब तक** (आदा) **आत्मा** (दव्वभावाणं) **द्रव्य और भाव का** (पच्चक्खाणं) **प्रत्याख्यान** (ण कुव्वदि) **नहीं करता,** (अप्पडिकमणं च) **और जब तक द्रव्य और भाव का प्रतिक्रमण नहीं है;** (ताव दु) **तब तक** (सो) **आत्मा** (कत्ता) **कर्त्ता** (होदि) **होता है** —(णादव्वो) **ऐसा जानना चाहिये।**

**अर्थ:**—(पूर्वानुभूत विषयरागादिरूप) अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है; इसी प्रकार (भावी विषयाकांक्षारूप) अप्रत्याख्यान (दो प्रकार का) जानना चाहिये – इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है। अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भावरूप से दो प्रकार का है – इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है। जब तक आत्मा द्रव्य और भाव का प्रत्याख्यान नहीं करता, और प्रतिक्रमण नहीं करता; तब तक वह आत्मा (कर्मों का) कर्त्ता होता है, – ऐसा जानना चाहिये। ✱✱

---

1-2. 'अपच्चखाणं' की जगह शुद्ध पाठ 'अपच्चक्खाणं' होना चाहिये था, किंतु यहाँ छन्दानुरोध से 'क' का लोप किया है, अन्यथा एक मात्रा बढ़ जाती।

3. 'जावं अप्पडिकमणं अपच्चक्खाणं' पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी मुनि को आहार-निमित्तक बन्ध नहीं है–

**आधाकम्मादीया, पोॅग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।**
**किह ते[1] कुव्वदि णाणी, परदव्वगुणा दु जे णिच्चं।। 8-50-286।।**

**आधाकम्मं उद्देसियं च पोॅग्गलमयं इमं दव्वं।**
**किह तं मम होदि, कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं।। 8-51-287।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आधाकम्मादीया) **अधःकर्म आदि** (जो इमे) **जो ये** (पोॅग्गलदव्वस्स) **पुद्गलद्रव्य के** (दोसा) **दोष हैं**, (ते) **उनको** (णाणी) **ज्ञानी-आत्मा** (किह) **किस प्रकार** (कुव्वदि) **कर सकता है?** (जे दु) **जो कि** (णिच्चं) **सदा** (परदव्वगुणा) **परद्रव्य के गुण हैं।** (इमं) **यह** (आधाकम्मं) **अधःकर्म** (च) **और** (उद्देसियं) **औद्देशिक** (पोॅग्गलमयं दव्वं) **पुद्गलमय द्रव्य है**, (जं) **जो** (णिच्चं) **सदा ही** (अचेदणं) **अचेतन** (वुत्तं) **कहा गया है**; (तं) वह (मम कदं) **मेरा किया** (किह) **किस प्रकार** (होदि) **हो सकता है?**

**अर्थ**:—अधःकर्म आदि जो ये पुद्गलद्रव्य के दोष हैं, उनको ज्ञानी (आत्मा) किस प्रकार कर सकता है? जो कि सदा परद्रव्य के गुण हैं। यह अधःकर्म और औद्देशिक पुद्गलमय द्रव्य है; वह मेरा किया किस प्रकार हो सकता है, जो सदा अचेतन कहा गया है।

**

**।। अट्ठमो बंधाधियारो समत्तो।।**

---

1. 'दे' – यह पाठ भी हो सकता है।

# णवमो मोक्खाधियारो

**उत्थानिका**:—बन्ध के ज्ञानमात्र से मोक्ष नहीं–

**जह णाम को वि पुरिसो, बंधणयम्हि[1] चिरकालपडिबद्धो।**
**तिव्वं मंदसहावं, कालं च वियाणदे तस्स।। 9-1-288।।**

**जदि ण वि कुव्वदि छेदं, ण मुच्चदे तेण बंधणवसो सं।**
**कालेण दु बहुगेण वि, ण सो णरो पावदि विमोक्खं।। 9-2-289।।**

**इय कम्मबंधणाणं, पदेस-पयडि-ट्ठिदी य अणुभागं।**
**जाणंतो वि ण मुच्चदि[2], मुच्चदि सव्वे जदि विसुद्धो।। 9-3-290।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह णाम) **जैसे** (बंधणयम्हि) **बन्धन में** (चिरकालपडिबद्धो) **बहुत समय से बँधा हुआ** (को वि पुरिसो) **कोई पुरुष** (तस्स) **उस बन्धन के** (तिव्वं) **तीव्र और** (मंदसहावं) **मन्द स्वभाव को,** (कालं च) **और उसके काल को** (विदाणदे) **जानता है।** (जदि) **यदि वह** (छेदं ण वि कुव्वदि) **उस बन्धन को नहीं काटता है – तो वह** (तेण) **उस बन्धन से** (ण मुच्चदे) **नहीं छूटता है;** (दु) **और** (बंधणवसो सं) **बन्धन के वश हुआ** (सो णरो) **वह मनुष्य** (बहुगेण वि कालेण) **बहुत काल में भी** (विमोक्खं ण पावदि) **छुटकारा प्राप्त नहीं करता है।**

(इय) **इसी प्रकार जीव** (कम्मबंधणाणं) **कर्म-बन्धनों के** (पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभागं) **प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को** (जाणंतो वि) **जानता हुआ भी** (ण मुच्चदि) **कर्मबन्ध से नहीं छूटता है।** (जदि) **यदि वह** (विसुद्धो) **रागादि को दूर कर शुद्ध होता है, तो** (सव्वे) **सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से** (मुच्चदि) **छूट जाता है।**

---

1. सामान्यतः 'बंधणम्हि' प्रयोग बनना चाहिये था, यहाँ छन्दानुरोध से 'बंधणयम्हि' विशिष्ट प्रयोग हुआ है।
2. 'मुच्चदि' रूप विचारणीय, सामान्यतः 'मुंचदि' रूप मिलता है।

**अर्थ:**—जैसे बन्धन में बहुत समय से बँधा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन के तीव्र-मन्द स्वभाव को और उसके काल को जानता है; (तथापि) यदि वह उस बन्धन को नहीं काटता है, तो वह उस बन्धन से नहीं छूटता और बन्धन के वश हुआ वह मनुष्य बहुत काल में भी छुटकारा नहीं पाता।

इसी प्रकार जीव कर्म-बंधनों के प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाव को जानता हुआ भी कर्म-बन्ध से नहीं छूटता है। यदि वह रागादि को दूरकर शुद्ध होता है, तो सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से छूट जाता है।

✱✱

**उत्थानिका:**—बन्ध की चिन्तामात्र से मोक्ष नहीं–

**जह बंधे चिंतंतो, बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।**
**तह बंधे चिंतंतो, जीवो वि ण पावदि विमोक्खं।। 9-4-291।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जह) **जिस प्रकार** (बंधणबद्धो) **बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष** (बंधे चिंतंतो) **उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ** (विमोक्ख) **मोक्ष** (ण पावदि) **नहीं पाता है;** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो विं) **जीव भी** (बंधे चिंतंतो) **कर्म-बन्ध का विचार करता हुआ भी** (विमोक्खं) **मुक्ति** (ण पावदि) **नहीं पाता।**

**अर्थ:**—जिसप्रकार बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) छुटकारा नहीं पाता है; उसी प्रकार जीव भी कर्म-बन्ध की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) मुक्ति नहीं पाता।

✱✱

**उत्थानिका**:—कर्म-बन्ध के क्षय से मोक्ष होता है–

**जह बंधे छेत्तूण य, बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं।**
**तह बंधे छेत्तूण य, जीवो संपावदि विमोक्खं।। 9-5-292।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह य) **जिस प्रकार** (बंधणबद्धो) **बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष** (बंधे) **बन्धनों को** (छेत्तूण) **काटकर** (दु) **अवश्य ही** (विमोक्खं पावदि) **मुक्ति प्राप्त करता है;** (तह य) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (बंधे छेत्तूण) **कर्म-बन्ध को काटकर** (विमोक्खं) **मोक्ष** (संपावदि) **प्राप्त करता है।**

**अर्थ**:—जिस प्रकार बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष बन्धनों को काटकर अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है; उसी प्रकार जीव कर्म-बन्ध को काटकर मोक्ष प्राप्त करता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—भेद-विज्ञान से मोक्ष होता है–

**बंधाणं च सहावं, वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।**
**बंधेसु जो विरज्जदि, सो कम्मविमोक्खणं कुणदि।। 9-6-293।।**

***सान्वय अर्थ***:—(बंधाणं सहावं च) **बन्धों के स्वभाव को** (अप्पणो सहावं च) **और आत्मा के स्वभाव को** (वियाणिदुं) **जानकर** (जो) **जो पुरुष** (बंधेसु) **बन्धों के प्रति** (विरज्जदि) **विरक्त होता है,** (सो) **वह** (कम्मविमोक्खणं कुणदि) **कर्मों से मुक्त होता है।**

**अर्थ**:—बन्धों के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर जो पुरुष बन्धों के प्रति विरक्त होता है, वह कर्मों से मुक्त होता है।

✱✱

उत्थानिका:—प्रज्ञा से भेदविज्ञान होता है–

**जीवो बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहिं।**
**पण्णाछेदणएण दु, छिण्णा णाणत्तमावण्णा।। 9-7-294।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जीवो) **जीव** (तहा य) **तथा** (बंधो) **बन्ध** (णियदेहिं सलक्खणेहि) **अपने-अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा** (छिज्जंति) **पृथक् किये जाते हैं,** (पण्णाछेदणएण दु) **प्रज्ञारूपी छुरी के द्वारा** (छिण्णा) **पृथक् किये हुए ये** (णाणत्तमावण्ण) **नानारूप हो जाते हैं – पृथक् हो जाते हैं।**

**अर्थ:**—जीव तथा बन्ध ये दोनों अपने-अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा पृथक् किये जाते हैं। प्रज्ञारूपी छुरी के द्वारा छेदे हुए (पृथक् किये हुए) ये नानारूप हो जाते हैं (पृथक् हो जाते हैं)।

**

उत्थानिका:—भेदविज्ञान होने पर जीव का कर्त्तव्य–

**जीवो बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहिं।**
**बंधो छेदेदव्वो, सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो।। 9-8-295।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जीवो) **जीव** (तहा य) **तथा** (बंधो) **बन्ध** (णियदेहिं सलक्खणेहि) **अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा** (छिज्जंति) **पृथक् किये जाते हैं; वहाँ** (बंधो) **बन्ध को तो** (छेदेदव्वो) **आत्मा से पृथक् कर देना चाहिये** (य) **और** (सुद्धो अप्पा) **शुद्ध आत्मा को** (घेत्तव्वो) **ग्रहण करना चाहिये।**

**अर्थ:**—जीव तथा बन्ध अपने-अपने निश्चित लक्षणों के द्वारा पृथक् किये जाते हैं। वहाँ बन्ध को तो (आत्मा से) पृथक् कर देना चाहिये और शुद्ध आत्मा को ग्रहण करना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—प्रज्ञा-के द्वारा ही आत्मा को ग्रहण करना चाहिये–

**किह सो घेप्पदि अप्पा, पण्णाए सो दु घेप्पदे अप्पा।**
**जह पण्णाइ[1] विहत्तो, तह पण्णाए व[2] घेत्तव्वो।। 9-9-296।।**

***सान्वय अर्थ:***—**शिष्य पूछता है कि "(सो अप्पा) वह शुद्ध आत्मा** (किह) **कैसे** (घेप्पदि) **ग्रहण किया जा सकता है", – आचार्य उत्तर देते हैं –"(सो दु अप्पा) वह शुद्ध आत्मा** (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेप्पदे) **ग्रहण किया जाता है; (जह) जैसे पहले** (पण्णाइ) **प्रज्ञा के द्वारा** (विहत्तो) **भिन्न किया था,** (तह) **उसी प्रकार** (पण्णाए व) **प्रज्ञा के द्वारा ही** (घेत्तव्वो) **ग्रहण करना चाहिये।"**

**अर्थ:**—(शिष्य गुरु से पूछता है) "वह शुद्ध आत्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है?" (आचार्य उत्तर देते हैं) "वह शुद्ध आत्मा प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण किया जाता है। जैसे (पहले) प्रज्ञा के द्वारा विभक्त किया था, उसी प्रकार प्रज्ञा के द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये।"

✱✱

---

1. सामान्यत: 'पण्णाए' ऐसा तृतीयान्त रूप बनना चाहिये; किन्तु यहाँ छन्दानुरोध से विशिष्ट प्रयोग 'पण्णाइ' किया है।
2. 'व' का प्रयोग 'चेव' के अर्थ में हैं, यह विशिष्ट प्रयोग है।

उत्थानिका:—मैं चिदात्मा हूँ–

**पण्णाए घेत्तव्वो, जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।**
**अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।। 9-10-297।।**

***सान्वय अर्थ:***—(पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेत्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** (जो चेदा) **जो चिदात्मा है** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अहं) **मैं हूँ;** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव हैं,** (ते) **वे** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर हैं** – (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।'**

**अर्थ:**—प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि 'जो चिदात्मा है, निश्चय से वह मैं हूँ; शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं, —यह जानना चाहिये।'

✱✱

उत्थानिका:—मैं दृष्टा मात्र हूँ–

**पण्णाए घेत्तव्वो, जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।**
**अवसेसा जे भावा, जे मज्झ परे त्ति णादव्वा।। 9-11-298।।**

***सान्वय अर्थ:***—(पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेत्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** '(जो दट्ठा) **जो द्रष्टा – देखने वाला है,** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अहं) **मैं हूँ;** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव हैं,** (ते) **वे सब** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर हैं** – (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।'**

**अर्थ:**—प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि 'जो देखने वाला द्रष्टा है, निश्चय से वह मैं हूँ; शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं, —यह जानना चाहिये।'

✱✱

उत्थानिका:—मैं ज्ञाता मात्र हूँ–

**पण्णाए घेत्तव्वो, जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।**
**अवसेजा जे भावा, ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।। 9-12-299।।**

***सान्वय अर्थ:***—(पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेत्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** '(जो णादा) **जो ज्ञाता - जाननेवाला है,** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अहं) **मैं हूँ;** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव हैं,** (ते) **वे** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर हैं** – (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये।**'

**अर्थ:**—प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि 'जो जानने वाला ज्ञाता है, निश्चय से वह मैं हूँ; शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं, —यह जानना चाहिये।

✱✱

उत्थानिका:—चिन्मात्र भाव ही अपने हैं–

**को णाम भणेज्ज बुहो, णादुं सव्वे पराइए[1] भावे।**
**मज्झमिणं ति य वयणं, जाणंतो अप्पयं[2] सुद्धं।। 9-13-300।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अप्पयं) **आत्मा को** (सुद्धं) **शुद्ध** (जाणंतो) **जानता हुआ** (सव्वे भावे) **शेष सब भावों को** (पराइए) **पर** (णादुं) **जानकर** (को णाम बुहो) **कौन बुद्धिमान "**(मज्झमिणं) **ये मेरे हैं"** – (ति य वयणं) **ऐसे वचन** (भणेज्ज) **कहेगा।**

**अर्थ:**—आत्मा को शुद्ध जानता हुआ, शेष सब भावों को पर जानकर कौन बुद्धिमान "ये भाव मेरे हैं" —ऐसे वचन कहेगा।

✱✱

---

1. 'पराइए' विशिष्ट प्रयोग है।
2. अप्पयं > अप्पाणं का विशिष्ट प्रयोग है।

उत्थानिका:—सापराध और निरपराध आत्मा–

**थेयादी अवराहे, कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि।**
**मा बज्झे हं केण वि, चोरो त्ति जणम्हि वियरंतो।। 9-14-301।।**

**जो ण कुणदि अवराहे, सो णिस्संको दु जणवदे भमदि।**
**ण वि तस्स बज्झिदुं जे[1], चिंता उप्पज्जदि कया वि।। 9-15-302।।**

**एवं हि सावराहो, बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा।**
**जो पुण णिरावराहो, णिस्संकोहं ण बज्झामि।। 9-16-303।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जो) **जो पुरुष** (थेयादी अवराहे) **चोरी आदि अपराधों को** (कुव्वदि) **करता है,** (सो) **वह पुरुष** (ससंकिदो) **सशंकित** (होदि) **रहता है कि** '(जणम्हि) **मनुष्यों के बीच** (वियरंतो) **घूमते हुए** '(चोरो त्ति) **चोर है' – ऐसा जानकर** (केण वि) **किसी के द्वारा** (हं मा बज्झे) **मैं बाँध न लिया जाऊँ।'** (तथा) (जो) **जो पुरुष** (अवराहे) **अपराध** (ण कुणदि) **नहीं करता,** (सो दु) **वह तो** (जणवदे) **देश में** (णिस्संको) **नि:शंक** (भमदि) **घूमता है;** (जे) **क्योंकि** (तस्स) **उसके मन में** (बज्झिदुं चिंता) **बँधने की चिन्ता** (कया वि) **कभी** (ण वि उप्पज्जदि) **नहीं उत्पन्न होती है।** (एवं हि) **इसी प्रकार** (सावराहो चेदा) **अपराधी आत्मा** (संकिदो) **शंकित रहता है कि** '(अहं तु बज्झामि) **मैं – ज्ञानावरणादि कर्मों से बन्ध को प्राप्त होऊँगा;** (जो पुण णिरावराहो) **यदि निरपराध हो, तो** (णिस्संको) **नि:शंक रहता है कि** '(अहं ण बज्झामि) **मैं नहीं बँधूँगा।'**

***अर्थ:***—जो पुरुष चोरी आदि अपराधों को करता है, वह पुरुष सशंकित रहता है कि मनुष्यों के बीच घूमते हुए 'चोर है' ऐसा जानकर किसी के द्वारा मैं बाँध न लिया जाऊँ। जो पुरुष अपराध नहीं करता, वह तो देश में नि:शंक घूमता है; क्योंकि उसके मन में बँधने की चिन्ता कभी उत्पन्न नहीं होती।

इसी प्रकार अपराधी आत्मा शंकित रहता है कि 'मैं (ज्ञानावरणादि कर्मों से) बन्ध को प्राप्त होऊँगा।' यदि वह निरपराध हो, तो नि:शंक रहता है कि 'मैं नहीं बँधूँगा।'

**

1. यहाँ पर 'जे' पाठ का — 'जेण' या 'जदो' के अर्थ में विशिष्ट प्रयोग है।

उत्थानिका:—निरपराध आत्मा नि:शंक होता है–

**संसिद्धि-राध-सिद्धं, साधिदमाराधिदं च एयट्ठं।**
**अवगदराधो जो खलु, चेदा सो होदि अवराधो।। 9-17-304।।**

**जो पुण णिरावराधो, चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।**
**आराहणाइ णिच्चं, वट्टदि अहमिदि वियाणंतो।। 9-18-305।।**

***सान्वय अर्थ:***—(संसिद्धिराधसिद्धं) **संसिद्धि, राध, सिद्ध** (साधिदमाराधिदं च) **साधित और आराधित** –(एयट्ठं) **ये सब एकार्थक हैं;** (जो खुल चेदा) **जो आत्मा** (अवगदराधो) **राधरहित है – निज शुद्धात्मा की आराधना से रहित है** (सो) **वह** (अवराधो) **अपराध** (होदि) **होता है।** (पुण) **और** (जो चेदा) **जो आत्मा** (णिरावराधो) **निरपराध होता है,** (सो दु) वह (णिस्संकिदो) **नि:शंक** (होदि) **होता है;** '(अहमिदि) **मैं उपयोगस्वरूप एक शुद्ध आत्मा हूँ' – इसप्रकार** (वियाणंतो) **जानता हुआ** (आराहणाइ) **शुद्धात्मसिद्धिरूप आराधना से** (णिच्चं वट्टदि) **सदा ही प्रवृत्त रहता है।**

**अर्थ:**—संसिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित —ये सब एकार्थक हैं। जो आत्मा राधरहित है (निज शुद्धात्म की आराधना से रहित है), वह आत्मा अपराध होता है; और जो आत्मा निरपराध होता है, वह नि:शंक होता है। ऐसा आत्मा 'मैं (उपयोग-स्वरूप एक शुद्ध आत्मा) हूँ' —इस प्रकार जानता हुआ (शुद्धात्मसिद्धिरूप) आराधना में सदा ही वर्तता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—विषकुम्भ और अमृतकुम्भ–

**पडिकमणं पडिसरणं, पडिहरणं धारणा णियत्ती य।**
**णिंदा गरुहा सोही, अट्ठविहो होदि विसकुंभो।। 9-18-306।।**

**अपडिकमणमपडिसरणमप्पडिहारो अधारणा चेव।**
**अणियत्ती य अणिंदा, गरुहा सोही अमयकुंभो।। 9-20-307।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पडिकमणं) **प्रतिक्रमण,** (पडिसरणं) **प्रतिसरण,** (पडिहरणं) **परिहार,** (धारणा) **धारणा,** (णियत्ती) **निवृत्ति,** (णिंदा) **निन्दा,** (गरुहा) **गर्हा,** (य), **और** (सोही) **शुद्धि** –(अट्ठविहो) **यह आठ प्रकार का** (विसकुंभो) **'विषकुम्भ'** (होदि) **होता है।**

(अपडिकमणं) **अप्रतिक्रमण,** (अपडिसरणं) **अप्रतिसरण,** (अप्पडिहारो) **अपरिहार,** (अधारणा) **अधारणा,** (अणियत्ती) **अनिवृत्ति,** (य) **और** (अणिंदा) **अनिन्दा,** (अगरुहा) **अगर्हा,** (चेव) **और** (असोही) **अशुद्धि** – **ये आठ** (अमयकुंभो) **'अमृतकुम्भ' हैं।**

**अर्थ**:—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि —यह आठ प्रकार का 'विषकुम्भ' हैं (क्योंकि इनमें कर्तृत्त्वबुद्धि होती है)।

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि —ये आठ 'अमृतकुम्भ' हैं (क्योंकि इनमें कर्तृत्व का निषेध है)।

**।। इदि णवमो मोक्खाधियारो समत्तो।।**

**

# दहमो सव्वविसुद्ध-णाणाधियारो

उत्थानिका:—जीव अपने परिणामों का कर्त्ता है–

**दवियं जं उप्पज्जदि, गुणेहि तं तेहि जाणसु अणण्णं।**
**जह कडयादीहिं दु, य पज्जएहि कणयमणण्णमिह।। 10-1-308।।**

**जीवस्साजीवस्स य, जे परिणाम दु देसिदा सुत्ते।**
**तं जीवमजीवं वा, तेहिमणण्णं वियाणाहि।। 10-2-309।।**

**ण कुदोचि वि उप्पण्णो, जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा।**
**उप्पादेदि ण किंचि वि, कारणमवि तेण ण सो होदि।। 10-3-310।।**

**कम्मं पडुच्च कत्ता, कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।**
**उप्पज्जंते णियमा, सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा।। 10-4-311।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जं दव्वं) **जो द्रव्य** (गुणेहि) **जिन गुणों से** (उप्पजदि) **उत्पन्न होता है,** (तं) **उसे** (तेहि) **उन गुणों से** (अणण्णं) **अनन्य** (जाणसु) **जानो।** (जह य) **जैसे** (इह) **लोक में** (कडयादीहिं पज्जएहि दु) **कटक आदि पर्यायों से** (कणयं) **स्वर्ण** (अणण्णं) **भिन्न नहीं है;** (इसीप्रकार) (जीवस्साजीवस्स य) **जीव और अजीव के** (जे परिणामा दु) **जो परिणाम** (सुत्ते) **सूत्र में** (देसिदा) **कहे हैं,** (तेहिं) **उन परिणामों से** (तं जीवमजीवं वा) **उस जीव और अजीव को** (अणण्णं) **अनन्य** (वियाणाहि) **जानो;** (जम्हा) **क्योंकि** (सो आदा) **वह आत्मा** (कुदोचि वि) **किसी से** (ण उप्पण्णो) **उत्पन्न नहीं हुआ,** (तेण) **इसलिए** (कज्जं ण) **वह किसी का कार्य नहीं है;** (किंचि वि) **किसी अन्य को** (ण उप्पादेदि) **उत्पन्न नहीं करता,** (तेण) **इस कारण** (सो) **वह आत्मा** (कारणमवि) **किसी का कारण भी** (ण होदि) **नहीं है।** (णियमा) **नियम से** (कम्मं पडुच्च) **कर्म का आश्रय करके** (कत्ता) **कर्त्ता होता है,** (तह) **तथा** (कत्तारं पडुच्च) **कर्त्ता का आश्रय करके** (कम्माणि उप्पज्जंते) **कर्म उत्पन्न होते हैं।** (अण्णा सिद्धी दु) **कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि** (ण दिस्सदे) **नहीं देखी जाती।**

**अर्थ:**—जो द्रव्य जिन गुणों से उत्पन्न होता है, उसे उन गुणों से अनन्य जानो। जैसे लोक में कटक आदि पर्यायों से स्वर्ण भिन्न नहीं है। जीव और अजीव के जो परिणाम सूत्र में कहे हैं, उन परिणामों से उस जीव और अजीव को अनन्य जानो; क्योंकि वह आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए वह किसी का कार्य नहीं है; किसी अन्य को उत्पन्न नहीं करता, इस कारण वह किसी का कारण भी नहीं है। नियम से कर्म का आश्रय करके कर्त्ता होता है तथा कर्त्ता का आश्रय करके कर्म उत्पन्न होते हैं। कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि नहीं देखी जाती।

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा ओर कर्म-प्रकृति का निमित्त-नैमित्तिम सम्बन्ध–

**चेदा दु पयडीयट्ठं, उप्पज्जदि विणस्सदि।**
**पयडी वि चेदयट्ठं, उप्पज्जदि विणस्सदि।। 10-5-312।।**

**एवं बंधो य दोण्हं पि अण्णोण्णपच्चया हवे।**
**अप्पणो पयडीए य, संसारो तेण जायदे।। 10-6-313।।**

***सान्वय अर्थ***:—(चेदा दु) **यह आत्मा** (पयडीयट्ठं) **प्रकृति के निमित्त से** (उप्पज्जदि) **उत्पन्न होता है,** (विणस्सदि) **और नष्ट होता है;** (पयडी वि) **तथा वे कर्म प्रकृतियाँ भी** (चेदयट्ठं) **आत्मा के निमित्त से** (उप्पज्जदि) **उत्पन्न होती हैं,** (विणस्सदि) **तथा विनाश को प्राप्त होती है।** (एवं य) **इस प्रकार** (अण्णोण्णपच्चया) **एक दूसरे के निमित्त से** (दोण्हं पि) **दोनों का** (अप्पणो पयडीए य) **आत्मा और कर्म प्रकृतियों का** (बंधो) **बन्ध** (हवे) **होता है,** (तेण) **उस बन्ध से** (संसारो) **संसार** (जायदे) **होता है।**

**अर्थ:**—यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होता है, और नष्ट होता है; तथा वे कर्मप्रकृतियाँ भी आत्मा के निमित्त से उत्पन्न होती हैं, और विनाश को प्राप्त होती हैं। इसप्रकार एक दूसरे के निमित्त से आत्मा और कर्मप्रकृतियाँ – दोनों का बन्ध होता है; और उस बन्ध से संसार होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञाता, दृष्टा, मुनि कैसे होता है?–

**जा एस पयडीयट्ठं, चेदगो ण विमुंचदि।**
**अयाणगो हवे ताव, मिच्छादिट्ठी असंजदो।। 10-7-314।।**

**जदा विमुंचदे चेदा, कम्मफलमणंतयं।**
**तदा विमुत्तो हवदि, जाणगो पस्सगो मुणी।। 10-8-315।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जा) **जब तक** (एस चेदगो) **यह आत्मा** (पयडीयट्ठं) **कर्मप्रकृति निमित्तक उत्पत्ति और विनाश को** (ण विमुंचदि) **नहीं छोड़ता है,** (तावं) **तब तक** (अयाणगो) **अज्ञानी** (मिचछादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि और** (असंजदो) **असंयत** (हवे) **है और** (जदा) **जब** (चेदा) **आत्मा** (अणंतयं कम्मफलं) **अनन्त कर्मफल को** (विमुंचदे) **छोड़ देता है,** (तदा) **तब वह** (विमुत्तो) **बन्ध से मुक्त हुआ** (जाणगो) **ज्ञाता** (परस्गो) **दृष्टा और** (मुणी) **संयत हो जाता है।**

**अर्थ**:—जब तक यह आत्मा कर्मप्रकृति के निमित्त से होने वाले उत्पत्ति और विनाश को नहीं छोड़ता; तब तक वह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंयत (रहता) है। जब आत्मा अनन्त कर्मफल को छोड़ देता है; तब वह बन्ध से मुक्त हुआ ज्ञाता, दृष्टा और संयत (हो जाता) है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी कर्म-फल को जानता है–

**अण्णाणी कम्मफलं, पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि।**
**णाणी पुण कम्मफलं, जाणदि उदिदं ण वेदेदि।। 10-9-316।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अण्णाणी दु) **अज्ञानी** (पयडिसहावट्ठिदो) **प्रकृति के स्वभाव में स्थित हुआ** (कम्मफलं) **कर्म के फल को** (वेदेदि) **भोगता है**; (पुण) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (उदिदं) **उदय में आये हुए** (कम्मफलं) **कर्म के फल को** (जाणदि) **जानता है,** (ण वेदेदि) **भोगता नहीं है।**

**अर्थ**:—अज्ञानी प्रकृति के स्वभाव में स्थित हुआ (हर्ष, विषाद से तन्मय हुआ) कर्म के फल को भोगता है; और ज्ञानी उदय में आये हुए कर्म के फल को जानता है, भोगता नहीं है।

**

**उत्थानिका**:—अभव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता–

**ण मुयदि पयडिमभव्वो, सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि।**
**गुड-दुद्धं पि पिबंता, ण पण्णया णिव्विसा होंति।। 10-10-317।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अभव्वो) **अभव्य जीव** (सत्थाणि) **शास्त्रों को** (सुट्ठु) **अच्छी तरह** (अज्झाइदूण वि) **पढ़कर भी** (पयडिं) **प्रकृति स्वभाव को** (ण मुयदि) **नहीं छोड़ता है। जैसे** (पण्णया) **सर्प** (गुडदुद्धं) **गुड़मिश्रित दूध को** (पिबंता पि) **पीते हुए भी** (णिव्विसा) **विषरहित** (ण होंति) **नहीं होते हैं।**

**अर्थ**:—अभव्य जीव शास्त्रों को भली-भाँति पढ़कर भी प्रकृति स्वभाव को नहीं छोड़ता है; जैसे सर्प गुड़मिश्रित दूध को पीते हुए भी विषरहित नहीं होते हैं।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी कर्म-फल को नहीं भोगता–

**णिव्वेयसमावण्णो, णाणी कम्मप्फलं वियाणादि।**
**महुरं कडुयं बहुविहमवेदगो तेण सो होदि।। 10-11-318।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णिव्वेयसमावण्णो) **वैराग्य को प्राप्त** (णाणी) **ज्ञानी** (महुरं) **मधुर,** (कडुयं) **कटुक** (बहुविहं) **अनेक प्रकार के** (कम्मप्फलं) **कर्मफल को** (वियाणादि) **जानता है;** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (अवेदगो) **अवेदक अर्थात् कर्म-फल का भोक्ता नहीं** (होदि) **है।**

**अर्थ**:—वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी मधुर, कटुक अनेक प्रकार के कर्मफल को जानता है; इसलिए वह कर्म-फल का भोक्ता नहीं है।

✱✱

**उत्थानिका**:—ज्ञानी पुण्य, पाप को जानता है–

**ण वि कुव्वदि ण वि वेददि, णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइं[1]।**
**जाणदि पुण कम्मफलं, बंधं पुण्णं च पावं च ।। 10-12-319।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणी) **ज्ञानी** (बहुप्पयाराइं) **बहुत प्रकार के** (कम्माइ) **कर्मों को** (ण वि कुव्वदि) **न तो करता है,** (ण वि वेददि) **न भोगता ही है;** (पुण) **किन्तु वह** (पुण्णं च पावं च) **पुण्य और पापरूप** (बंधं) **कर्मबन्ध को,** (कम्मफलं) **और कर्मफल को** (जाणदि) **जानता है।**

**अर्थ**:—ज्ञानी बहुत प्रकार के कर्मों को न तो करता है, न भोगता ही है; किन्तु वह पुण्य और पापरूप कर्म-बन्ध को और कर्म-फल का जानता है।

✱✱

---

1. द्वितीय चरण में एक मात्रा बढ़ रही है, अतः अन्त में सानुनासिक 'इं' का प्रयोग नहीं होकर मात्र 'इ' प्रयोग होना चाहिये।

**उत्थानिका**:—ज्ञानी कर्त्ता-भोक्ता नहीं है–

**दिट्ठी सयं पि णाणं, अकारयं तह अवेदयं चेव।**
**जाणदि य बंध-मोक्खं, कम्मुदयं णिज्जरं चेव।। 10-13-320।।**

***सान्वय अर्थ***:—**जैसे** (दिट्ठी) **नेत्र दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है;** (तह) **उसी प्रकार** (णाणं) **ज्ञान-कर्म से भिन्न होने के कारण** (सयं पि) **स्वयं** (अकारयं) **कर्मों का कर्त्ता नहीं है,** (अवेदयं चेव) **और उनका भोक्ता भी नहीं है; वह तो** (बंध-मोक्खं) **बन्ध, मोक्ष** (य) **और** (कम्मुदयं) **कर्म के उदय** (णिज्जरं चेव) **और निर्जरा को** (जाणदि) **जानता है।**

**अर्थ**:—(जैसे) नेत्र (दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है); उसी प्रकार ज्ञान (कर्म से भिन्न होने के कारण) स्वयं कर्मों का कर्त्ता नहीं है और उनका भोक्ता भी नहीं है; (वह तो) बन्ध, मोक्ष, कर्म के उदय और निर्जरा को जानता है।

*विशेष:—अब इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक 'चूलिका' का व्याख्यान है। (विशेष व्याख्यान, उक्त, अनुक्त व्याख्या अथवा उक्तानुक्त अर्थ का संक्षिप्त व्याख्यान —सार 'चूलिका' कहलाती है।)*

**

**उत्थानिका**:—कर्तृत्व माननेवालों को मोक्ष नहीं–

**लोगस्स कुणदि विण्हू, सुर-णारय-तिरिय-माणुसे सत्ते।**
**समणाणं पि य अप्पा, जदि कुव्वदि छव्विहे काये।। 10-14-321।।**

**लोग-समणाणमेवं, सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।**
**लोगस्स कुणदि विण्हू, समणाणं अप्पओ कुणदि।। 10-15-322।।**

**एवं ण को वि मोक्खो, दिस्सदि लोग-समणाणं दोण्हं पि।**
**णिच्चं कुव्वंताणं, सदेव-मणुयासुरे लोगे।। 10-16-323।।**

***सान्वय अर्थ***:—(लोगस्स) **लोक के मत में** (सुर-णारय-तिरिय-माणुसे सत्ते) **सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियों को** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है**; (य) **और** (जदि) **यदि** (समणाणं पि) **श्रमणों के मतानुसार भी** (अप्पा) **आत्मा** (छव्विहे काये) **छह काय के जीवों को** (कुव्वदि) **करता है**; – **तो** (एवं) **इस प्रकार** (लोगसमणाणं) **लोक और श्रमणों में** (सिद्धंतं पडि) **सिद्धान्त की दृष्टि से** (विसेसो) **अन्तर** (ण दिस्सदि) **नहीं दीखता है। क्योंकि** (लोगस्स) **लोक के मत में** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है और** (समणाणं) **श्रमणों के मत में** (अप्पओं) **आत्मा** (कुणदि) **करता है।** (एवं) **इस प्रकार** (सदेवमणुयासुरे लोगे) **देव, मनुष्य और असुर लोकों को** (णिच्चं कुव्वंताणं) **सदा करते हुए** (लोगसमणाणं दोण्हं पि) **लोक और श्रमण दोनों का भी** (को वि मोक्खो) **कोई मोक्ष** (ण दिस्सदि) **नहीं दिखाई देता।**

**अर्थ**:—लोक के मत में सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियों को विष्णु करता है; और यदि श्रमणों के मतानुसार भी आत्मा छह काय के जीवों को (जीवों के कार्यों को) करता है, तो इस प्रकार लोक और श्रमणों में सिद्धान्तों की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं दीखता। लोक के मत में विष्णु करता है, और श्रमणों के मत में आत्मा करता है। इस प्रकार देव, मनुष्य और असुर लोकों को सदा करते हुए (कर्त्ताभाव से प्रवर्तमान) लोक और श्रमण दोनों का भी कोई मोक्ष दिखाई नहीं देता।

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानी की मान्यता–

**ववहारभासिदेण दु, परदव्वं मम भणंति विदिदत्था।**
**जाणंति णिच्छयेण दु, ण य इह परमाणुमेत्तमवि।। 10-17-324।।**

***सान्वय अर्थ***:—**अज्ञानी जन** (ववहारभासिदेण दु) **व्यवहारनय से** "(परदव्वं मम) **परद्रव्य मेरा है**", —**ऐसा** (भणंति) **कहते हैं** (य) **और** (विदिदत्था) **पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले – ज्ञानीजन** (दु) **तो** (जाणंति) **जानते हैं कि** (णिच्छयेण) **निश्चय नय से** (इह) **इस संसार में** (परमाणुमेत्तं) **परमाणुमात्र** (अवि) **भी** (ण) **मेरा नहीं है।**

**अर्थ**:—(अज्ञानी जन) व्यवहार नय से "परद्रव्य मेरा है" —ऐसा कहते हैं और पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले ज्ञानीजन तो जानते हैं कि निश्चयनय से इस संसार में परमाणुमात्र कुछ भी मेरा नहीं है।

**

**उत्थानिका**:—परद्रव्य को अपना मानने वाला जीव मिथ्यादृष्टि है–

**जह को वि णरो जंपदि, अम्हाणं गाम-विसय-णयरट्ठं।**
**ण य होंति ताणि तस्स दु, भणदि य मोहेण सो अप्पा।। 10-18-325।।**

**एमेव मिच्छादिट्ठी[1], णाणी णिस्संसयं हवदि एसो।**
**जो 'परदव्वं मम' इति, जाणंतो अप्पयं कुणदि।। 10-19-326।।**

**तम्हा ण मे त्ति णच्चा, दोण्हं एदाण कत्ति-ववसाओ।**
**परदव्वे जाणंतो, जाणेज्जा दिट्ठि-रहिदाणं।। 10-20-327।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (को वि णरो) **कोई मनुष्य** (जंपदि) **कहता है – कि "यह** (अम्हाणं) **हमारा** (गाम-विसयणयरट्ठं) **ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है"**, (दु) **किन्तु** (ताणि) वे (तस्स) **उसके** (ण य होंति) **नहीं है,** (य) **और** (सो अप्पा) **वह आत्मा** (मोहेण) **मोह से** (भणदि) **ऐसा कहता है।** (एमेव) **इसी प्रकार** (जो णाणी) **जो ज्ञानी** '(परदव्वं मम) **परद्रव्य मेरा है'** – (इदि जाणंतो) **यह जानता हुआ** (अप्पयं कुणदि) **परद्रव्य को निजरूप कर लेता है,** (एसो) **वह ज्ञानी** (णिस्संसयं) **असंदिग्धरूप से** (मिच्छदिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (हवदि) **होता है।** (तम्हा) **इस कारण से** '(ण मे त्ति) **ये परद्रव्य मेरे नहीं है'** – **यह** (णच्च) **जानकर** (एदाण दोण्हं) **लोक और श्रमण – इन दोनों के** (परदव्वे) **परद्रव्य में** (कत्तिववसाओ) **कर्त्तृत्व के व्यवसाय को** (जाणंतो) **जानते हुए** (जाणेज्जा) **समझो कि 'यह व्यवसाय** (दिट्ठिरहिदाणं) **मिथ्यादृष्टियों का है।'**

**अर्थ**:—जैसे कोई पुरुष कहता है कि "यह हमारा ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है"; किन्तु वस्तुतः वे उसके नहीं हैं, तथापि वह आत्मा मोह से ऐसा कहता है। इसी प्रकार जो ज्ञानी 'परद्रव्य मेरा है' – यह जानता हुआ परद्रव्य को निजरूप कर लेता है, वह ज्ञानी निःसन्देह मिथ्यादृष्टि है; इसलिए 'ये परद्रव्य मेरे नहीं हैं' यह जानकर लोक और श्रमण इन दोनों के परद्रव्य में कर्त्तृत्व के व्यवसाय को जानते हुए समझो कि यह व्यवसाय मिथ्यादृष्टियों का है।

**

1. यहाँ 'मिच्छदिट्ठी' प्रयोग होना चाहिये। 'मिच्छादिट्ठी' प्रयोग रखने से 1 मात्रा बढ़ रही है।

उत्थानिका:—'भावकर्म' का कर्त्ता जीव है–

**मिच्छत्तं जदि पयडी, मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं।**
**तम्हा अचेदणा दे, पयडी णणु कारगा पत्ता।। 10-21-328।।**

**अहवा एसो जीवो, पोंग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं।**
**तम्हा पोंग्गलदव्वं, मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो।। 10-22-329।।**

**अह जीवो पयडी तह, पोंग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं।**
**तम्हा दोहि कदं तं दोण्हि वि भुंजंति तस्स फलं।। 10-23-330।।**

**अह ण पयडी ण जीवो, पोंग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।**
**तम्हा पोंग्गलदव्वं, मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा।। 10-24-331।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जदि) **यदि** (मिच्छत्तं पयडी) **मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व प्रकृति** (अप्पाणं) **आत्मा को** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (करेदि) **करती है,** (तम्हा) **इस मान्यता से** (दे) **तेरे मतानुसार** (अचेदणा पयडी) **अचेतन प्रकृति** (णणु) **निश्चय ही** (कारगा पत्ता) **मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई।**

(अहवा) **अथवा** (एसो जीवो) **यह जीव** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्गलद्रव्य के** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्व को** (कुणदि) **करता है;** (तम्हा) **ऐसा माना जाए तो** (पोंग्गल दव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा,** (ण पुण जीवो) **जीव नहीं।**

(अह) **अथवा** (जीवो) **जीव** (तह) **तथा** (पयडी) **प्रकृति – ये दोनों** (पोग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य को** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्वरूप** (कुणंति) **करते हैं;** (तम्हा) **ऐसा मानने से** (दोहि कदं तं) **दोनों ही** (भुंजंति) **भोगेंगे।**

(अह) **अथवा** (ण पयडी) **न तो प्रकृति ही और** (ण जीवो) **न जीव ही** (पोंग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य को** (मिच्छत्तं) **मिथ्यात्वरूप** (करेदि) **करता है;** (तम्हा) **ऐसा मानने से** (पोंग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य को – मिथ्यात्वभाव का प्रसंग आ जाएगा।** (तं तु ण हु मिच्छा) **क्या यह वास्तव में मिथ्या नहीं है?**

**अर्थ:**—यदि (मोहनीयकर्म की) मिथ्यात्व प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि करती है, इस मान्यता से तेरे मतानुसार अचेतन प्रकृति निश्चय ही मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई; अथवा 'यह जीव पुद्गलद्रव्य के मिथ्यात्व को करता है', –ऐसा माना जाए तो पुद्गलद्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा, जीव नहीं; अथवा 'जीव तथा प्रकृति – ये दोनों पुद्गलद्रव्य को मिथ्यात्वरूप करते हैं', – ऐसा मानने से दोनों के द्वारा किये हुए मिथ्यात्व के फल को वे दोनों ही भोगेंगे; अथवा 'न तो प्रकृति और न जीव पुद्गलद्रव्य को मिथ्यात्वरूप करता है', –ऐसा मानने से पुद्गलद्रव्य को (मिथ्यात्व भाव का प्रसंग आ जाएगा); क्या यह वास्तव में मिथ्या नहीं है?

✸✸

**उत्थानिका**:—कर्म की कर्त्ता है, जीव नहीं, यह मिथ्या है–

**कम्मेहि दु अण्णाणी, किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं।**
**कम्मेहि सुवाविज्जदि, जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।। 10-25-332।।**

**कम्मेहि सुहाविज्जदि, दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।**
**कम्मेहि य मिच्छत्तं, णिज्जदि य असंजमं चेव।। 10-26-333।।**

**कम्मेहि भमाडिज्जदि, उड्ढमहं चावि तिरियलोयं च।**
**कम्मेहि चेव किज्जदि, सुहासुहं जेत्तियं किंचि।। 10-27-334।।**

**जम्हा कम्मं कुव्वदि, कम्मं दे दि हरदि त्ति जं किंचि।**
**तम्हा सव्वे जीवा, अकारगा होंति आवण्णा।। 10-28-335।।**

***सान्वय अर्थ***:—(कम्मेहि दु) **कर्मों के द्वारा जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (किज्जदि) **किया जाता है,** (तहेव) **उसी प्रकार** (कम्मेहिं) **कर्मों के द्वारा** (णाणी) **ज्ञानी होता है;** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा** (सुवाविज्जदि) **सुलाया जाता है,** (तहेव) **उसी प्रकार** (कम्मेहिं) **कर्मों के द्वारा** (जग्गाविज्जदि) **जगाया जाता है;** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा** (दुक्खाविज्जदि) **दुखी होता है;** (य) **और** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा जीव** (उड्ढं) **ऊर्ध्वलोक** (अहं चावि) **अधोलोक,** (तिरियलोयं च) **और तिर्यग्लोक में** (भमाडिज्जदि) **भ्रमण करता है;** (च) **और** (कम्मेहि एव) **कर्मों के द्वारा ही** (जेत्तियं किंचि) **जो कुछ जितना** (सुहासुहं) **शुभ और अशुभ है, वह** (किज्जदि) **होता है;** (जम्हा) **क्योंकि** (कम्मं) **कर्म** (कुव्वदि) **करता है,** (कम्मं) **कर्म** (दिदि) **देता है,** (त्ति जं किंचि) **इस प्रकार जो कुछ है, उसे कर्म ही** (हरति) **हरता है;** (तम्हा) **इसलिए** (सव्वे जीवा) **सभी जीव** (अकारगा आवण्णा होंति) **अकर्त्ता सिद्ध होते हैं।**

**अर्थ**:—(पूर्व पक्ष) "कर्मों के द्वारा जीव अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा ज्ञानी होता है। कर्मों के द्वारा जीव सुलाया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा जगाया जाता है। कर्मों के द्वारा जीव सुखी होता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा दुःखी होता है। कर्मों के द्वारा जीव मिथ्यात्व और असंयम को प्राप्त होता है; और कर्मों के

द्वारा जीव ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में भ्रमण करता है। कर्मों के द्वारा ही कुछ जितना शुभ और अशुभ है, वह होता है; क्योंकि कर्म करता है, कर्म देता है, –इस प्रकार जो कुछ है, उसे कर्म ही हरता है; इसलिए सभी जीव अकर्त्ता सिद्ध होते हैं।"

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा को अकर्त्ता मानने का दुष्परिणाम–

**पुरिसित्थियाहिलासी, इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि।**
**एसा आयरिय-परंपरागदा एरिसी दु सुदी।। 10-29-336।।**

**तम्हा ण को वि जीवो, अबंभयारी दु तुम्हमुवदेसे।**
**जम्हा कम्मं चेव हि, कम्मं अहिलसदि जं भणिदं[1]।। 10-30-337।।**

**जम्हा घादेदि परं, परेण घादिज्जदे य सा पयडी।**
**एदेणसत्थेण दु किर भण्णदि परघादणामे त्ति।। 10-31-338।।**

**तम्हा ण को वि जीवो, वघादगो अत्थि तुम्ह उवदेसे।**
**जम्हा कम्मं चेव हि, कम्मं घादेदि जं भणिदं।। 10-32-339।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पुरिसित्थियाहिलासी) **पुरुषवेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है,** (च) **और** (इत्थीकम्मं) **स्त्रीवेदकर्म** (पुरिसमहिलसदि) **पुरुष की अभिलाषा करता है** – (एसा आयरियपरंपरागदा) **यह आचार्य परम्परा से आई हुई** (एरिसी दु सुदी) **ऐसी श्रुति है;** (तम्हा) **इस मान्यतानुसार** (तुम्हमुवदेसे दु) **तुम्हारे उपदेश - मत में** (को वि जीवो) **कोई भी जीव** (अवंभयारी) **अब्रह्मचारी** (ण) **नहीं है।** (जम्हा) **क्योंकि** (कम्मं चेव हि) **कर्म ही वस्तुतः** (कम्मं) **कर्म को** (अहिलसदि) **चाहता है** (जं भणिदं) **–ऐसा जो कहा गया है।** (जम्हा) **चूँकि जो** (परं घादेदि) **दूसरे को मारता है,** (य) **और** (परेण घादिज्जदे) **दूसरे के द्वारा मारा जाता है,** (सा पयडी) **वह भी कर्म है** – (एदेणत्थेण दु किर) **इसी अर्थ में** (परघादणामे त्ति भण्णदि) **'परघात नामकर्म' कहा जाता है;** (तम्हा) **इसलिए** (तुम्ह उवदेसे) **तुम्हारे उपदेश - मत में** (को वि जीवो) **कोई जीव** (वघादगो) **उपघात करने वाला** (ण अत्थि) **नहीं है;** (जम्हा) **क्योंकि** (कम्मं चेव हि) **कर्म ही** (कम्मं घादेदि) **कर्म को मारता है** – (जं भणिदं) **यह कहा है।**

**अर्थ**:—(पूर्वोक्त सांख्यमती यह भी मानते हैं कि) – "पुरुषवेद-कर्म स्त्री की अभिलाषा करता है, तथा स्त्रीवेद-कर्म पुरुष की अभिलाषा करता है।" –

---

1. 'इदि भणिदं' इति पाठान्तरं।

आचार्य-परम्परा से आई हुई ऐसी श्रुति है; इसलिए तुम्हारे मत में कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है।

क्योंकि जो दूसरे को मारता है और दूसरे के द्वारा मारा जाता है, वह भी कर्म है। इसी अर्थ में 'परघात नामकर्म' कहा जाता है; इसलिए तुम्हारे मत में कोई जीव उपघात करने वाला नहीं है; क्योंकि 'कर्म ही कर्म को मारता है', –यह कहा है।"

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा को अकर्त्ता मानने वाले श्रमण नहीं है–

**एवं संखुवदेसं, जे दु परूविंति एरिसं समणा।**
**तेसिं पयडी कुव्वदि, अप्पा य अकारगा सव्वे।। 10-33-340।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं दु) **इस प्रकार** (एरिसं संखुवदेसं) **ऐसा सांख्यमत का उपदेश** (जे समणा) **जो श्रमण-श्रमणाभास** (परूविंति) **करते हैं;** (तेसिं) **उनके मत में** (पयडी) **प्रकृति ही** (कुव्वदि) **करती है,** (य) **और** (सव्वे अप्पा) **सब आत्मा** (अकारगा) **अकारक है – ऐसा सिद्ध होता है।**

**अर्थ**:—(आचार्यदेव कहते हैं कि) – इस प्रकार सांख्यमत का ऐसा उपदेश जो श्रमण (श्रमणाभास) करते हैं; उनके मत में 'प्रकृति' ही करती है, और सब आत्मा अकारक हैं (ऐसा सिद्ध होता है)।

✱✱

**उत्थानिका:**—अपेक्षा-भेद से आत्मा कर्त्ता और अकर्त्ता है–

**अहवा मण्णसि मज्झं, अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।**
**एसो मिच्छसहावो, तुम्हं एवं भणंतस्स।। 10-34-341।।**

**अप्पा णिच्चासंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि।**
**ण वि सो सक्कदि तत्तो, हीणो अहियो व कादुं जे।। 10-35-342।।**

**जीवस्स जीवरूवं, वित्थरदो जाण लोगमित्तं हि।**
**तत्तो सो किं हीणो, अहियो य कदं भणसि दव्वं।। 10-36-343।।**

**अह जाणगो दु भावो, णाणसहावेण अत्थि दे दि मदं।**
**तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु समयप्पणो कुणदि।। 10-37-344।।**

***सान्वय अर्थ:***—(अहवा) **अथवा** (मण्णसि) **ऐसा मानो कि** '(मज्झं अप्पा) **मेरा आत्मा** (अप्पणो अप्पाणं) **अपने द्रव्यरूप आत्मा को** (कुणदि) **करता है**' – (एवं भणंतस्स तुम्हं) **ऐसा कहने वाले तेरा** (एसो मिच्छसहावो) **यह मिथ्यात्व भाव है;** **क्योंकि** (समयम्हि दु) **परमागम में** (अप्पा) **आत्मा को** (णिच्चासंखेज्जपदेसो) **नित्य और असंख्यात प्रदेशी** (देसिदो) **कहा गया है,** (जे सो) **वह आत्मा** (तत्तो हीणो व अहियो) **उससे हीन अथवा अधिक** (कादुं ण वि सक्कदि) **नहीं किया जा सकता है** (वित्थरदो) **और विस्तार की अपेक्षा** (जीवस्स जीवरूवं) **जीव का जीवरूप** (हि) **निश्चय से** (लोगमित्तं) **लोकमात्र** (जाण) **जानो** (तत्तो) **उससे** (सो) **आत्मा** (किं हीणो अहियो य) **क्या हीन अथवा अधिक होता है?** (भणसि) **जो तू कहता है कि 'आत्मा ने** (दव्वं कदं) **द्रव्यरूप आत्मा को किया** (अह) **अथवा** (जाणगो दु भावो) **ज्ञायक भाव तो** (णाणसहावेण) **ज्ञानस्वभाव से** (अत्थि) **स्थित है।'** (दे दि मदं) **अगर तुम्हारा ऐसा मत है,** (तम्हा) **तो इससे भी** (अप्पा सयं) **आत्मा स्वयं** (अप्पणो अप्पयं तु) **अपने आत्मा को** (ण कुणदि) **नहीं करता – यह सिद्ध होता है।**

**अर्थ:**—अथवा (कर्त्तृत्व का पक्ष सिद्ध करने के लिए) ऐसा मानो कि मेरा आत्मा अपने द्रव्यरूप आत्मा को करता है। ऐसा कहनेवाले तेरा यह मिथ्यात्व भाव है, क्योंकि

परमागम में आत्मा को 'नित्य' और 'असंख्यात प्रदेशी' कहा गया है। आत्मा उससे हीन या अधिक नहीं किया जा सकता। विस्तार की अपेक्षा जीव का जीवरूप निश्चय से लोकमात्र जानो। आत्मा उससे क्या हीन अथवा अधिक होता हे, जो तू कहता है कि "आत्मा ने द्रव्यरूप आत्मा को किया"; अथवा अगर तेरा ऐसा मत है कि ज्ञायक भाव तो ज्ञानस्वभाव से स्थित है, तेा इससे भी आत्मा स्वयं अपने आत्मा को नहीं करता – (यह सिद्ध होता है)।

✱✱

**उत्थानिका**:—वस्तुत नित्यानित्यात्मक है–

**केहिचि दु पज्जयेहिं, विणस्सदे णेव चि दु जीवो।**
**जम्हा तम्हा कुव्वदि, सो वा अण्णो व णेयंतो।। 10-38-345।।**

**केहिचि दु पज्जयेहिं, विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो।**
**जम्हा तम्हा वेददि, सोवा अण्णो व णेयंतो।। 10-39-346।।**

**जो चेव कुणदि सो चेव[1], वेदगो जस्स एस सिद्धंतो।**
**सो जीवो णादव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।। 10-40-347।।**

**अण्णो करेदि अण्णो, परिभुजंदि जस्स एस सिद्धंतो।**
**सो जीवो णादव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।। 10-41-348।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जम्हा) **क्योंकि** (जीवो) **जीव** (केहिचि दु पज्जयेहिं) **कितनी ही पर्यायों से** (विणस्सदे) **नष्ट होता है,** (केहिचि दु) **और कितनी ही पर्यायों से** (णेव) **नष्ट नहीं होता;** (तम्हा) **इसलिए** (सो वा कुव्वदि) **जो भोगता है, वही करता है** (व अण्णो) **या अन्य करता है – ऐसा** (णेयंतो) **एकान्त नहीं है;** (जम्हा) **क्योंकि** (जीवो) **जीव** (केहिचि दु पज्जयेहिं) **कितनी ही पर्यायों से** (विणस्सदे) **नष्ट होता है,** (केहिचि दु) **कितनी ही पर्यायों से** (णेव) **नष्ट नहीं होता;** (तम्हा) **इसलिए** (सो वा वेददि) **जो करता है, वही भोगता है** (व अण्णो) **अथवा अन्य भोगता है – ऐसा** (णेयंतो) **एकान्त नहीं है।** '(जो चेव कुणदि) **जो जीव करता है,** (सो चेव वेदगो) **वही भोगता है',** (जस्स) **जिसका** (एस सिद्धंतो) **यह सिद्धान्त है,** (सो जीवो) **वह जीव** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (अणारिहदो) **आर्हत मत का न माननेवाला** (णादव्वे) **जानना चाहिये। तथा** '(अण्णो करेदि) **कोई अन्य करता है** (अण्णो परिभुंजदि) **कोई अन्य भोगता है'** – (जस्स) **जिसका** (एस सिद्धंतो) **ऐसा सिद्धान्त है,** (सो जीवो) **वह जीव** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि** (अणारिहदो) **आर्हत-मत का न मानने वाला** (णादव्वो) **जानना चाहिये।**

---

1. 'जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए' इति पाठान्तरम्।

**अर्थ:**—क्योंकि जीव कितनी ही पर्यायों से नष्ट होता है और कितनी ही पर्यायों से नष्ट नहीं होता; इसलिए (जो भोगता है), वही करता है या अन्य करता है, – ऐसा एकान्त नहीं है; क्योंकि जीव कितनी ही पर्यायों से नष्ट हाता है और कितनी ही पर्यायों से नष्ट नहीं होता; इसलिए (जो करता है), वही भोगता है अथवा अन्य भोगता है, ऐसा एकान्त नहीं है।

'जो जीव करता है, वही भोगता है' – जिसका यह सिद्धान्त है, वह जीव मिथ्यादृष्टि, आर्हत-मत का न माननेवाला जानना चाहिये। 'कोई अन्य करता है, कोई अन्य भोगता है' –जिसका ऐसा सिद्धान्त है, वह जीव मिथ्यादृष्टि, आर्हत-मत का न माननेवाला जानना चाहिऐ।

**

**उत्थानिका**:—जीव परिणमन करता हुआ भी अन्य द्रव्यरूप नहीं होता–

**जह सिप्पिओ दु कम्मं, कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।**
**तह जीवो वि य कम्मं, कव्वदि ण य तम्मओ होदि।। 10-42-349।।**

**जह सिप्पिउ करणेहिं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।**
**तह जीवो करणेहिं, कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।। 10-43-350।।**

**जह सिप्पिउ करणाणि य गिण्हदि ण य सो दु तम्मओ होदि।**
**तह जीवो करणाणि य, गिण्हदि ण य तम्मओ होदि।। 10-44-351।।**

**जह सिप्पिउ कम्मफलं, भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि।**
**तह जीवो कम्मफलं, भुंजदि ण य तम्मओ होदि।। 10-45-352।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **शिल्पी-स्वर्णकार आदि** (कम्मं) **कुण्डल आदि कर्म** (कुव्वदि) **करता है,** (सो दु) **परन्तु वह** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता;** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि य) **जीव भी** (कम्मं) **ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को** (कुव्वदि) **करता है, किन्तु** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता।** (जह) **जैसे** (सिप्पिउ) **शिल्पी-स्वर्णकार आदि** (करणेहिं) **हथौड़ा आदि उपकरणों से** (कुव्वदि) **कुण्डल आदि बनाता है,** (सो दु) **किन्तु वह** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता;** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (करणेहिं) **मन-वचन-कायरूप करणों के द्वारा** (कुव्वदि) **ज्ञानावरणादि कर्म करता है,** (तम्मओ) **किन्तु तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता है।** (जह) **जिस प्रकार** (सिप्पिउ) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (करणाणि य) **उपकरणों को** (गिण्हदि) **ग्रहण करता है,** (सो दु) **किन्तु वह** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता;** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (करणाणि य) **मन-वचन-कायरूप करणों को** (गिण्हदि) **ग्रहण करता है,** (तम्मओ) **किन्तु तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता है।** (जह) **जैसे** (सिप्पिउ) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (कम्मफलं) **कुण्डलादि कर्मों के फल को** (भुंजदि) **भोगता है,** (सो दु) **किन्तु वह** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता;** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (कम्मफलं) **कर्म के सुख-दुःखरूप फल को** (भुंजदि) **भोगता है,** (तम्मओ) **किन्तु उनसे तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता।**

**अर्थ:**—जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डल आदि कर्म करता है, परन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी प्रकार जीव भी ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को करता है, किन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता।

जैसे शिल्पी (स्वर्णकार आदि) हथौड़ा आदि उपकरणों से कुण्डल आदि बनाता है, किंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरूप करणों के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म करता है; किंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता।

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी उपकरणों को ग्रहण करता है, किन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता; उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरूप करणों को ग्रहण करता है; किंतु वह उनसे तन्मय नहीं होता।

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डलादि कर्मों के फल को भोगता है; किंतु वह उस फल से तन्मय नहीं होता, उसी प्रकार जीव भी कर्म के सुख-दु:खरूप फल को भोगता है, किन्तु वह उस फल से तन्मय नहीं होता।

✱✱

**उत्थानिका:**—सूचनिका गाथा –

**एवं ववहारस्स दु, वत्तव्वं दंसणं समासेण।**
**सुणु णिच्छयस्स वयणं, परिणामकदं तु जं होदि।। 10-36-353।।**

***सान्वय अर्थ:***—(एवं दु) **इस प्रकार तो** (ववहारस्स दंसणं) **व्यवहारनय का मत** (समासेण) **संक्षेप में** (वत्तव्वं) **वक्तव्य** (कहा गया है), **अब** (णिच्छयस्स) **निश्चयनय का** (वयणं) **वचन** (सुणु) **सुनो,** (जं तु) **जो** (परिणामकदं) **अपने परिणामों के द्वारा किया हुआ** (होदि) **होता है।**

**अर्थ:**—इसप्रकार तो व्यवहारनय का मत संक्षेप में कहा गया है। आगे निश्चयनय का वचन सुनो, जो अपने परिणामों के द्वारा किया हुआ होता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीव अपने भावकर्मों में तन्मय होने से दुःखी होता है–

**जह सिप्पिओ दु चेॅट्ठं, कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो।**
**तह जीवो वि य कम्मं, कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो।। 10-47-354।।**

**तह चेॅट्ठं कुव्वंतो, दु सिप्पिओ णिच्च-दुक्खिदो होदि।**
**तत्तो सिया अणण्णो, तह चेॅट्ठंतो दुही जीवो।। 10-48-355।।**

***सान्वय अर्थः***—(जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेॅट्ठं) **अपने परिणामरूप चेष्टा** (कुव्वदि) **करता है** (तहा य) **तथा** (सो) **वह** (अणण्णो हवदि) **उस चेष्टा से तन्मय हो जाता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि य) **जीव भी** (कम्मं) **रागादि भावकर्म** (कुव्वदि) **करता है** (य) **और** (सो) **वह** (अणण्णो) **उस भावकर्म से अनन्य-तन्मय** (हवदि) **हो जाता है** (जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेॅट्ठं कुव्वंतो) **चेष्टा करता हुआ** (णिच्चदुक्खिदो) **नित्य दुखी** (होदि) **होता है** (तत्तो) **और उस दुःख से** (अणण्णो) **अनन्य** (सिया) **होता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (चेॅट्ठंतो) **हर्ष-विषादरूप चेष्टा करता हुआ** (दुही) **दुःखी होता है।**

**अर्थः**—जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी (कुण्डलादि ऐसे बनाऊँगा, इस प्रकार मन में) चेष्टा करता है तथा उस चेष्टा से वह तन्मय हो जाता है। उसी प्रकार जीव भी रागादि भावकर्म करता है और वह उस भावकर्म से तन्मय हो जाता है। जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी चेष्टा करता हुआ नित्य दुःखी होता है और उस दुःख से अनन्य (तन्मय) होता हे, उसी प्रकार जीव हर्ष-विषाद रूप चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है (और उस दुःख से वह अनन्य है)।

✱✱

**उत्थानिका**:—जीव के ज्ञान-दर्शन-चारित्र पर्यायों का निश्चय स्वरूप–

**जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होदि।**
**तह जाणगो दु ण परस्स, जाणगो जाणगो सो दु।। 10-49-356।।**

**जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होदि।**
**तह पस्सगो दु ण परस्स, पस्सगो पस्सगो सो दु।। 10-50-357।।**

**जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होदि।**
**तह संजदो दु ण परस्स, संजदो संजदो सो दु।। 10-51-358।।**

**जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होदि।**
**तह दंसणं दु ण परस्स, दंसणं दंसणं तं तु।। 10-52-359।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (सेडिया दु) **सफेदी** (परस्स) **पर की – दीवाल आदि की** (ण) **नहीं है,** (सेडिया) **सफेदी** (सा य सेडिया होदि) **वह तो सफेदी ही है;** (तह) **उसी प्रकार** (जाणगो दु) **ज्ञायक-आत्मा** (परस्स ण) **पर का नहीं है** (जाणगो) **ज्ञायक** (सो दु) **वह तो** (जाणगो) **ज्ञायक ही है।** (जह) **जैसे** (सेडिया दु) **सफेदी** (परस्स ण) **पर की – दीवाल आदि की नहीं है,** (सेडिया) **सफेदी** (सा य सेडिया होदि) **वह तो सफेदी ही है;** (तह) **उसी प्रकार** (पस्सगो दु) **देखनेवाला – आत्मा** (परस्स ण) **पर का नहीं है** (पस्सगो) **दृष्टा** (सो दु पस्सगो) **वह तो दृष्टा ही है।** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी** (सा य सेडिया होदि) **वह तो सफेदी ही है,** (तह) **उसी प्रकार** (संजदो दु) **संयत – आत्मा** (परस्स ण) **पर का नहीं है,** (संजदो) **संयत** (सो दु संजदो) **वह तो संयत ही है।** (जह) **जैसे** (सेडिया दु) **सफेदी** (परस्स ण) **पर – दीवाल आदि की नहीं है,** (सेडिया) **सफेदी** (सा य सेडिया होदि) **वह तो सफेदी ही है;** (तह) **उसी प्रकार** (दंसणं दु) **सम्यग्दर्शन** (परस्स ण) **पर का नहीं है,** (दंसणं) **सम्यग्दर्शन** (तं तु दंसणं) **वह तो सम्यग्दर्शन ही है।**

**अर्थ**:—जैसी सफेदी खड़िया पर की (दीवाल आदि रूप) नहीं है, सफेदी वह तो सफेदी ही है (वह अपने स्वरूप में ही रहती है); उसी प्रकार ज्ञायक (आत्मा) पर का

(ज्ञेयरूप) नहीं है। ज्ञायक वह तो ज्ञायक ही है। (पर को जानता हुआ भी अपने स्वरूप में रहता है)। जैसे सफेदी-खड़िया पर की नहीं है, सफेदी वह तो सफेदी ही है; उसी प्रकार दर्शक (आत्मा) पर का नहीं है, दर्शक (दृष्टा) वह तो दर्शक ही है। जैसे सफेदी-खड़िया पर की नहीं है, सफेदी वह तो सफेदी ही है; उसी प्रकार संयत (आत्मा) पर का (परिग्रहादि रूप) नहीं है; संयत वह तो संयत ही है। जैसे सफेदी-खड़िया पर की (दीवाल आदि रूप) नहीं है, सफेदी वह तो सफेदी ही है; उसी प्रकार दर्शन (श्रद्धान) पर का नहीं है, दर्शन वह तो दर्शन ही है।

✱✱

**उत्थानिका**:—सूचिका गाथा–

**एवं तु णिच्छयणयस्स, भासिदं णाण-दंसण-चरित्ते।**
**सुणु ववहारणयस्स य, वत्तव्वं से समासेण।। 10-53-360।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं तु) **इस प्रकार** (णाणदंसणचरित्ते) **ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में** (णिच्छयणयस्स) **निश्चयनय का** (भासिदं) **कथन हुआ** (य) **और – अब** (से) **उसके विषय में** (समासेण) **संक्षेप में** (ववहारणयस्स वत्तव्वं) **व्यवहारनय का कथन** (सुणु) **सुनो।**

**अर्थ**:—इसप्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में निश्चयनय का कथन हुआ; और अब उसके विषय में संक्षेप में व्यवहारनय का कथन सुनो।

✱✱

**उत्थानिका**:—सम्यग्दृष्टि स्वभाव से देखता, जानता ओर त्यागता है–

**जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**
**तह परदव्वं जाणदि, णादा वि सएण भावेण।। 10-54-361।।**

**जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**
**तह परदव्वं पस्सदि, जीवो वि सएण भावेण।। 10-55-362।।**

**जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**
**तह परदव्वं विजहदि, णादा वि सएण भावेण।। 10-56-663।।**

**जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**
**तह परदव्वं सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण।। 10-57-364।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी-खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्वं) **परद्रव्य – दीवाल आदि को** (सेउदि) **सफेद करती है,** (तह) **उसी प्रकार** (णादा वि) **ज्ञाता आत्मा भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्वं) **परद्रव्य को** (जाणदि) **जानता है।** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी – खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्वं) **परद्रव्य – दीवाल आदि को** (सेउदि) **सफेदी करती है,** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि) **जीव भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्वं) **परद्रव्य को** (पस्सदि) **देखता है।** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी – खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्वं) **परद्रव्य – दीवाल आदि को** (सेउदि) **सफेद करती है,** (तह) **उसी प्रकार** (णादा वि) **ज्ञाता आत्मा भी** (सएण भावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्वं) **परद्रव्य को** (विजहदि) **त्यागता है।** (जह) **जैसे** (सेडिया) **सफेदी – खड़िया** (अप्पणो सहावेण हु) **अपने स्वभाव से ही** (परदव्वं) **परद्रव्य – दीवाल आदि को** (सेउदि) **सफेद करती है,** (तह) **उसी प्रकार** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (सहावेण) **अपने स्वभाव से** (परदव्वं) **परद्रव्य का** (सद्दहदि) **श्रद्धान करता है।**

**अर्थ**:—जैसे सफेदी – खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को

सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को जानता है।

जैसे सफेदी – खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार जीव भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को देखता है।

जैसे सफेदी – खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को त्यागता है।

जैसे सफेदी – खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती हैं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव से परद्रव्य का श्रद्धान करता है।

**

**उत्थानिका**:—जीव की अन्य पर्यायों का व्यवहार-स्वरूप–

**एवं ववहारस्स दु, विणिच्छओ णाण-दंसण-चरित्ते।**
**भणिदो अण्णेसु वि पज्जयेसु एमेव णादव्वो।। 10-58-365।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं दु) **इस प्रकार** (णाणदंसणचरित्ते) **ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में** (ववहारस्स) **व्यवहारनय का** (विणिच्छओ) **निर्णय** (भणिदो) **कहा है** (अण्णेसु पज्जयेसु वि) **अन्य पर्यायों में भी** (एमेव णादव्वो) **इसी प्रकार जानना चाहिये।**

**अर्थ**:—इसप्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में व्यवहारनय का निर्णय कहा है। अन्य पर्यायों में भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा के गुण परद्रव्य में नहीं है–

**दंसण-णाण-चरित्तं, किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए।**
**तम्हा किं घादयदे, चेदयिदा तेसु विसएसु।। 10-59-366।।**

**दंसण-णाण-चरित्तं, किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।**
**तम्हा किं घादयदे, चेदयिदा तम्मि कम्मम्मि।। 10-60-367।।**

**दंसण-णाण-चरित्तं, किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काये।**
**तम्हा किं घादयदे, चेदयिदा तेसु कायेसु।। 10-61-368।।**

***सान्वय अर्थ***:—(दंसणणाणचरित्तं) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे विसए दु) **अचेतन विषय में** (किंचि वि) **किंचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नहीं है,** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तेसु विसएसु) **उन विषयों में** (किं घादयदे) **क्या घात करेगा?**

(दंसणणाणचरित्तं) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे कम्मे दु) **अचेतन कर्म में** (किंचि वि) **किंचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नहीं है,** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तम्मि कम्मम्मि) **उस कर्म में** (किं घादयदे) **क्या घात करेगा?**

(दंसणाणचरित्तं) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (अचेदणे काये दु) **अचेतन काय में** (किंचि वि) **किंचिन्मात्र भी** (णत्थि) **नहीं हैं,** (तम्हा) **इसलिए** (चेदयिदा) **आत्मा** (तेसु कायेसु) **उन कायों में** (किं घादयदे) **क्या घात करेगा?**

**अर्थ**:—दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन-विषय में किंचिन्मात्र भी नहीं हैं; इसलिए आत्मा उन विषयों में क्या घात करेगा?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन-कर्म में किंचिन्मात्र भी नहीं हैं; इसलिए आत्मा उस कर्म में क्या घात करेगा?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन-काय में किंचिन्मात्र भी नहीं हैं; इसलिए आत्म उन कायों में क्या घात करेगा?

**

**उत्थानिका**:—ज्ञानादि का घात होने पर पुद्गल का घात नहीं होता–

**णाणस्स दंसणस्स य, भणिदो घादो तहा चरित्तस्स।**
**ण वि तम्हि को वि पोंग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो।। 10-62-369।।**

***सान्वय अर्थ***:—(णाणस्स) **ज्ञान का,** (दंसणस्स) **दर्शन का** (तहा य) **और** (चरित्तस्स) **चारित्र का** (घादो) **घात** (भणिदो) **कहा है;** (तम्हि पोंग्गलदव्वे) **उस पुद्गलद्रव्य में** (दु) **तो** (को वि घादो) **कोई घात** (ण वि णिद्दिट्ठो) **नहीं कहा।**

**अर्थ**:—ज्ञान, दर्शन और चारित्र का घात बताया है, (किन्तु) उस पुद्गलद्रव्य में कोई घात नहीं कहा।

**

**उत्थानिका**:—सम्यग्दृष्टि को विषयों में राग नहीं है–

**जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु।**
**तम्हा सम्मादिट्ठिस्स[1] णत्थि रागो दु विसएसु।। 10-63-370।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जीवस्स) **जीव के** (जे केई) **जो कोई** (गुणा) **गुण हैं,** (ते खलु) **वे वास्तव में** (परेसु दव्वेसु) **पर द्रव्यों में** (णत्थि) **नहीं हैं;** (तम्हा) **इसलिए** (सम्मादिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि को** (विसएसु) **विषयों में** (रागो दु) **राग** (णत्थि) **नहीं है।**

**अर्थ**:—जीव के जो कोई गुण हैं, वे वास्तव में परद्रव्यों में नहीं हैं; इसलिए सम्यग्दृष्टि को विषयों में राग नहीं है।

**

1. यहाँ सम्म्दिट्ठिस्स' ऐसा ह्रस्व पाठ होना चाहिए, क्योंकि एक मात्रा बढ़ रही है।

**उत्थानिका**:—जीव के रागादि परिणाम परद्रव्य में नहीं हैं–

**रागो दोसो मोहो, जीवस्स दु ते अणण्णपरिणामा।**
**एदेण कारणेण दु, सद्दादिसु णत्थि रागादी।। 10-64-371।।**

***सान्वय अर्थ***:—(रागो) **राग,** (दोसो) **द्वेष,** (मोहो) **मोह हैं;** (ते) **वे** (जीवस्स दु) **जीव के ही** (अणण्णपरिणामा) **अनन्य परिणाम हैं;** (एदेण कारणेण दु) **इस कारण से ही** (रागादी) **राग आदि** (सद्दादिसु) **शब्द आदि में** (णत्थि) **नहीं है।**

**अर्थ**:—राग, द्वेष, मोह – वे जीव के अनन्य परिणाम हैं। इस कारण राग आदि (परिणाम) शब्द आदि में नहीं हैं।

**

**उत्थानिका**:—परद्रव्य जीव में रागादि उत्पन्न नहीं करता–

**अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणुप्पादो।**
**तम्हा दु सव्वदव्वा, उप्पज्जंते सहावेण[1]।। 10-65-372।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अण्णदवियेण) **अन्य द्रव्य के द्वारा** (अण्णद वियस्स) **अन्य द्रव्य के** (गुणुप्पादो) **गुणों की उत्पत्ति** (णो कीरदे) **नहीं की जा सकती,** (तम्हा दु) **इसलिए** (सव्वदव्वा) **सब द्रव्य** (सहावेण) **अपने-अपने स्वभाव से** (उप्पज्जंते) **उत्पन्न होते हैं।**

**अर्थ**:—अन्य द्रव्य के द्वारा अन्य द्रव्य के गुणों की उत्पत्ति नहीं की जा सकती; इसलिए (यही कारण है कि) सब द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

**

1. 'सहावेणं' यह वैकल्पिक रूप होना चाहिए, क्योंकि 1 मात्रा कम पड़ रही है।

**उत्थानिका**:—पुद्गल शब्द को सुनकर रोष-तोष करना अज्ञान है–

**णिंदिद-संथुद-वयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।**
**ताणि सुणिदूण रूसदि, तूसदि य पुणो अहं भणिदो।। 10-66-373।।**

**पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो।**
**तम्हा ण तुमं भणिदो, किंचि वि किं रूससि अबुद्धो।। 10-67-374।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पोग्गला) **पुद्गल** (बहुगाणि) **अनेक प्रकार के** (णिंदिद-संथुद-वयणाणि) **निन्दा और स्तुति के वचनों के रूप में** (परिणमंति) **परिणमित होते हैं,** (ताणि) **उन वचनों को** (सुणिदूण) **सुनकर** (पुणो) **फिर** '(अहं भणिदो) **मुझको कहा है' – यह मानकर** (रूसदि तूसदि य) **रुष्ट और तुष्ट होता है।** (पोग्गलदव्वं) **पुद्गलद्रव्य** (सद्दत्तपरिणदं) **शब्दरूप परिणमित हुआ है,** (तस्स गुणो) **उसका गुण** (जदि) **यदि** (अण्णो) **तुझसे अन्य है,** (तम्हा) **तो फिर** (अबुद्धो) **हे अज्ञानी** ! (तुमं) **तुझको** (किंचि वि) **कुछ भी** (ण भणिदो) **नहीं कहा है; फिर** (किं रूससि) **तू क्यों रुष्ट होता है?**

**अर्थ**:—पुद्गल अनेक प्रकार के निंदा और स्तुति के वचनों के रूप में परिणमित होते हैं। उन वचनों को सुनकर 'मुझको कहा है' यह मानकर तू रुष्ट और तुष्ट होता है।

पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणमित हुआ है। उसका गुण यदि तुझसे अन्य है, तो फिर हे अज्ञानी ! तुझको कुछ भी नहीं कहा है; फिर तू क्यों रुष्ट होता है?

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से शब्द को सुनता है–

**असुहो सुहो व सद्दो, ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, सोद-विसयमागदं सद्दं।। 10-68-375।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (सद्दो) **शब्द** (तं) **तुझे** (तिण भणदि) **यह नहीं कहता है कि** "(मं सुणसु) **तू मुझको सुन**"; (सो चेव) **और वह आत्मा भी** (सोदविसयमागदं) **श्रोत्र-इन्द्रिय के विषय में आये हुए** (सद्दं) **शब्द को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ शब्द तुझे नहीं कहता है कि "तू मुझ को सुन"। वह आत्मा भी श्रोत्र-इन्द्रिय के विषय में आये हुये शब्द को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से रूप को देखता है–

**असुहं सुहं व रूवं, ण तं भणदि पेच्छ मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, चक्खु-विसयमागदं रूवं।। 10-69-376।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहं सुहं व) **अशुभ या शुभ** (रूवं) **रूप** (तं) **तुझको** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** "(मं पेच्छ) **तू मुझको देख**"; (सो चेव) **और आत्मा भी** (चक्खुविसयमागदं) **चक्षु-इन्द्रिय के विषय में आये हुए** (रूवं) **रूप को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ रूप तुझको यह नहीं कहता कि "तू मुझको देख"; और आत्मा भी चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए रूप को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से गन्ध को सूँघता है–

**असुहो सुहो व गंधो, ण तं भणदि जिग्घ मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, घाण-विसयमागदं गंधं।। 10-70-377।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (गंधो) **गन्ध** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** "(मं) **मुझे** (जिग्घ) **तू** (सूँघ)", (सो चेव) **और आत्मा भी** (घाणविसयमागदं) **घ्राणेन्द्रिय के विषय में आये हुए** (गंधं) **गन्ध को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ गन्ध तुझको यह नहीं कहता कि "तू मुझे सूँघ"; और आत्मा भी घ्राणेन्द्रिय के विषय में आये हुए गन्ध को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से रस को चखता है–

**असुहो सुहो व रसो, ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, रसण-विसयमागदं तु रसं।। 10-71-378।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (रसो) **रस** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** "(मं) **मुझे** (रसय) **तू चख**"; (सो चेव) **और आत्मा भी** (रसणविसयमागदं तु रसं) **रसना-इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ रस तुझे यह नहीं कहता कि "तूँ मुझे चख"; और आत्मा भी रसना-इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

**

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से स्पर्श करता है–

**असुहो सुहो व फासो, ण तं भणदि फास मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, काय-विसयमागदं फासं।। 10-72-379।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (फासो) **स्पर्श** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** "(मं) **मुझे** (फास) **तू स्पर्श कर**", (सो चेव) **और आत्मा भी** (कायविसयमागदं) **स्पर्शन-इन्द्रिय के विषय में आये हुए** (फासं) **स्पर्श को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ स्पर्श मुझे यह नहीं कहता कि "तू मुझे स्पर्श कर" और आत्मा भी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए स्पर्श को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से गुण को जानता है–

**असुहो सुहो व गुणो, ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, बुद्धि-विसयमागदं तु गुणं।। 10-73-380।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (गुणो) **गुण** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** "(मं) **मुझको** (बुज्झ) **तू जान**", (सो चेव) **और आत्मा भी** (बुद्धिविसयमागदं तु गुणं) **बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (णय य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ गुण तुझे यह नहीं कहता कि "तू मुझे जान"; और आत्मा भी बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—आत्मा अपने स्वरूप से द्रव्य को जानता है–

**असुहं सुहं व दव्वं, ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।**
**ण य एदि विणिग्गहिदुं, बुद्धि-विसयमागदं दव्वं।। 10-74-381।।**

***सान्वय अर्थ***:—(असुहं सुहं व) **अशुभ या शुभ** (दव्वं) **द्रव्य** (तं) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता** "(मं) **मुझे** (बुज्झ) **तू जान**"; (सो चेव) **और आत्मा भी** (बुद्धिविसयमागदं) **बुद्धि के विषय में आये हुए** (दव्वं) **द्रव्य को** (विणिग्गहिदुं) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता।**

**अर्थ**:—अशुभ या शुभ द्रव्य तुझे यह नहीं कहता कि "तू मुझे जान"; और आत्मा भी बुद्धि के विषय में आये हुए द्रव्य को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—पर में स्व-बुद्धि का परिणाम–

**एवं तु जाणिदूण य, उवसमं णेव गच्छदे मूढो।**
**णिग्गहमणा परस्स य, सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो।। 10-75-382।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं तु) **इसप्रकार** (जाणिदूण य) **जानकार भी** (मूढो) **मूढ जीव** (उवसमं) **उपशम - शान्ति को** (णेव गच्छदे) **प्राप्त नहीं होता,** (य) **और** (परस्स) **पर के** (णिग्गहमणा) **ग्रहण करने का मन करता है;** (सयं च) **उसे स्वयं** (सिवं बुद्धिं) **कल्याणकारी बुद्धि – सम्यग्ज्ञान** (अपत्तो) **प्राप्त नहीं हुई।**

**अर्थ**:—इसप्रकार (शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, परगुण और द्रव्य को) जानकर भी मूढ़जीव उपशम (शान्ति) को प्राप्त नहीं होता। वह पर के ग्रहण करने का मन करता है, और स्वयं उसे कल्याणकारी बुद्धि (सम्यग्ज्ञान) की प्राप्ति नहीं हुई।

✱✱

**उत्थानिका**:—'निश्चय प्रतिक्रमण' का स्वरूप–

**कम्मं जं पुव्वकयं[1], सुहासुहमणेयवित्थर-विसेसं।**
**तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं।। 10-76-383।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पुव्वकयं) **पूर्व में किये हुए** (अणेयवित्थर विसेसं) **अनेक विस्तारवाले** (जं) **जो** (सुहासुहं) **शुभ और अशुभ** (कम्मं) **कर्म हैं**; (तत्तो) **उनसे** (जो तु) **जो जीव** (अप्पयं) **अपने को** (णियत्तदे) **दूर कर लेता है**, (सो) **वह जीव ही** (पडिक्कमणं) **प्रतिक्रमण है।**

**अर्थ**:—पूर्व में किये हुए (मूलोत्तर प्रकृतिरूप से) अनेक विस्तारवाले जो शुभ और अशुभ कर्म हैं; उनसे जो जीव अपने को दूर कर लेता है, वह जीव ही 'प्रतिक्रमण' है।

**

**उत्थानिका**:—'निश्चय प्रत्याख्यान' का स्वरूप–

**कम्मं जं सुहमसुहं, जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं।**
**तत्तो णियत्तदे जो, सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा।। 10-77-384।।**

***सान्वय अर्थ***:—(य) **और** (भविस्सं) **भविष्य काल में** (जं) **जो** (सुहमसुहं) **शुभाशुभ** (कम्मं) **कर्म** (जम्हि भावम्हि) **जिस भाव के होने पर** (बज्झदि) **बँधता है**, (तत्तो) **उस भाव से** (जो चेदा) **जो आत्मा** (णियत्तदे) **निवृत्त होता है**; (सो) **वह आत्मा** (पच्चक्खाणं) **प्रत्याख्यान** (हवदि) **होता है।**

**अर्थ**:—और भविष्यकाल में जो शुभाशुभ कर्म जिस भाव के होने पर बँधता है, उस भाव से जो आत्मा निवृत्त होता है; वह आत्मा 'प्रत्याख्यान' होता है।

**

---

1. 'पुव्वकंद' पाठ होना चाहिये।

**उत्थानिका**:—निश्चय आलोचना का स्वरूप–

**जं सुहमसुहमुदिण्णं, संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।**
**तं दोसं जो चेददि, सो खलु आलोयणं चेदा।। 10-78-385।।**

***सान्वय अर्थ***:—(संपडि य) **वर्तमानकाल में** (उदिण्णं) **उदय में आये हुए** (जं अणेयवित्थरविसेसं) **अनेक विस्तारवाला** (सुहमसुहं) **शुभाशुभ कर्म है,** (तं दोसं) **उस दोष को** (जो चेदा) **जो आत्मा** (चेददि) **अनुभव करता है,** (सो) **वह आत्मा** (खलु) **वास्तव में** (आलोयणं) **आलोचना है।**

**अर्थ**:—वर्तमानकाल में उदय में आये हुए (मूलोत्तर प्रकृति के रूप में) अनेक विस्तारवाले जो कर्म हैं, उस दोष को जो जीव (भेदरूप) अनुभव करता है, वह जीव वास्तव में 'आलोचना' है।

**

**उत्थानिका**:—'निश्चय चारित्र' का स्वरूप–

**णिच्चं पच्चक्खाणं, कुव्वदि णिच्चं पि जो पडिक्कमदि[1]।**
**णिच्चं आलोचेयदि, सो हु चरित्तं हवदि चेदा।। 10-79-386।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो) **जो** (चेदा) **आत्मा** (णिच्चं) **हमेशा** (पच्चक्खाणं) **प्रत्याख्यान** (कुव्वदि) **करता है,** (णिच्चं पि) **नित्य ही जो** (पडिक्कमदि) **प्रतिक्रमण करता है,** (णिच्चं) **नित्य ही** (आलोचेयदि) **आलोचना करता है;** (सो) **वह आत्मा** (हु) **निश्चय से** (चरित्तं) **चारित्र** (हवदि) **है।**

**अर्थ**:—जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करता है, नित्य ही जो प्रतिक्रमण करता है, जो नित्य आलोचना करता है; वह आत्मा निश्चय से चारित्र है।

**

1. इस चरण में एक मात्रा घट रही है।

**उत्थानिका**:—अज्ञान-चेतना ही कर्म-बंध का कारण है–

**वेदंतो कम्मफलं, अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफलं।**
**सो तं पुणो वि बंधदि, बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।। 10-80-387।।**

**वेदंतो कम्मफलं, मये कदं जो दु मुणदि कम्मफलं।**
**सो तं पुणो वि बंधदि, बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।। 10-81-388।।**

**वेदंतो कम्मफलं, सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।**
**सो तं पुणो वि बंधदि, बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।। 10-82-389।।**

***सान्वय अर्थ***:—(कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफलं) **कर्म के फल को** (अप्पाणं कुणदि) **निजरूप करता है,** (सो) **वह** (दुक्खस्स बीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है।** (कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफलं) **कर्म का फल "(मये कदं) मैंने किया" – ऐसा** (मुणदि) **मानता है,** (सो) **वह** (दुक्खस्स बीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है।** (कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो चेदा) **जो आत्मा** (सुहिदो दुहिदो य) **सुखी और दुःखी** (हवदि) **होता है,** (सो) **वह** (दुक्खस्स बीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है।**

( कम्मफलं) **कर्म के फल का वेदन करता हुआ** (जो चेदा) **जो आत्मा** (सुहिदो दुहिदो य) **सुखी और दुःखी** (हवदि) **होता है,** (सो) **वह** (दुक्खस्स बीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है।**

कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा 'कर्म का फल मैंने किया' ऐसा मानता है, वह दुःख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है।

कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्म सुखी ओर दुखी होता है, वह दुःख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है।

✱✱

**उत्थानिका**:—शास्त्र 'ज्ञान' से भिन्न है–

**सत्थं णाणं ण हवदि, जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं सत्थं जिणा विंति।। 10-83-390।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सत्थं) शास्त्र (णाणं) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है, (जम्हा) क्योंकि (सत्थं) **शास्त्र** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता**; (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है**, (सत्थं) **शास्त्र** (अण्णं) **अन्य है**' – **ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—शास्त्र 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि शास्त्र कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है', – ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—शब्द ज्ञान से भिन्न है–

**सद्दो णाणं ण हवदि, जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं सद्दं जिणा विंति।। 10-84-391।।**

***सान्वय अर्थ***:—(सद्दो) **शब्द** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है**, (जम्हा) **क्योंकि** (सद्दो) **शब्द** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता**; (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (सद्दं) **शब्द** (अण्णं) **अन्य है**' – **ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—शब्द ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्द कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, शब्द अन्य है' – ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

उत्थानिका:—रूप 'ज्ञान' से भिन्न है–

**रूवं णाणं ण हवदि, जम्हा रूवं याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं रूवं जिणा विंति।। 10-85-392।।**

***सान्वय अर्थ:***—(रूवं) **रूप** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (रूवं) **रूप** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** "(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (रूवं) **रूप** (अण्णं) **अन्य है**" – **ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—रूप ज्ञान नहीं है, क्योंकि रूप कुछ नहीं जानता; इसलिए "ज्ञान अन्य है, रूप अन्य है" – ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

उत्थानिका:—वर्ण 'ज्ञान' से भिन्न है–

**वण्णो णाणं ण हवदि, जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं वण्णं जिणा विंति।। 10-86-393।।**

***सान्वय अर्थ:***—(वण्णो) **वर्ण** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (वण्णो) **वर्ण** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (वण्णं) **वर्ण** (अण्णं) **अन्य है**' – (जिणा) **ऐसा जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ:**—वर्ण 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि वर्ण कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, वर्ण अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—गन्ध 'ज्ञान' से भिन्न है–

**गंधो णाणं ण हवदि, जम्हा गंधो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं गंधं जिणा विंति।। 10-87-394।।**

***सान्वय अर्थ***:—(गंधो) **गन्ध** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (गंधो) **गन्ध** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (गंधं) **गन्ध** (अण्णं) **अन्य है**' – **ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—गन्ध 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि गन्ध कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, गन्ध अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—रस ज्ञान से भिन्न है–

**ण रसो दु होदि णाणं, जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, रसं च अण्णं जिणा विंति।। 10-88-395।।**

***सान्वय अर्थ***:—(रसो दु) **रस** (णाणं) **ज्ञान** (ण होदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (रसो दु) **रस तो** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता है;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (च) **और** (रसं) **रस** (अण्णं) **अन्य है**' –**ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—रस 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि रस तो कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है और रस अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—स्पर्श 'ज्ञान' से भिन्न है–

**फासो णाणं ण हवदि, जम्हा फासो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं फासं जिणा विंति।। 10-89-396।।**

***सान्वय अर्थ***:—(फासो) **स्पर्श** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (फासो) **स्पर्श** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (फासं) **स्पर्श** (अण्णं) **अन्य है' – ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—स्पर्श ज्ञान नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ नहीं जानता; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, स्पर्श अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—कर्म 'ज्ञान' से भिन्न है–

**कम्मं णाणं ण हवदि, जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं कम्मं जिणा विंति।। 10-90-397।।**

***सान्वय अर्थ***:—(कम्मं) **कर्म** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (कम्मं) **कर्म** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है** (कम्मं) **कर्म** (अण्णं) **अन्य है' – ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—कर्म 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि कर्म कुछ नहीं जानता है; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, कर्म अन्य है' – ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—धर्मद्रव्य 'ज्ञान' से भिन्न है–

**धम्मो णाणं ण हवदि, जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं धम्मं जिणा विंति।। 10-91-398।।**

***सान्वय अर्थ***:—(धम्मो) **धर्मद्रव्य** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (धम्मो) **धर्मद्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता;** (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (धम्मं) **धर्मद्रव्य** (अण्णं) **अन्य है' – ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—धर्मद्रव्य 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि धर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, धर्मद्रव्य अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—अधर्मद्रव्य 'ज्ञान' से भिन्न है–

**णाणमधम्मो ण हवदि, जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णमधम्मं जिणा विंति।। 10-92-399।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अधम्मो) **अधर्म द्रव्य** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं होता,** (जम्हा) **क्योंकि** (अधम्मो) **अधर्म द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता है;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (अधम्मं) **अधर्म द्रव्य** (अण्णं) **अन्य है' – ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—अधर्म द्रव्य ज्ञान नहीं है, क्योंकि अधर्म द्रव्य कुछ नहीं जानता है; इसलिए 'ज्ञान' अन्य है, अधर्म द्रव्य अन्य है' – ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

**

**उत्थानिका**:—कालद्रव्य 'ज्ञान' से भिन्न है–

**कालो णाणं ण हवदि, जम्हा कालो ण याणदे किंचि।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अण्णं कालं जिणा विंति।। 10-93-400।।**

***सान्वय अर्थ***:—(कालो) **कालद्रव्य** (णाणं) **ज्ञान** (ण हवदि) **नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (कालो) **काल द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नही जानता है;** (तम्हा) **इसलिए** '(णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (कालं) **काल द्रव्य** (अण्णं) **अन्य है' – ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—कालद्रव्य ज्ञान नहीं है, क्योंकि कालद्रव्य कुछ नहीं जानता है; इसलिए 'ज्ञान अन्य है, कालद्रव्य अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—आकाशद्रव्य 'ज्ञान' से भिन्न है–

**आयासं पि ण णाणं, जम्हायासं ण याणदे किंचि।**
**तम्हायासं अण्णं, अण्णं णाणं जिणा विंति।। 10-94-401।।**

***सान्वय अर्थ***:—(आयासं पि) **आकाश भी** (णाणं ण) **ज्ञान नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (आयासं) **आकाश द्रव्य** (किंचि) **कुछ** (ण याणदे) **नहीं जानता है;** (तम्हा) **इसलिए** '(आयासं) **आकाश द्रव्य** (अण्णं) **अन्य है** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है' –ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते हैं।**

**अर्थ**:—आकाशद्रव्य भी ज्ञान नहीं है, क्योंकि आकाशद्रव्य कुछ नहीं जानता है; इसलिए 'आकाशद्रव्य अन्य है, ज्ञान अन्य है' –ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—अध्यवसान 'ज्ञान' नहीं है–

**णज्झवसाणं णाणं, अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा।**
**तम्हा अण्णं णाणं, अज्झवसाणं तहा अण्णं।। 10-95-402।।**

***सान्वय अर्थ***:—(अज्झवसाणं) **अध्यवसान** (णाणं ण) **ज्ञान नहीं है,** (जम्हा) **क्योंकि** (अज्झवसाणं) **अध्यवसान** (अचेदणं) **अचेतन है;** (तम्हा) **इसलिए** (णाणं) **ज्ञान** (अण्णं) **अन्य है,** (तहा) **तथा** (अज्झवसाणं) **अध्यवसान** (अण्णं) **अन्य है।**

***अर्थ***:—अध्यवसान 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि अध्यवसान अचेतन है; इसलिए ज्ञान अन्य है, तथा अध्यवसान अन्य है।

**

उत्थानिका:—ज्ञान ही दीक्षा है–

**जम्हा जाणदि णिच्चं, तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी।**
**णाणं च जाणयादो[1], अव्वदिरित्तं मुणेदव्वं।। 10-96-403।।**

**णाणं सम्मादिट्ठिं, दु संजमं सुत्तमंग पुव्वगदं।**
**धम्माधम्मं च तहा, पव्वज्जं अब्भुवेंत्ति बुहा।। 10-97-404।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जम्हा) **चूंकि - जीव** (णिच्चं) **सदा** (जाणदि) **जानता है,** (तम्हा) **इसलिए** '(जाणगो जीवो दु) **ज्ञायक जीव** (णाणी) **ज्ञानी है,** (च) **और** (णाणं) **ज्ञान** (जाणयादो) **ज्ञायक से** (अव्वदिरित्तं) **अभिन्न है'** – **ऐसा** (मुणेदव्वं) **जानना चाहिये।** (बुहा) **ज्ञानीजन-गणधरदेव** (णाणं दु) **ज्ञान को ही** (सम्मादिट्ठि) **सम्यग्दृष्टि** (संजमं) **संयम** (अंगपुव्वगदं सुत्तं) **अंगपूर्वगत सूत्र** (धम्माधम्मं च) **धर्म और अधर्म** (तहा) **तथा** (पव्वज्जं) **दीक्षा** (अब्भुवेंत्ति) **मानते हैं।**

**अर्थ:**—क्योंकि जीव सदा जानता है, इसलिए 'ज्ञायक जीव ज्ञानी है और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है' —ऐसा जानना चहिये। ज्ञानीजन (गणधरदेव) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, संयम, अंगपूर्वगत सूत्र, धर्म और अधर्म तथा दीक्षा मानते हैं।

✱✱

---

1. 'जाणयादो' –यह विशिष्ट प्रयोग है।

**उत्थानिका**:—आत्मा अनाहारक है–

**अत्ता जस्स अमुत्तो, ण हु सो आहारगो हवदि एवं।**
**आहारो खलु मुत्तो, जम्हा सो पोग्गलमओ दु।। 10-98-405।।**

**ण वि सक्कदि घेत्तुं जं, ण वि मोत्तुं चेव जं परं दव्वं।**
**सो को वि य तस्स गुणो, पाओग्गिय विस्ससो वा वि।। 10-99-406।।**

**तम्हा दु जो विसुद्धो, चेदा सो णेव गिण्हदे किंचि।**
**णेव विमुंचदि किंचि वि, जीवाजीवाण दव्वाणं।। 10-100-407।।**

***सान्वय अर्थ***:—(एवं) **इसप्रकार** (जस्स) **जिसकी** (अत्ता) **आत्मा** (अमुत्तो) **अमूर्तिक है,** (सो हु) **वह निश्चय ही** (आहारगो) **आहारक** (ण हवदि) **नहीं है।** (खलु) **वास्तव में** (आहारो) **आहार** (मुत्तो) **मूर्तिक है,** (जम्हा) **क्योंकि** (सो दु) **वह आहार** (पोग्गलमओ) **पुद्गलमय है।** (तस्स य) **उस आत्मा का** (सो को वि) **वह कोई** (पाओग्गिय विस्ससो वा वि) **प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक** (गुणो) **गुण है** (जं) **कि** (जं परं दव्वं) **परद्रव्य को – वह** (ण वि घेत्तुं सक्कदि) **न ग्रहण कर सकता है,** (ण चेव विमोत्तुं) **न छोड़ सकता है,** (तम्हा दु) **इस कारण - अनाहारक होने के कारण** (जो विसुद्धो चेदा) **जो विशुद्ध आत्मा है,** (सो) **वह** (जीवाजीवाण दव्वाणं) **जीव-अजीव परद्रव्यों में** (किंचि वि) **कुछ भी** (णेव गिण्हदे) **न ही ग्रहण करता है,** (किंचि वि) **और कुछ भी** (णेव विमुंचदि) **न ही छोड़ता है।**

**अर्थ**:—इस प्रकार जिसकी आत्मा अमूर्तिक है, वह निश्चय ही आहारक नहीं हैं। वास्तव में आहार मूर्तिक है, क्योंकि आहार पुद्गलमय है। उस आत्मा का वह कोई प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक गुण है कि वह परद्रव्य को न ग्रहण कर सकता है, न छोड़ सकता है; अतः (अनाहारक होने के कारण) जो विशुद्ध आत्मा है, वह जीव-अजीव परद्रव्यों में न तो कुछ ग्रहण ही करता है और न कुछ छोड़ता ही है।

**

**उत्थानिका**:—बाह्यलिंग मोक्ष का मार्ग नहीं है–

**पासंडिय-लिंगाणि य, गिहिलिंगाणि य बहुप्पयाराणि।**
**घेत्तुं वदंति मूढा, लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति।। 10-101-408।।**

**ण दु होदि मोक्खमग्गो, लिंग जं देहणिम्ममा अरिहा।**
**लिंगं मुइत्तु दंसण-णाण-चरित्ताणि सेवंते।। 10-102-409।।**

***सान्वय अर्थ***:—(बहुप्पयाराणि) **अनेक प्रकार के** (पासंडिय-लिंगाणि य) **साधुओं के वेष** (य) **और** (गिहिलिंगाणि) **गृहस्थ के वेष** (घेत्तुं) **ग्रहण करके** (मूढा) **अज्ञानीजन** (त्ति) **यह** (वदंति) **कहते है कि** "(इणं लिंगं) **यह वेष ही** (मोक्खमग्गो) **मोक्ष का मार्ग है**"; (दु) **किन्तु** (लिंग) **द्रव्यलिंग** (मोक्खमग्गो) **मोक्ष का मार्ग** (ण होदि) **नहीं है,** (जं) **क्योंकि** (अरिहा) **अर्हन्तदेव** (देह णिम्ममा) **देह से ममत्वहीन हुए** (लिंगं मुइत्तु) **बाह्य लिंग को छोड़कर** (दंसणणाणचरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान, चारित्र का** (सेवंत्ते) **सेवन करते हैं।**

**अर्थ**:—अनेक प्रकार के साधु-वेष और गृहस्थ-वेष धारण करके अज्ञानीजन यह कहते हैं कि "वेष ही मोक्ष का मार्ग है"; किन्तु द्रव्यलिंग मोक्ष का मार्ग नहीं है, क्योंकि अर्हन्तदेव देह से ममत्वहीन हुए (बाह्य) लिंग को छोड़कर दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करते हैं।

✱✱

**उत्थानिका**:—दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है–

**ण वि एस मोक्खमग्गो, पासंडिय-गिहिमयाणि लिंगाणि।**
**दंसण-णाण-चरित्ताणि, मोक्खमग्गं जिणा विंति।। 10-103-410।।**

**तम्हा जहित्तु लिंगे, सागारणगारिये हि वा गहिदे।**
**दंसण-णाण-चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे।। 10-104-411।।**

***सान्वय अर्थ***:—(पासंडिय-गिहिमयाणि लिंगाणि) **साधु और गृहस्थ के लिंग** (एव वि) **यह भी** (मोक्खमग्गो ण) **मोक्ष-मार्ग नहीं है** (दंसण-णाण-चरित्ताणि) **दर्शन, ज्ञान और चारित्र** (मोक्खमग्गं) **मोक्षमार्ग है** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव - ऐसा** (विंति) **कहते हैं** (तम्हा) **इसलिए** (सागारणगारियेहि वा) **सागार-गृहस्थ अथवा अनगार-मुनियों द्वारा** (गहिदे) **ग्रहण किये हुए** (लिंगे) **लिंगों को** (जहित्तु) **छोड़कर** (अप्पाणं) **अपनी आत्मा को** (दंसणणाणचरित्ते) **दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरूप** (मोक्खपहे) **मोक्षमार्ग में** (जुंज) **लगाओ।**

***अर्थ***:—साधु और गृहस्थ के लिंग – यह भी मोक्षमार्ग नहीं है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष-मार्ग हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं; इसलिए गृहस्थ और साधुओं द्वारा ग्रहण किये हुए लिंगों को छोड़कर अपनी आत्मा को दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग में लगाओ।

**

उत्थानिका:—मोक्षमार्ग में विहार कर –

**मोक्खपहे अप्पाणं, ठवेहि चेदयहि झायहि तं चेव।**
**तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्ण-दव्वेसु।। 10-105-412।।**

***सान्वय अर्थ:***—(मोक्खपहे) **मोक्ष-पथ में** (अप्पाणं) **अपने आत्मा को** (ठवेति) **तू स्थापित कर,** (चेदयहि) **उसी का अनुभव कर,** (तं चेव) **और उसी का** (झायहि) **ध्यान कर,** (तत्थेव) **वहीं पर** (णिच्चं) **सदा** (विहर) **विहार कर;** (अण्णदव्वेसु) **अन्य द्रव्यों में** (मा विहरसु) **विहार मत कर।**

**अर्थ:**—(हे भव्य) मोक्ष-पथ में अपने आत्मा को तू स्थापित कर, उसी का अनुभव कर और उसी का ध्यान कर, वहीं पर सदा विहार कर; अन्य द्रव्यों में विहार मत कर।

**

उत्थानिका:—लिंग के मोही समयसार को नहीं जानते–

**पासंडिय-लिंगेसु व, गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।**
**कुव्वंति जे ममत्तं, तेहि ण णादं समयसारं।। 10-106-413।।**

***सान्वय अर्थ:***—(जे) **जो लोग** (बहुप्पयारेसु) **बहुत प्रकार के** (पासंडिय लिंगेसु व) **साधु-लिंगों में** (गिहिलिंगेसु व) **अथवा गृहस्थ-लिंगों में** (ममत्तं) **ममत्व** (कुव्वंति) **करते हैं;** (तेहि) **उन्होंने** (समयसारं) **समयसार-शुद्धात्म स्वरूप को** (ण णादं) **नहीं जाना।**

**अर्थ:**—जो लोग बहुत प्रकार के साधु-लिंगों में अथवा गृहस्थ-लिंगों मे ममत्व करते हैं, उन्होंने समयसार को (शुद्धात्म-स्वरूप को) नहीं जाना।

**

**उत्थानिका :** – लिंग के सम्बन्ध में दोनों नयों का मत –

**ववहारिओ[1] पुण णओ, दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।**
**णिच्छयणओ दु णेच्छदि[2], मोक्खपहे सव्वलिंगाणि।। 10-107-414।।**

***सान्वय अर्थ:***—(ववहारिओ णओ) **व्यवहारनय** (दोण्णि वि) **दोनों ही** (लिंगाणि) **लिंगों को** (मोक्खपहे) **मोक्ष का मार्ग** (भणदि) **कहता है,** (पुण) **पुनः और** (णिच्छयणओ दु) **निश्चयनय तो** (सव्व लिंगाणि) **समस्त लिंगों को** (मोक्खपहे) **मोक्षमार्ग में** (णेच्छदि) **इष्ट नहीं मानता।**

**अर्थ:**—व्यवहारनय दोनों ही लिंगों को मोक्ष का मार्ग कहता है, किन्तु निश्चयनय तो समस्त लिंगों को मोक्षमार्ग में इष्ट नहीं मानता।

**

---

1. छन्दानुरोध से 'ववहारिओ' प्रयोग है, अन्यथा मूलशब्द 'ववहारो' ही है।
2. 'दुणेच्छदि > ण इच्छदि' पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है।

**उत्थानिका**:—अन्त में आचार्य कुन्दकुन्द उपसंहार करते हुए 'समयपाहुडं' ग्रन्थ का माहात्म्य बतलाते हैं–

**जो समय पाहुडमिणं, पढिदूण य अत्थतच्चदो णादुं।**
**अत्थे ठाहिदि चेदा, सो होहिदि[1] उत्तमं सोक्खं।। 10-108-415।।**

***सान्वय अर्थ***:—(जो चेदा) **जो आत्मा** (इणं समयपाहुडं) **इस 'समयप्राभृत' को** (पढिदूण) **पढ़कर,** (य) **तथा** (अत्थतच्चदो) **उसे अर्थ और तत्त्व से** (णादुं) **जानकर** (अत्थे) **अर्थभूत शुद्धात्मा में** (ठाहिदि) **ठहरेगा,** (सो) **वह** (उत्तमं सोक्खं) **उत्तम सौख्यस्वरूप** (होहिदि) **हो जाएगा।**

**अर्थ**:—जो भव्यात्मा इस समय प्राभृत को पढ़कर तथा इसे अर्थ और तत्त्व से जानकर अर्थभूत शुद्धात्मा में ठहरेगा, वह उत्तम सौख्यस्वरूप हो जाएगा।

**

**।। इति दहमो सव्वविसुद्धणाणाधियारो समत्तो।।**

**।। इति सिरिकुन्दकुन्दाइरिय-पणीदं समयपाहुडं।।**

---

1. 'पावदि' इत्यपि पाठः।

# गाहाणुक्कमणिका

गाथा-क्रमांक

अ


| | | |
|---|---|---|
| अज्झवसाणणिमित्तं | – | 8-31-267 |
| अज्झवसिदेण बंधो | – | 8-26-262 |
| अट्ठवियप्पे कम्मे | – | 6-2-182 |
| अट्ठविहं पि य कम्मं | – | 2-7-45 |
| अण्ण-दवियेण अण्ण | – | 10-65-372 |
| अण्णाणमओ भावो | – | 3-59-127 |
| अण्णाणमया भावा | – | 3-61-129 |
| अण्णाणमया भावा | – | 3-63-131 |
| अण्णाणमोहिद मदी | – | 1-23-23 |
| अण्णाणस्स दु उदओ | – | 3-64-132 |
| अण्णाणी कम्मफलं | – | 10-9-316 |
| अण्णाणी पुण रत्तो | – | 7-27-219 |
| अण्णो करेदि अण्णो | – | 10-41-348 |
| अत्ता जस्स अमुत्तो | – | 10-98-405 |
| अपडिकमणमपडिसरणं | – | 9-20-307 |
| अप्पडिकमणं दुविहं | – | 8-47-283 |
| अप्पडिकमणं दुविहं | – | 8-48-284 |
| अपरिग्गहो अणिच्छो | – | 7-18-210 |
| अपरिग्गहो अणिच्छो | – | 7-19-211 |
| अपरिग्गहो अणिच्छो | – | 7-20-212 |
| अपरिग्गहो अणिच्छो | – | 7-21-213 |
| अपरिणमंतम्हि सयं | – | 3-54-122 |
| अप्पाणमप्पणा रूंधिदूण | – | 6-7-187 |
| अप्पाणमयाणंता | – | 2-1-39 |
| अप्पाणमयाणंतो | – | 7-10-202 |
| अप्पा णिच्चासंखे | – | 10-35-342 |

| | | |
|---|---|---|
| अप्पाणं झायंतो | – | 6-9-189 |
| अरसमरूवमगंधं | – | 2-11-49 |
| अवरे अज्झवसाणेसु | – | 2-2-40 |
| असुहो सुहो व गुणो | – | 10-73-380 |
| असुहो सुहो व गंधो | – | 10-70-377 |
| असुहो सुहो व फासो | – | 10-72-379 |
| असुहो सुहो व रसो | – | 10-71-378 |
| असुहो सुहो व सद्दो | – | 10-68-375 |
| असुहं सुहं व दव्वं | – | 10-74-381 |
| असुहं सुहं व रूवं | – | 10-69-376 |
| अह जाणगो दु भावो | – | 10-37-344 |
| अह जीवो पयडी तह | – | 10-23-330 |
| अह ण पयडी ण जीवो | – | 10-24-331 |
| अहं पुण अण्णो कोहो | – | 3-47-115 |
| अहमेक्को खलु सुद्धो | – | 1-38-38 |
| अहमेक्को खलु सुद्धो | – | 3-5-73 |
| अहमेदं एदमहं | – | 1-20-20 |
| अहवा एसो जीवो | – | 10-22-329 |
| अहवा मण्णसि मज्झं | – | 10-34-341 |
| अह सयमप्पा परिणमदि | – | 3-56-124 |
| अह सयमेव हि परिणमदि | – | 3-51-119 |
| अह संसारत्थाणं | – | 2-25-63 |


## आ


| | | |
|---|---|---|
| आउ-उदयेण जीवदि | – | 8-15-251 |
| आउ-उदयेण जीवदि | – | 8-16-252 |
| आउक्खयेण मरणं | – | 8-12-248 |
| आउक्खयेण मरणं | – | 8-13-249 |
| आदम्हि दव्वभावे | – | 7-11-203 |
| आदा खु मज्झ णाणे | – | 7-41-277 |
| आधाकम्मादीया | – | 8-50-286 |

| | | |
|---|---|---|
| आधाकम्मं उद्देसियं | – | 8-51-287 |
| आभिणिसुदोहिमण..... | – | 7-12-204 |
| आयारादी णाणं | – | 8-40-276 |
| आयासं पि ण णाणं | – | 10-94-401 |
| आसि मम पुव्वमेदं | – | 1-21-21 |

इ

| | | |
|---|---|---|
| इणमण्णं जीवादो | – | 1-28-28 |
| इय कम्मबंधणाणं | – | 9-3-290 |

उ

| | | |
|---|---|---|
| उदओ असंजमस्स दु | – | 3-65-133 |
| उदयविवागो विविहो | – | 7-6-198 |
| उप्पण्णोदयभोगो | – | 7-23-215 |
| उप्पादेदि करेदि य | – | 3-39-107 |
| उम्मग्गं गच्छंतं | – | 7-42-234 |
| उवओगस्स अणाई | – | 3-21-89 |
| उवओगे उवओगो | – | 6-1-181 |
| उवघादं कुव्वंतस्स | – | 8-3-239 |
| उवघादं कुव्वंतस्स | – | 8-8-244 |
| उवभोगमिंदियेहिं | – | 7-1-193 |

ए

| | | |
|---|---|---|
| ऍक्कं च दोण्णि तिण्णि य | – | 2-27-65 |
| एकस्स दु परिणामो | – | 3-70-138 |
| एकस्स दु परिणामो | – | 3-72-140 |
| एदम्हि रदो णिच्चं | – | 7-14-206 |
| एदाणि णत्थि जेसिं | – | 8-34-270 |
| एदाहि य णिव्वत्ता | – | 2-28-66 |
| एदे अचेदणा खलु | – | 3-43-111 |

| | | |
|---|---|---|
| एदेण कारणेण दु | – | 3-14-82 |
| एदेण कारणेण दु | – | 5-13-176 |
| एदेण दु सो कत्ता | – | 3-29-97 |
| एदे सव्वे भावा | – | 2-6-44 |
| एदेसु हेदूभुदेसु | – | 3-67-135 |
| एदेसु य उवओगो | – | 3-22-90 |
| एदेहि य संबंधो | – | 2-19-57 |
| एदं तु अविवरीदं | – | 6-3-183 |
| एदं तु असंभूदं | – | 1-22-22 |
| एमादिये दु विविहे | – | 7-22-214 |
| एमेव कम्मपयडी | – | 4-5-149 |
| एमेव जीवपुरिसो | – | 7-33-225 |
| एमेव मिच्छदिट्ठी | – | 10-19-326 |
| एमेव य ववहारो | – | 2-10-48 |
| एमेव सम्मदिट्ठी | – | 7-35-227 |
| एयत्त-णिच्छयगदो | – | 1-3-3 |
| एवमलिये अदत्ते | – | 8-27-263 |
| एवमिह जो दु जीवो | – | 3-46-114 |
| एवं जाणदि णाणी | – | 6-5-185 |
| एवं ण को वि मोक्खो | – | 10-16-323 |
| एवं णाणी सुद्धो | – | 8-43-279 |
| एवं तु जाणिदूण य | – | 10-75-382 |
| एवं तु णिच्छयणयस्स | – | 10-53-360 |
| एवं पराणि दव्वाणि | – | 3-28-96 |
| एवं पोंग्गलदव्वं | – | 2-26-64 |
| एवं बंधो य दोंण्हं पि | – | 10-6-313 |
| एवं मिच्छादिट्ठी | – | 8-5-241 |
| एवं ववहारणओ | – | 8-36-272 |
| एवं ववहारस्स दु | – | 10-46-353 |
| एवंविहा बहुविहा | – | 2-5-43 |

| | | |
|---|---|---|
| एवं सम्मादिट्ठी | – | 7-8-200 |
| एवं सम्मादिट्ठी | – | 8-10-246 |
| एवं संखुवदेसं | – | 10-33-340 |
| एवं हि जीवराया | – | 1-18-18 |
| एवं हि सावराहो | – | 9-16-303 |
| एसा दु जा मदी दे | – | 8-23-259 |
| एसो ववहारस्स दु | – | 10-58-365 |

**क**

| | | |
|---|---|---|
| कणयमयाभावादो | – | 3-62-130 |
| कम्मइयवग्गणासु य | – | 3-49-117 |
| कम्ममसुहं कुसीलं | – | 4-1-145 |
| कम्मस्स य परिणामं | – | 3-7-75 |
| कम्मस्साभावेण य | – | 6-12-192 |
| कम्मस्सुदयं जीवं | – | 2-3-41 |
| कम्मे णोकम्मम्हि य | – | 1-19-19 |
| कम्मेहि दु अण्णाणी | – | 10-25-332 |
| कम्मेहि भमाडिज्जदि | – | 10-27-334 |
| कम्मेहि सुहाविज्जदि | – | 10-26-333 |
| कम्मोदयेण जीवा | – | 8-18-254 |
| कम्मोदयेण जीवा | – | 8-19-255 |
| कम्मोदयेण जीवा | – | 8-20-256 |
| कम्मं जं पुव्वकयं | – | 10-76-383 |
| कम्मं जं सुहमसुहं | – | 10-77-384 |
| कम्मं णाणं ण हवदि | – | 10-90-397 |
| कम्मं पडुच्च कत्ता | – | 10-4-311 |
| कम्मं बद्धमबद्धं | – | 3-74-142 |
| कालो णाणं ण हवदि | – | 10-93-400 |
| किह सो घेप्पदि अप्पा | – | 9-9-296 |
| केहिं चि दु पज्जयेहि | – | 10-38-345 |

| | | |
|---|---|---|
| केहिं चि दु पज्जयेहिं | – | 10-39-346 |
| को णाम भणेज्ज बुहो | – | 7-15-207 |
| को णाम भणेज्ज बुहो | – | 9-13-300 |
| कोहादिसु वट्टंतस्स | – | 3-2-70 |
| कोहुवजुत्तो कोहो | – | 3-57-125 |

**ग**

| | | |
|---|---|---|
| गुणसण्णिदा दु एदे | – | 3-44-112 |
| गंध-रस-फास-रूवा | – | 2-22-60 |
| गंधो णाणं ण हवदि | – | 10-87-394 |

**च**

| | | |
|---|---|---|
| चहुविह-अणेयभेयं | – | 5-7-170 |
| चारित्त-पडिणिबद्धं | – | 4-19-163 |
| चेदा दु पयडियट्ठं | – | 10-5-312 |

**छ**

| | | |
|---|---|---|
| छिंददि भिंददि य तहा | – | 8-2-238 |
| छिंददि भिंददि य तहा | – | 8-7-243 |
| छिज्जदु वा भिज्जदु वा | – | 7-17-209 |

**ज**

| | | |
|---|---|---|
| जइया इमेण जीवेण | – | 3-3-71 |
| जइया स एव संखो | – | 7-30-222 |
| जदा विमुंचदे चेदा | – | 10-8-315 |
| जदि जीवो ण सरीरं | – | 1-26-26 |
| जदि जीवेण सहच्चिय | – | 3-71-139 |
| जदि णवि कुव्वदि छेदं | – | 9-2-289 |
| जदि पोग्गलकम्ममिणं | – | 3-17-85 |
| जदि सो परदव्वाणि य | – | 3-31-99 |
| जदि सो पोग्गलदव्वी..... | – | 1-25-25 |

| | | |
|---|---|---|
| जम्हा कम्मं कुव्वदि | – | 10-28-335 |
| जम्हा घादेदि परं | – | 10-31-338 |
| जम्हा जाणदि णिच्चं | – | 10-96-403 |
| जम्हा दु अत्तभावं | – | 3-18-86 |
| जम्हा दु जहण्णादो | – | 5-8-171 |
| जह कणयमग्गितवियं | – | 6-4-184 |
| जह को वि णरो जंपदि | – | 10-18-325 |
| जह चेट्ठं कुव्वंतो | – | 10-48-355 |
| जह जीवस्स अणण्णुव..... | – | 3-45-113 |
| जह ण वि सक्कमणज्जो | – | 1-8-8 |
| जह णाम को वि पुरिसो | – | 1-17-17 |
| जह णाम को वि पुरिसो | – | 1-35-35 |
| जह णाम को वि पुरिसो | – | 4-4-148 |
| जह णाम को वि पुरिसो | – | 8-1-237 |
| जह णाम को वि पुरिसो | – | 9-1-288 |
| जह परदव्वं सेडदि | – | 10-54-361 |
| जह परदव्वं सेडदि | – | 10-55-362 |
| जह परदव्वं सेडदि | – | 10-56-363 |
| जह परदव्वं सेडदि | – | 10-57-364 |
| जह पुण सोच्चिय पुरिसो | – | 7-34-226 |
| जह पुण सो चेव णरो | – | 8-6-242 |
| जह पुरिसेणाहारो | – | 5-16-179 |
| जह फलिहमणि विसुद्धो | – | 8-42-278 |
| जह बंधे चिंतंतो | – | 9-4-291 |
| जह बंधे छेत्तूण य | – | 9-5-292 |
| जह मज्जं पिबमाणो | – | 7-4-196 |
| जह राया ववहारा | – | 3-40-108 |
| जह विसमुवभुज्जंतो | – | 7-3-195 |
| जह सिप्पिउ कम्मफलं | – | 10-45-352 |
| जह सिप्पिउ करणाणि य | – | 10-44-351 |

| | | |
|---|---|---|
| जह सिप्पिउ करणेहिं | – | 10-43-350 |
| जह सिप्पिओ दु कम्मं | – | 10-42-349 |
| जह सिप्पिओ दु चेट्ठं | – | 10-47-354 |
| जह सेडिया दु ण परस्स | – | 10-49-356 |
| जह सेडिया दु ण परस्स | – | 10-50-357 |
| जह सेडिया दु ण परस्स | – | 10-51-358 |
| जह सेडिया दु ण परस्स | – | 10-52-359 |
| जा एस पयडीअट्ठं | – | 10-7-314 |
| जाव ण पच्चक्खाणं | – | 8-49-285 |
| जाव ण वेदि विसेसं..... | – | 3-1-69 |
| जिदमोहस्स दु जइया | – | 1-33-33 |
| जीव-णिबद्धा एदे | – | 3-6-74 |
| जीवपरिणामहेदुं | – | 3-12-80 |
| जीवम्हि हेदुभूदे | – | 3-37-105 |
| जीवस्स जीवरूवं | – | 10-36-343 |
| जीवस्स जे गुणा केई | – | 10-63-370 |
| जीवस्स णत्थि केई | – | 2-15-53 |
| जीवस्स णत्थि रागो | – | 2-13-51 |
| जीवस्स णत्थि वग्गो | – | 2-14-52 |
| जीवस्स णत्थि वण्णो | – | 2-12-50 |
| जीवस्स दु कम्मेण य | – | 3-69-137 |
| जीवस्साजीवस्स य | – | 10-2-309 |
| जीवादीसद्दहणं | – | 4-11-155 |
| जीवे कम्मं बद्धं | – | 3-73-141 |
| जीवे ण सयं बद्धं | – | 3-48-116 |
| जीवो कम्मं उहयं | – | 2-4-42 |
| जीवो चरित्त-दंसण..... | – | 1-2-2 |
| जीवो चेव हि एदे | – | 2-24-62 |
| जीवो ण करेदि घडं | – | 3-32-100 |
| जीवो परिणामयदे | – | 3-50-118 |

| | | |
|---|---|---|
| जीवो बंधो य तहा | – | 9-7-294 |
| जीवो बंधो य तहा | – | 9-8-295 |
| जे पोग्गलदव्वाणं | – | 3-33-101 |
| जो अप्पणा दु मण्णदि | – | 8-17-253 |
| जो इंदिये जिणित्ता | – | 1-31-31 |
| जो कुणदि वच्छलत्तं | – | 7-43-235 |
| जो चत्तारि वि पाए | – | 7-37-229 |
| जो चेव कुणदि सो चिय | – | 10-40-347 |
| जो जम्हि गुणे दव्वे | – | 3-35-103 |
| जो ण कदेदि दुग्गुंछं | – | 7-39-231 |
| जो ण कुणदि अवराहे | – | 9-15-302 |
| जो ण मरदि ण य दुहिदो | – | 8-22-258 |
| जो दु ण करेदि कंखं | – | 7-38-230 |
| जोधेहि कदे जुद्धे | – | 3-38-106 |
| जो पस्सदि अप्पाणं | – | 1-14-14 |
| जो पस्सदि अप्पाणं | – | 1-15-15 |
| जो पुण णिरावराहो | – | 9-18-305 |
| जो मण्णदि जीवेमि य | – | 8-14-250 |
| जो मण्णदि हिंसामि य | – | 8-11-247 |
| जो मरदि जो य दुहिदो | – | 8-21-257 |
| जो मोहं तु जिणित्ता | – | 1-32-32 |
| जो वेदादि वेदिज्जदि | – | 7-24-216 |
| जो समयपाहुडमिणं | – | 10-108-415 |
| जो सव्वसंग-मुक्को | – | 6-8-188 |
| जो सिद्धभत्तिजुत्तो | – | 7-41-233 |
| जो सुदणाणं सव्वं | – | 1-10-10 |
| जो सो दु णेहभावो | – | 8-4-240 |
| जो सो दु णेहभावो | – | 8-9-245 |
| जो हवदि असंमूढो | – | 7-40-232 |
| जो हि सुदेणहिगच्छदि | – | 1-9-9 |

| | | |
|---|---|---|
| जं कुणदि भावमादा | – | 3-23-91 |
| जं कुणदि भावमादा | – | 3-58-126 |
| जं भावं सुहमसुहं | – | 3-34-102 |
| जं सुहमसुहमुदिण्णं | – | 10-78-385 |


**ण**


| | | |
|---|---|---|
| ण कुदोचि वि उप्पण्णो | – | 10-3-310 |
| णज्झवसाणं णाणं | – | 10-95-402 |
| णत्थि दु आसव-बंधो | – | 5-3-166 |
| णत्थि मम को वि मोहो | – | 1-36-36 |
| णत्थि हि मम धम्मादी | – | 1-37-37 |
| ण दु होदि मोक्खमग्गो | – | 10-102-409 |
| ण मुयदि पयडिमभव्वो | – | 10-10-317 |
| णयरम्मि वण्णिदे जह | – | 1-30-30 |
| ण रसो दु होदि णाणं | – | 10-88-395 |
| ण वि एस मोक्खमग्गो | – | 10-103-410 |
| ण वि कुव्वदि कम्मगुणे | – | 3-13-81 |
| ण वि कुव्वदि ण वि वेदयदि | – | 10-12-319 |
| ण वि परिणमदि ण गिण्हदि | – | 3-8-76 |
| ण वि परिणमदि ण गिण्हदि | – | 3-9-77 |
| ण वि परिणमदि ण गिण्हदि | – | 3-10-78 |
| ण वि परिणमदि ण गिण्हदि | – | 3-11-79 |
| ण वि रागदोसमोहं | – | 8-44-280 |
| ण वि सक्कदि घेत्तुं जे | – | 10-99-406 |
| ण वि होदि अप्पमत्तो | – | 1-6-6 |
| ण सयं बद्धो कम्मेण | – | 3-53-121 |
| णाणगुणेण विहीणा | – | 7-13-205 |
| णाणमधम्मो ण हवदि | – | 10-92-399 |
| णाणमया भावादो | – | 3-60-128 |
| णाणस्स दंसणस्स य | – | 10-62-369 |

| | | |
|---|---|---|
| णाणस्स पडिणिबद्धं | – | 4-18-162 |
| णाणावरणादीयस्स | – | 5-2-165 |
| णाणी रागप्पजहो | – | 7-26-218 |
| णाणं सम्मादिट्ठि दु | – | 10-97-404 |
| णादूण आसवाणं | – | 3-4-72 |
| णिंदिद-संथुद-वयणाणि | – | 10-66-373 |
| णिच्चं पच्चक्खाणं | – | 10-79-386 |
| णिच्छयणयस्स एवं | – | 3-15-83 |
| णियमा कम्मपरिणदं | – | 3-52-120 |
| णिव्वेग-समावण्णो | – | 10-11-318 |
| णेव य जीवट्ठाणा | – | 2-17-55 |
| णो ठिदिबंधट्ठाणा | – | 2-16-54 |


## त


| | | |
|---|---|---|
| तं एयत्तविहत्तं | – | 1-5-5 |
| तं खलु जीवणिबद्धं | – | 3-68-136 |
| तं जाण जोग-उदयं | – | 3-66-134 |
| तं णिच्छये ण जुंजदि | – | 1-29-29 |
| तत्थ भवे जीवाणं | – | 2-23-61 |
| तम्हा जहित्तु लिंगे | – | 10-104-411 |
| तम्हा ण को वि जीवो | – | 10-30-337 |
| तम्हा ण को वि जीवो | – | 10-32-339 |
| तम्हा ण मे त्ति णच्चा | – | 10-20-327 |
| तम्हा दु कुसीलेहि य | – | 4-3-147 |
| तम्हा दु जो विसुद्धो | – | 10-100-407 |
| तह जीवे कम्माणं | – | 2-21-59 |
| तह णाणिस्स दु पुव्वं | – | 5-17-180 |
| तह णाणिस्स दु विविहे | – | 7-28-221 |
| तह णाणी वि हु जइया | – | 7-31-223 |
| तह वि य सच्चे दत्ते | – | 8-27-263 |

| | | |
|---|---|---|
| तिविहो एसुवओगो | – | 3-26-94 |
| तिविहो एसुवओगो | – | 3-27-95 |
| तेसिं पुणो वि य इमो | – | 3-42-110 |
| तेसिं हेदू भणिदा | – | 6-10-190 |

**थ**

| | | |
|---|---|---|
| थेयादी अवराहे | – | 9-14-301 |

**द**

| | | |
|---|---|---|
| दव्वगुणस्स य आदा | – | 3-36-104 |
| दवियं जं उप्पज्जदि | – | 10-1-308 |
| दव्वे उपभुंजंते | – | 7-2-194 |
| दिट्ठी सयं पि णाणं | – | 10-13-302 |
| दुक्खिद-सुहिदे जीवे | – | 8-30-266 |
| दुक्खिद-सुहिदे सत्ते | – | 8-24-260 |
| दोण्ह वि णयाण भणिदं | – | 3-75-143 |
| दंसण-णाण-चरित्ताणि | – | 1-16-16 |
| दंसण-णाण-चरित्तं | – | 5-9-172 |
| दंसण-णाण-चरित्त | – | 10-59-366 |
| दंसण-णाण-चरित्त | – | 10-60-367 |
| दंसण-णाण-चरित्त | – | 10-61-368 |

**ध**

| | | |
|---|---|---|
| धम्माधम्मं च तहा | – | 8-33-269 |
| धम्मो णाणं ण हवदि | – | 10-91-398 |

**प**

| | | |
|---|---|---|
| पक्के फलम्मि पडिदे | – | 5-5-168 |
| पज्जत्तापज्जत्ता | – | 2-29-67 |
| पडिकमणं पडिसरणं | – | 9-19-306 |
| पण्णाए घेत्तव्वो | – | 9-10-297 |

| | | |
|---|---|---|
| पण्णाए घेत्तव्वो | – | 9-11-298 |
| पण्णाए घेत्तव्वो | – | 9-12-299 |
| परमट्ठ-बाहिरा जे | – | 4-10-154 |
| परमट्ठम्मि दु अठिदो | – | 4-8-152 |
| परमट्ठो खलु समओ | – | 4-7-151 |
| परमप्पाणं कुव्वं | – | 3-24-92 |
| परमप्पाणमकुव्वं | – | 3-25-93 |
| परमाणुमेत्तयं पि दु | – | 7-7-201 |
| पासंडिय-लिंगाणि य | – | 10-101-408 |
| पासंडिय-लिंगेसु व | – | 10-106-413 |
| पुढवीपिंड-समाणा | – | 5-6-169 |
| पुरिसित्थियाहिलासी | – | 10-29-336 |
| पुरिसो जह को वि इह | – | 7-32-224 |
| पोग्गलकम्मं कोहो | – | 3-55-123 |
| पोग्गलकम्मं मिच्छं | – | 3-20-88 |
| पोग्गलकम्मं रागो | – | 7-7-199 |
| पोग्गलकम्मं सद्दत | – | 10-67-374 |
| पंथे मुस्संतं पस्सिदूण | – | 2-20-58 |

**फ**

| | | |
|---|---|---|
| फासो णाणं ण हवदि | – | 10-89-396 |

**ब**

| | | |
|---|---|---|
| बुद्धी ववसाओ वि य | – | 8-35-271 |
| बंधाणं च सहावं | – | 9-6-293 |
| बंधुवभोग-णिमित्ते | – | 7-25-217 |

**भ**

| | | |
|---|---|---|
| भावो रागादिजुदो | – | 5-4-167 |
| भुंजंतस्स वि विविहे | – | 7-28-220 |
| भूदत्थेणाभिगदा | – | 1-13-13 |

म

| | | |
|---|---|---|
| मज्झं परिग्गहो जदि | – | 7-16-208 |
| मारेमि जीववेमि य | – | 8-25-261 |
| मिच्छत्तं अविरमणं | – | 5-1-164 |
| मिच्छत्तं जदि पयडी | – | 10-21-328 |
| मिच्छत्तं पुण दुविहं | – | 3-19-87 |
| मोक्खं असद्दहंतो | – | 8-38-274 |
| मोक्खपहे अप्पाणं | – | 10-105-412 |
| मोत्तूण णिच्छयट्ठं | – | 4-12-156 |
| मोहणकम्मस्सुदया | – | 2-30-68 |

र

| | | |
|---|---|---|
| रत्तो बंधदि कम्मं | – | 4-6-150 |
| रागम्हि य दोसम्हि य | – | 8-45-281 |
| रागम्हि य दोसम्हि य | – | 8-46-282 |
| रागो दोसो मोहो | – | 5-14-177 |
| रागो दोसो मोहो | – | 10-64-371 |
| राया खु णिग्गदो त्ति य | – | 2-9-47 |
| रूवं णाणं ण हवदि | – | 10-85-392 |

ल

| | | |
|---|---|---|
| लोग-समणाणमेवं | – | 10-15-322 |
| लोगस्स कुणदि विण्हू | – | 10-14-321 |

व

| | | |
|---|---|---|
| वण्णो णाणं ण हवदि | – | 10-86-393 |
| वत्थस्स सेदभावो | – | 4-13-157 |
| वत्थस्स सेदभावो | – | 4-14-158 |
| वत्थस्स सेदभावो | – | 4-15-159 |
| वत्थुं पडुच्च तं पुण | – | 8-29-265 |
| वद-णियमाणि धरंता | – | 14-9-253 |

| | | |
|---|---|---|
| वद-समिदी गुत्तीओ | – | 8-37-273 |
| ववहारणओ भासदि | – | 1-27-27 |
| ववहार-भासिदेण दु | – | 10-17-324 |
| ववहारस्स दरीसण | – | 2-8-46 |
| ववहारस्स दु आदा | – | 3-16-84 |
| ववहारिओ पुण णओ | – | 10-107-414 |
| ववहारेण दु आदा | – | 3-30-98 |
| ववहारेण दु एदे | – | 2-18-56 |
| ववहारेणुवदिस्सदि | – | 1-7-7 |
| ववहारोऽभूदत्थो | – | 1-11-11 |
| विज्जारहमारूढो | – | 7-44-236 |
| वेदंतो कम्मफलं | – | 10-80-387 |
| वेदंतो कम्मफलं | – | 10-81-388 |
| वेदंतो कम्मफलं | – | 10-82-389 |
| वंदित्तु सव्वसिद्धे | – | 1-1-1 |


## स


| | | |
|---|---|---|
| सत्थं णाणं ण हवदि | – | 10-83-390 |
| सद्दहदि य पत्तयदि य | – | 8-39-275 |
| सद्दो णाणं ण हवदि | – | 10-84-392 |
| सम्मत्त-पडिणिबद्धं | – | 4-17-161 |
| सम्मद्दंसणणाणं | – | 3-76-144 |
| सम्मादिट्ठी जीवा | – | 7-36-228 |
| सव्वण्हु-णाण-दिट्ठो | – | 1-24-24 |
| सव्वे करेदि जीवो | – | 8-32-268 |
| सव्वे पुव्व-णिबद्धा | – | 5-10-173 |
| सव्वे भावे जम्हा | – | 1-34-34 |
| सामण्ण-पच्चया खलु | – | 3-41-109 |
| सुद-परिचिदाणुभूदा | – | 1-4-4 |
| सुद्धं तु वियाणंतो | – | 6-6-186 |
| सुद्धो सुद्धादेसो | – | 1-12-12 |

| | | |
|---|---|---|
| सेवंतो वि ण सेवदि | – | 7-5-197 |
| सोवण्णियं पि णियलं | – | 4-2-146 |
| सो सव्वणाणदरिसी | – | 4-16-160 |
| संतो वि णिरुवभोज्जा | – | 5-11-174 |
| संसिद्धि-राध-सिद्धं | – | 9-17-304 |

ह

| | | |
|---|---|---|
| हेदु-अभावे णियमा | – | 6-11-191 |
| हेदू चदुव्वियप्पो | – | 5-15-178 |
| होदूण णिरुवभोज्जा | – | 5-12-175 |

## प्रस्तुत ग्रन्थ का विक्रय-मूल्य कम करने के लिए प्रदत्त आर्थिक सहयोग के लिए हम इनके आभारी हैं :–

| | | रुपये |
|---|---|---|
| १. | श्री वैभव, श्री अरुण एवं श्री ज्ञानचन्द जैन, जयपुर | ६,२०१ |
| २. | श्रीमती शीला सेठी पत्नी स्व. श्री सुशीलकुमार सेठी, जयपुर | ५,१०० |
| ३. | डॉ. अल्का प्रभाकर सेठी, सांगानेर | ५,१०० |
| ४. | श्री अमर काला, जयपुर | ५,००१ |
| ५. | श्री धर्मचन्द जैन, देव नगर, जयपुर | ५,००१ |
| ६. | श्रीमती ऋषभ सेठी, ऋचा सेठी, सांगानेर | ५,००१ |
| ७. | श्री सुभाषचन्द पाटनी पेडीवाले, जयपुर | ५,००१ |
| ८. | श्री गोपीचन्द बिलाला, जयपुर | ३,१०० |
| ९. | श्री विमलचन्द पाण्डया, जयपुर | २,५०० |
| १०. | श्री किस्तूरचन्द, इन्द्रचन्द कटारिया | २,५०० |
| ११. | श्रीमती कुन्थुदेवी गोधा, पत्नी श्री श्रेयांसकुमार गोधा, जयपुर | २,५०० |
| १२. | श्रीमती कान्तादेवी पत्नी श्री सुरेन्द्रकुमार वैद | २,१०१ |
| १३. | श्रीमती प्रेमदेवी पत्नी श्री हीरालाल कटारिया, जयपुर | २,१०१ |
| १४. | श्री माणकचन्द केवलचन्द गोदीका | २,१०० |
| १५. | श्रीमती पद्मादेवी साह, पत्नी श्री उमरावमल साह, जयपुर | २,१०० |
| १६. | सुश्री प्रियंका सौगानी, जयपुर | १,५०१ |
| १७. | श्रीमती मनोरमा जैन, पत्नी श्री विनोद गर्ग, जयपुर | १,१११ |
| १८. | श्री कोमलचन्द माणकचन्द गोधा, जयपुर | १,१११ |
| १९. | श्री महेन्द्रकुमार पाटनी, शशि पाटनी | १,१०१ |
| २०. | श्रीमती तारा जैन, पत्नी श्री रूपकिशोर जैन, जयपुर | १,१०१ |
| २१. | श्री नरेशकुमार सेठी, जयपुर | १,१०१ |
| २२. | श्री चांदमल बाकलीवाल, जयपुर | १,१०१ |
| २३. | श्री रतनलाल छाबड़ा, जयपुर | १,१०१ |
| २४. | श्री महेन्द्रकुमार बिल्टीवाले, जयपुर | १,१०१ |
| २५. | श्री गुलाबचन्द पांड्या खोरावाले, जयपुर | १,१०१ |
| २६. | श्री ताराचन्द एवं श्रीमती विमलादेवी सौगानी, जयपुर | १,१०१ |
| २७. | श्रीमती शकुन्तलादेवी पत्नी श्री कैलाशचन्द सीकरवाले, जयपुर | १,१०१ |
| २८. | श्री महेशकुमार जैन, जयपुर | १,१०१ |
| २९. | श्रीमती चमेलीदेवी पत्नी श्री सूरजमल शाह, जयपुर | १,१०१ |
| ३०. | श्री बलभद्रकुमार जैन, जयपुर | १,१०१ |
| ३१. | श्रीमती स्नेहप्रभा काला, पत्नी श्री प्रभुलाल काला, जयपुर | १,१०१ |
| ३२. | श्रीमती रतनप्रभादेवी जैन, जयपुर | १,१०१ |
| ३३. | श्री सुमेरचन्द सेठी मालपुरावाले, जयपुर | १,१०१ |
| ३४. | श्री सुरेशकुमार अशोककुमार एवं भँवरबाई काला, जयपुर | १,१०१ |
| ३५. | श्री ताराचन्द निगोत्या, जयपुर | १,१०१ |
| ३६. | श्री शिवनारायण जैन वकील एवं परिवारजन, जयपुर | १,१०१ |
| ३७. | श्री हंसकुमार जैन, जयपुर | १,१०० |
| ३८. | श्रीमती नीरू तोतूका पत्नी श्री अनिल तोतूका, जयपुर | १,१०० |
| ३९. | श्री प्रकाशचन्द ठोलिया, जयपुर | १,१०० |
| ४०. | श्रीमती शरबती ठोलिया, जयपुर | १,१०० |
| ४१. | श्री सुभाषचन्द डंडिया, जयपुर | १,१०० |
| ४२. | श्रीमती शान्तिदेवी, श्री रमेश बैराठी | १,१०० |
| ४३. | श्री सुरेन्द्रमोहन जैन, जयपुर | १,१०० |
| ४४. | श्रीमती गुणमति संघी, पत्नी श्री प्रेमचन्द संघी, जयपुर | १,१०० |
| ४५. | श्री हरकचन्द उम्मेदमल पाण्ड्या, जयपुर | १,१०० |
| ४६. | श्री नन्दलाल, शारदाबाई छाबड़ा, जयपुर | १,१०० |
| ४७. | श्री ताराचन्द निगोत्या, जयपुर | १,१०० |
| ४८. | श्री निर्मलकुमार जैन, बयाना | १,१०० |
| ४९. | श्री भंवरलाल अजमेरा, जयपुर | १,१०० |
| ५०. | श्री कैलाशचन्द सौगानी, जयपुर | १,१०० |

५१. श्री मनीष कासलीवाल एवं परिवार १,१००
५२. श्री चंदनमल पहाडिया मनीपुरवाले १,१००
५३. श्रीमती मैनादेवी शाह
धर्मपत्नी स्व. श्री इन्द्रलाल शाह, जयपुर १,१००
५४. श्रीमती कमलादेवी सेठी,
पत्नी श्री पदम सेठी, जयपुर १,१००
५५. श्री हीरालाल, महेशकुमार सौगानी १,१००
५६. श्रीमती कमलेश संघी
पत्नी श्री अमोलक संघी, जयपुर १,००१
५७. श्री किरणकुमार बगड़ा, जयपुर १,००१
५८. श्रीमती सूरजदेवी बख्शी, जयपुर १,००१
५९. श्रीमती बीना बोहरा
पत्नी श्री रमेशचन्द बोहरा, जयपुर १,००१
६०. श्रीमती शान्ति जैन
पत्नी डॉ. एम.एल. जैन, जयपुर १,००१
६१. श्री विकासचन्द कासलीवाल, जयपुर १,००१
६२. श्रीमती शान्तादेवी पापड़ीवाल, जयपुर १,००१
६३. श्री चाँदमल जैन कोटावाले, जयपुर १,००१
६४. श्री देवेन्द्रकुमार छाबड़ा, जयपुर १,००१
६५. श्रीमती अन्जू जैन, कलकत्तावाली १,००१
६६. श्री ताराचन्द बाकलीवाल, जयपुर १,००१
६७. श्री महेन्द्रप्रकाश, मनोज काला, जयपुर १,०००
६८. श्री जिनेन्द्रकुमार सेठी, जयपुर १,०००
६९. श्रीमती कमला देवी पाटनी, नीता पाटनी ७०१
७०. श्रीमती कमला छाबड़ा, जयपुर ७००
७१. श्री भागचन्द मुशरफ, जयपुर ५०२
७२. श्री ताराचन्द कासलीवाल, दांता, ५०१
७३. श्रीमती त्रिलोकमती अरविन्दकुमार जैन ५०१
७४. श्री कैलाशचन्द ठोलिया, जयपुर ५०१
७५. श्री शान्तिलाल टिकसाली, जयपुर ५०१
७६. श्री रमेशचन्दजी बड़िया, जयपुर ५०१
७७. श्री दीपक सेठी, श्रीमती तारादेवी सेठी ५०१
७८. श्री पूरणचन्द झण्डेवाले, जयपुर ५०१
७९. श्री सुरेन्द्रमोहन वैद, जयपुर ५०१
८०. श्री रतन कोठ्यारी, जयपुर ५०१
८१. श्री फूलचन्द बिलाला, जयपुर ५०१
८२. श्रीमती रूपा रानी जैन, जयपुर ५०१
८३. श्री हरकचन्द सौगानी, जयपुर ५०१
८४. श्री नेमीचन्द, मायामणी जैन, जयपुर ५०१
८५. श्रीमती चाँद बाई, माणकचन्द
कपटद्वारवाले, जयपुर ५०१
८६. श्री रतनलाल संघी, जयपुर ५०१
८७. श्री ताराचन्द बज, जयपुर ५०१
८८. श्री लल्लूलाल बैनाड़ा, जयपुर ५०१
८९. वैद्य लालचन्द जैन, जयपुर ५०१
९०. श्रीमती रतनदेवी जैन, जयपुर ५०१
९१. श्री गौरमुकुट जैन, जयपुर ५०१
९२. श्रीमती सुलोचना संघी, श्री मनोहरलाल जैन ५०१
९३. श्रीमती प्रेमदेवी पाटनी, जयपुर ५०१
९४. श्री राजेन्द्र के. शेखर, जयपुर ५०१
९५. श्री सुधीर पापडीवाल, जयपुर ५०१
९६. श्रीमती प्रकाशदेवी गोधा, जयपुर ५०१
९७. श्रीमती विद्यादेवी सौगाणी, जयपुर ५०१
९८. श्री सितारा जैन, जयपुर ५०१
९९. श्रीमती शीला जैन, जयपुर ५०१
१००. श्रीमती पद्मादेवी जैन, जयपुर ५०१
१०१. श्री रामप्रकाश सौगानी, जयपुर ५०१
१०२. श्री ताराचन्द शाह, जयपुर ५०१
१०३. श्रीमती मुन्नादेवी गर्ग लडीवाली
पत्नी श्री रामअवतार, जयपुर ५०१
१०४. श्रीमती कम्पन्नदेवी टकसाली
पत्नी श्री हरिशचन्द जैन, जयपुर ५०१
१०५. श्री सुरेन्द्रकुमार जैन, जयपुर ५००
१०६. श्रीमती शकुन्तला देवी जैन नृपत्या, जयपुर ५००
१०७. श्रीमती प्रभा जैन पत्नी श्री इन्द्र जैन, जयपुर ५००
१०८. श्री महेशकुमार बाकलीवाल, जयपुर ५००
१०९. श्री कैलाशचन्द, विपिनकुमार, जयपुर ५००
११०. डॉ. कोकिला जैन, जयपुर ५००
१११. श्रीमती नीलम चौधरी, जयपुर ५००
११२. श्रीमती सैलो रानी जैन, काला, जयपुर ५००

११३. श्री जौहरीलाल, चन्दालाल सौगानी, जयपुर ५००
११४. श्री अशोककुमार गंगवाल, जयपुर ५००
११५. श्री विनोद लुहाड़िया, जयपुर ५००
११६. श्रीमती उमरावदेवी पाटनी, जयपुर ५००
११७. श्रीमती उषा पाटनी, सेठी कालोनी, जयपुर ५००
११८. श्री धर्मचन्द गोधा, जयपुर ४०१
११९. श्री ताराचन्द बाकलीवाल, जयपुर ४००
१२०. श्री हरकचन्द, राकेश, विमला जैन, जयपुर ३०१
१२१. श्रीमती विमला काला,
पत्नी श्री सूर्यप्रकाश काला, जयपुर २५१
१२२. श्रीमती प्रीति कमलचन्द सौगानी, सपरिवार २५१
१२३. श्री डी.आर. जैन, जयपुर २५१
१२४. श्री विनयकुमार कोठ्यारी, जयपुर २५१
१२५. श्री ज्ञानचन्द लुहाड़िया, सरोज लुहाड़िया २५१
१२६. श्रीमती कंचन देवी गंगवाल, जयपुर २५१
१२७. श्री बाबूलाल ठेकेदार, जयपुर २५०
१२८. श्री ताराचन्द भौंसा, जयपुर २०२
१२९. श्री ताराचन्द सेठी, जयपुर २०१
१३०. श्रीमती कमलादेवी, कान्ता देवी गोदीका २०१
१३१. श्रीमती स्नेहलता जैन, शाह, जयपुर २०१
१३२. श्री विजयकुमार, शारदा पाटनी, जयपुर २०१
१३३. श्री महेन्द्रकुमार जैन, जयपुर २०१
१३४. श्री रमेशचन्द जैन, जयपुर २०१
१३५. श्री छुट्टनलाल जैन, जयपुर २०१
१३६. श्रीमती मुन्नीदेवी पाटनी, जयपुर २०१
१३७. श्री सुरेन्द्र पाटनी, जयपुर २०१
१३८. श्रीमती रतनदेवी गंगवाल, जयपुर २०१
१३९. श्रीमती शीलादेवी गंगवाल, जयपुर २०१
१४०. श्रीमती सुशीलादेवी जैन, जयपुर २०१
१४१. श्री राजमल जैन, जयपुर २०१
१४२. श्री हरकचन्द, कान्ती लुहाड़िया, जयपुर २०१
१४३. श्री चन्दसैन छाबड़ा, जयपुर २०१
१४४. श्री जयकुमार, विमला देवी गोधा, जयपुर २०१
१४५. श्रीमती चाँद अजमेरा, जयपुर २०१
१४६. श्री सिद्धकरण राकेशकुमार बड़जात्या २०१
१४७. श्री महेन्द्रकुमार जैन, जयपुर २०१
१४८. श्रीमती कनक डंडिया, जयपुर २०१
१४९. श्रीमती बैलूरानी जैन, दिल्ली २०१
१५०. श्री सौभागमल दीवान, जयपुर २०१
१५१. श्रीमती भँवरदेवी पाटनी, जयपुर २०१
१५२. श्री अनूपचन्द तोतूका, जयपुर २०१
१५३. श्रीमती कमलादेवी, सरोज देवी, जयपुर २०१
१५४. श्रीमती शीलादेवी जैन, जयपुर २०१
१५५. श्रीमती सोनीबाई बाकलीवाल, जयपुर २०१
१५६. श्रीमती पुष्पा पाटनी, जयपुर २०१
१५७. श्रीमती पाँचीदेवी पंसारी, जयपुर २०१
१५८. श्री जैन साहब, जयपुर २००
१५९. श्री माणकचन्द पाण्ड्या, जयपुर २००
१६०. श्री जैन साहब सौगानी, जयपुर २००
१६१. श्री राजेन्द्र जैन, जयपुर २००
१६२. श्री कमलचन्द जैन, जयपुर २००
१६३. श्रीमती प्रमिला जैन, जयपुर २००
१६४. श्री आशीष जैन, जयपुर २००
१६५. श्रीमती प्रेमलता कासलीवाल, जयपुर २००
१६६. श्री स्वरूप नारायण बाणवाले, जयपुर २००
१६७. श्रीमती बबीता छाबड़ा, जयपुर २००
१६८. श्रीमती सुशीला देवी बाकलीवाल, जयपुर १५१
१६९. श्री महेन्द्रकुमार कटारिया, जयपुर १५१
१७०. श्री धर्मचन्द अजमेरा, जयपुर १५१
१७१. श्री अजित पाटनी, जयपुर १५१
१७२. श्री ताराचन्द सौगानी, जयपुर १५१
१७३. श्री संजय जैन, जयपुर १५१
१७४. श्रीमती रानी ठोलिया, जयपुर १५०
१७५. श्रीमती कान्ता जैन, जयपुर १११
१७६. श्री महेन्द्रकुमार बाकलीवाल, जयपुर १११
१७७. श्रीमती शान्ति देवी पाण्ड्या,
मुन्ना देवी गोधा, जयपुर १०२
१७८. श्री राजेन्द्रकुमार, देवेन्द्रकुमार पाटनी, जयपुर १०२
१७९. श्रीमती सुशीला जैन, जयपुर १०२
१८०. श्री चाँदमल पाण्ड्या खोरावाले, जयपुर १०१

१८१. श्री नरेन्द्रकुमार बैनाड़ा, जयपुर १०१
१८२. श्री नरेन्द्रकुमार अनिलकुमार गिरधरवाल १०१
१८३. श्री उत्तमचन्द जैन, जयपुर १०१
१८४. श्री सौभाग्यमल बाकलीवाल, जयपुर १०१
१८५. श्री रूपचन्द दीवान, जयपुर १०१
१८६. श्रीमती शान्तिदेवी छाबड़ा, जयपुर १०१
१८७. श्रीमती मीना कासलीवाल, जयपुर १०१
१८८. श्री जितेन्द्रकुमार सौगानी, जयपुर १०१
१८९. श्री लक्ष्मीनारायण बिलाला, जयपुर १०१
१९०. श्री रमेशचन्द बैराठी, जयपुर १०१
१९१. श्री इन्द्रचन्द जैन, जयपुर १०१
१९२. श्रीमती विद्या देवी जैन, जयपुर १०१
१९३. श्रीमती चन्द्रकान्ता
पत्नी श्री भँवरलाल पहाड़िया, जयपुर १०१
१९४. श्रीमती मीना देवी जैन, जयपुर १०१
१९५. श्री रतनलाल बगड़ा, जयपुर १०१
१९६. श्रीमती मानबाई जैन, जयपुर १०१
१९७. श्रीमती शान्तिदेवी जैन, जयपुर १०१
१९८. श्रीमती वन्दना जैन, जयपुर १०१
१९९. श्रीमती निर्मलादेवी जैन, जयपुर १०१
२००. श्री पद्मचन्द जैन, जयपुर १०१
२०१. श्री सुदीप जैन, जयपुर १०१
२०२. श्री महेन्द्रकुमार कासलीवाल, जयपुर १०१
२०३. श्री ज्ञानचन्द योगेन्द्रकुमार, जयपुर १०१
२०४. श्रीमती लीलावती टोंग्या, जयपुर १०१
२०५. श्री विमलचन्द टोंक वाले, जयपुर १०१
२०६. श्री चन्द्रप्रकाश जैन, जयपुर १०१
२०७. श्रीमती कमलादेवी जैन, जयपुर १०१
२०८. श्रीमती रतनदेवी जैन, जयपुर १०१
२०९. श्रीमती सूरजदेवी जैन, जयपुर १०१
२१०. श्रीमती प्रेमदेवी, प्रशान्त जैन, जयपुर १०१
२११. श्री सुरेन्द्रकुमार पाटनी, जयपुर १०१
२१२. श्रीमती अनीता जैन, बांदीकुई १०१
२१३. श्रीमती मुन्नादेवी सौगानी, स्नेहलता गोदीका १०१
२१४. श्रीमती सुशीला डंडिया, जयपुर १०१
२१५. श्रीमती चन्द्रादेवी गोधा, जयपुर १०१
२१६. श्री राजकुमार शाह, जयपुर १०१
२१७. श्री महेन्द्रकुमार गंगवाल, जयपुर १०१
२१८. श्रीमती निर्मला सौगानी, जयपुर १०१
२१९. श्री सरदारमल दूनीवाले, जयपुर १०१
२२०. श्री सूरजमल गोधा बरवाड़ावाले, जयपुर १०१
२२१. श्रीमती मूलीदेवी जैन कासलीवाल, टोंक १०१
२२२. श्रीमती कुसुम पाटनी, जयपुर १०१
२२३. श्रीमती प्रमिला कासलीवाल, जयपुर १०१
२२४. श्री प्रेमचन्द बोहरा, जयपुर १०१
२२५. श्रीमती सरोज पाटनी, जयपुर १०१
२२६. श्री राकेश, प्रभा बगड़ा, जयपुर १०१
२२७. श्री सतीश पांड्या, जयपुर १०१
२२८. श्रीमती शोभा पापड़ीवाल, जयपुर १०१
२२९. श्रीमती सुशीलादेवी जैन, जयपुर १०१
२३०. श्री पद्मचन्द जैन, जयपुर १०१
२३१. श्रीमती प्रेमलता जैन, जयपुर १०१
२३२. श्रीमती उषा जैन, जयपुर १०१
२३३. कुमारी भावना जैन, जयपुर १०१
२३४. श्रीमती कान्ता जैन, जयपुर १०१
२३५. श्री मिलापचन्द जैन, जयपुर १०१
२३६. श्री सुन्दर काला, जयपुर १०१
२३७. श्री पद्मचन्द कासलीवाल, जयपुर १०१
२३८. श्रीमती पुष्पलता जैन, जयपुर १०१
२३९. डॉ. वी. के. जैन, जयपुर १०१
२४०. श्रीमती नगीनादेवी जैन, टोंग्या, जयपुर १०१
२४१. श्रीमती आभा कासलीवाल, जयपुर १०१
२४२. श्री महेन्द्रकुमार अजमेरा, जयपुर १०१
२४३. श्री कमलेश बोहरा, जयपुर १०१
२४४. श्री राजकुमार जैन, जयपुर १०१
२४५. श्रीमती कान्ता देवी जैन, जयपुर १०१
२४६. श्रीमती मुन्नादेवी जैन, जयपुर १०१
२४७. श्रीमती मृदुला कटारिया जैन, जयपुर १०१
२४८. श्री प्रभातकुमार जैन, जयपुर १०१
२४९. श्री राजकुमार भौंच, रुपाहेडीवाले, जयपुर १०१

२५०. श्रीमती सुशीला संघी, जयपुर १०१
२५१. श्रीमती कंचनदेवी छाबड़ा, जयपुर १०१
२५२. श्रीमती कमलादेवी जैन, जयपुर १०१
२५३. श्री ताराचन्द जैन, जयपुर १०१
२५४. श्री ओमप्रकाश जैन, जयपुर १०१
२५५. श्री पारसमल जैन, जयपुर १०१
२५६. श्रीमती चन्द्रकान्ता पहाड़िया, जयपुर १०१
२५७. श्रीमती मणीलता छाबड़ा, जयपुर १०१
२५८. श्री नेमीचन्द बिलाला, जयपुर १०१
२५९. श्रीमती विद्या कासलीवाल, जयपुर १०१
२६०. श्रीमती कंचनदेवी गोधा, जयपुर १०१
२६१. श्री प्रेमचन्द, सुधारानी जैन, जयपुर १०१
२६२. श्रीमती विमला सौगानी, जयपुर १०१
२६३. श्री सुनीलकुमार, अनिलकुमार, जयपुर १०१
२६४. श्रीमती कमलादेवी जैन, जयपुर १०१
२६५. श्रीमती बीना जैन, जयपुर १०१
२६६. श्रीमती शान्तिदेवी सौध्या, जयपुर १०१
२६७. श्रीमती मंजू सौगानी, जयपुर १०१
२६८. श्री महेन्द्र कुमार सौगानी, जयपुर १०१
२६९. श्री महेन्द्रकुमार जैन, जयपुर १०१
२७०. श्रीमती शान्तिदेवी जैन, जयपुर १०१
२७१. श्रीमती सुमित्रादेवी जैन, दौसा १०१
२७२. श्रीमती चन्दादेवी जैन, जयपुर १०१
२७३. श्रीमती गुट्टीदेवी जैन, बड़जात्या जयपुर १०१
२७४. श्रीमती कमलादेवी अग्रवाल
पत्नी श्री गजानंद, जयपुर १०१
२७५. श्री राजमल सौगानी, जयपुर १००
२७६. श्री शरद डंडिया, जयपुर १००
२७७. श्रीमती निर्मला सौगानी, जयपुर १००
२७८. श्री धर्मचन्द छाबड़ा, जयपुर १००
२७९. श्रीमती कान्ता बख्शी, जयपुर १००
२८०. श्रीमती विमलादेवी बड़जात्या, जयपुर १००
२८१. श्रीमती सुलोचना देवी टोंग्या, जयपुर १००
२८२. श्री तेजकुमार दीवान, जयपुर १००
२८३. श्री मोतीलाल जैन, जयपुर १००
२८४. श्रीमती चारौलीदेवी जैन, जयपुर १००
२८५. श्रीमती किरण जैन, जयपुर १००
२८६. श्री संदीप सेठी, जयपुर १००
२८७. श्री रतन, आशा सौगानी, जयपुर १००
२८८. श्रीमती विजयलक्ष्मी जैन, जयपुर १००
२८९. श्री धर्मचन्द जैन, जयपुर १००
२९०. श्रीमती आशा बड़जात्या, जयपुर १००
२९१. श्री सिद्धार्थ जैन, जयपुर ५१
२९२. श्रीमती बीना टोंग्या, जयपुर ५१
२९३. श्री कपूरचन्द डोडावाला, जयपुर ५१
२९४. श्रीमती कंचन बाई घड़ी वाली, जयपुर ५१
२९५. श्रीमती जतनदेवी गोधा, जयपुर ५१
२९६. श्रीमती कुसुमलता नृपत्या, जयपुर ५१
२९७. श्री महावीरकुमार सेठी, जयपुर ५१
२९८. श्रीमती शकुन्तला जैन निगोत्या, जयपुर ५१
२९९. श्रीमती शशि सौगानी, जयपुर ५१
३००. श्री वीरसेन जैन, जयपुर ५१
३०१. श्री शान्तिकुमार जैन, सौगानी, जयपुर ५१
३०२. श्री अशोककुमार जैन, जयपुर ५१
३०३. श्री निर्मलकुमार जैन, जयपुर ५१
३०४. श्रीमती सुनिता जैन, जयपुर ५१
३०५. श्रीमती सरितादेवी जैन, जयपुर ५१
३०६. श्रीमती कंचनदेवी जैन, जयपुर ५१
३०७. श्रीमती सुनीता जैन, जयपुर ५१
३०८. श्रीमती मैधा संघी, जयपुर ५१
३०९. श्रीमती कुसुम जैन, पीलीवाले ५१
३१०. श्री ताराचन्द गोदीका, सिरमोहर ५१
३११. श्रीमती चन्द्रादेवी सौगानी, जयपुर ५०
३१२. श्री महावीरकुमार जैन, जयपुर ५०
३१३. श्री दिनेश जैन, जयपुर ५०
३१४. श्रीमती मुन्नादेवी जैन, जयपुर ५०
३१५. सुश्री सुधर्मा संघी, जयपुर ५०
३१६. सुश्री सुदर्शना संघी, जयपुर ५०
३१७. श्री बालकिशन गुप्त नाम, जयपुर ५०
३१८. श्री कैलाशचन्द नृपत्या, जयपुर ५०